महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत-

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ व टीका सहित]

दशम् खण्ड

[द्वादश स्कन्ध]

(माहात्म्य सहित)

सम्पादक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा - संस्थान,

मथुरा - २८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

द्वादश स्कन्ध

अनुक्रमणिका

कृ. सं.		पृ. सं.
१.	कलियुगके राजवंशोंका वर्णन	५
२.	कलियुगके धर्म	२३
३.	राज्य, युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेका उपाय नाम संकीर्तन	४१
४.	चार प्रकारके प्रलय	६३
५.	श्रीशुकदेवजीका अन्तिम उपदेश	८२
६.	परीक्षितकी परमगति, जनमेजयका सर्वसत्र और वेदोंके शाखाभेद	८८
७.	अथर्ववेदकी शाखाएँ और पुराणोंके लक्षण	१२४
८.	मार्कण्डेयजीकी तपस्या और वर प्राप्ति	१३५
९.	मार्कण्डेयजीका माया दर्शन	१५८
१०.	मार्कण्डेयजीको भगवान शंकरका वरदान	१७४
११.	भगवानके अंग उपांग और आयुधोंका रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणोंका वर्णन	१९२
१२.	श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त विषय-सूची	२९४
१३.	विभिन्न पुराणोंकी श्लोक संख्या और श्रीमद्भागवतकी महिमा	२४४

माहात्म्य

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य [१] २५६

श्रीभगवान द्वारा ब्रह्माजीको उपदिष्ट,
स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड मार्गशीर्ष, माहात्म्य अ-१६

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य [२] २६६

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड)

१. परीक्षित और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्य मुनिके मुखसे भगवानकी लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन २६७
२. यमुना और श्रीकृष्ण पत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना २८५
३. श्रीमद्भागवतकी परम्परा और उनका माहात्म्य भागवत श्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति ३००
४. श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता, वक्ताके लक्षण, श्रवण विधि और माहात्म्य. ३३०

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य [३] ३५०

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

१. देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट ३५१
२. भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग ३८३
३. भक्तिके कष्टकी निवृत्ति ४१४
४. गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ ४४५
५. धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार ४७८
६. सप्ताहयज्ञकी विधि ५१३-५५५

॥ द्वादश स्कन्ध ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतम् द्वादशस्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच-

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ।
कस्य वंशोऽभवत् पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

स्वधाम अनुगते कृष्णे यदुवंश विभूषणे कस्य वंशः अभवत् पृथ्व्यां एतत् आचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

मुने	- मुनिवर !	**पृथ्व्यां**	- पृथ्वीपर
यदुवंश विभूषणे	- यदुवंश विभूषण	**कस्य वंशः अभवत्**	- किस वंशका राज्य हुआ
कृष्णे स्वधाम	- श्रीकृष्णके अपने धाम		
अनुगते	- चले जानेके पश्चात्	**एतत् मे**	- यह मुझे
		आचक्ष्व	- बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच-

योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृपः ।
तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ २ ॥

यः अन्त्यः पुरञ्जयः नाम भाव्यः बार्हद्रथः नृपः तस्य आमात्यः तु शुनकः हत्वा स्वामिनं आत्मजम् ॥ २ ॥

यः बार्हद्रथः	- जो वृहद्रथके (वंशमें)	तस्य आमात्यः	- उसका मन्त्री
अन्त्यः	- अन्तिम	शुनकः तु	- शुनक तो
पुरञ्जयः नाम	- पुरञ्जय (रिपुञ्जय) नामक	स्वामिनं हत्वा	- अपने स्वामीको मारकर
		आत्मजं	- अपने पुत्र ॥ २ ॥
नृपः भाव्यः	- राजा होगा		

प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत् पालकः सुतः ।
विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ ३ ॥

प्रद्योत संज्ञं राजानं कर्ता यत् पालकः सुतः विशाखयूपः तत् पुत्रः भविता राजकः ततः ॥ ३ ॥

प्रद्योतसंज्ञं	- प्रद्योत नामकको	तत् पुत्रः-	- उसका पुत्र विशाखयूप,
राजानं कर्ता	- राजा बनावेगा	विशाखयूपः	
यत् सुतः-	- जिसका पुत्र पालक	ततः राजकः	- उससे राजक होगा
पालकः	होगा,	भविता	॥ ३ ॥

नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ।
अष्टात्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ ४ ॥

नन्दिवर्धनः तत् पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे अष्टत्रिंश उत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ ४ ॥

तत् पुत्रः	- उसका पुत्र	अष्टत्रिंश	- अड़तीस
नन्दिवर्धनः	- नन्दिवर्धन	उत्तरशतं	- ऊपर सौ (एक सौ अड़तीस वर्ष)
इमे पञ्च	- ये पांच	पृथिवीं भोक्ष्यन्ति	- पृथ्वीका उपभोग करेंगे ॥ ४ ॥
प्रद्योतना नृपाः	- प्रद्योतवंशीराजा		

शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ।
क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ५ ॥

शिशुनागः ततः भाव्यः काकवर्णः तु तत् सुतः क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ५ ॥

ततः शिशुनागः	- फिर शिशुनाग राजा	**तस्य सुतः**	- उसका पुत्र क्षेमधर्मा
भाव्यः	होगा	**क्षेमधर्मा**	
तत् सुतः तु	- उसका पुत्र तो	**क्षेमधर्मजः**	- क्षेमधर्माका पुत्र
काकवर्णः	- काकवर्ण,	**क्षेत्रज्ञः**	- क्षेत्रज्ञ होगा ॥ ५ ॥

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ।
दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ६ ॥

विधि सारः सुतः तस्य अजातशत्रुः भविष्यति दर्भकः तत् सुतः भावी दर्भकस्य अजयः स्मृतः ॥ ५ ॥

सुतः विधिसारः	- उसका पुत्र विधिसार	**दर्भकः भावी**	- दर्भक होगा,
तस्य अजातशत्रुः	- उसके अजातशत्रु	**दर्भकस्य**	- दर्भकका पुत्र
भविष्यति	- होगा,	**अजयः स्मृतः**	- अजय कहा गया है ॥ ६ ॥
तत् सुतः	- उसका पुत्र		

नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः ।
शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ७ ॥

नन्दिवर्धनः आजेयः महानन्दिः सुतः ततः शिशुनागा दश एव एते षष्टिउत्तर शतत्रयम् ॥ ७ ॥

आजेयः	- अजय का पुत्र	**एते दश एव**	- ये दशा ही
नन्दिवर्धनः	- नन्दिवर्धन,	**शिशुनागाः**	- शिशुनाग वंशी
ततः सुतः	- उसका पुत्र	**षष्टि उत्तर**	- साठ अधिक
महानन्दिः	- महानन्दी होगा	**शतत्रयं**	- तीन सौ (तीन सौ साठ) ॥ ७ ॥

समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ।
महानन्दिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ८ ॥

समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः महानन्दिसुतः राजन् शूद्री गर्भ उद्भवः बली ॥ ८ ॥

कुरुश्रेष्ठ राजन्	- कुरुश्रेष्ठ राजन् !	**शूद्रीगर्भ-**	- शूद्राके गर्भसे
समा कलौनृपा	- वर्षतक कलियुगके ये राजा	**उद्भवः**	उत्पन्न
		महानन्दिसुतः	- महानन्दीका पुत्र
पृथिवीं भोक्ष्यन्ति	- पृथ्वीका उपभोग करेंगे,	**बली**	- बलवान होगा ॥ ८ ॥

महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ।
ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ९ ॥

महापद्मपतिः कश्चित् नन्दः क्षत्र विनाशकृत् ततः नृपा भविष्यन्ति शूद्र प्रायाः तु अधार्मिकाः ॥ ९ ॥

महापद्मपतिः	- 'महापद्म' का स्वामी होनेसे	**ततः नृपा**	- उसके पश्चात् राजा
		शूद्र प्रायाः	- प्रायः शूद्र
कश्चित् नन्दः	- वह कोई नन्दवंशी	**तु अधार्मिकाः**	- तथा धर्महीन
क्षत्र विनाशकृत्	- क्षत्रियोंके नाशका कारण होगा	**भविष्यन्ति**	- होंगे ॥ ९ ॥

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लङ्घितशासनः ।
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥

स एकच्छत्रां पृथिवीं अनुल्लङ्घित शासनः शासिष्यति महापद्मः द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥

द्वितीय भार्गवः इव	- दूसरे परशुरामके समान	**अनुल्लङ्घित शासनः**	- किसीके भी द्वारा आज्ञाका उल्लंघन न होते हुए
स महापद्मः	- वह महापद्म	**शासिष्यति**	- शासन करेगा ॥ १० ॥
एकच्छत्रां-पृथिवीं	- पृथ्वीका एक छत्र		

तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ।
य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥

तस्य च अष्टौ भविष्यन्ति सुमालि प्रमुखाः सुताः य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥

तस्य च अष्टौ	- उसके तो आठ	**य राजानः**	- जो राजा होकर
सुताः भविष्यन्ति	- पुत्र होंगे	**इमां महीं**	- इस पृथ्वीको
सुमालि प्रमुखाः	- सुमाली उनमें मुख्य होगा	**शतं समाः**	- सौ वर्ष तक
		भोक्ष्यन्ति स्म	- भोगेंगे ॥ ११ ॥

नव नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति ।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥

अथ नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नान् उद्धरिष्यति तेषां अभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥

अथकश्चित्-द्विजः	- फिर कोई ब्राह्मण (चाणक्य)	**वै तेषां अभावे**	- निश्चय उनके न रहनेपर
प्रपन्नान्	- अत्यन्त सम्पन्न एवं प्रसिद्ध	**कलौ जगतीं**	- कलियुगमें जगतका
नन्दान्	- (महापद्म एवं उसके आठों पुत्रों) नन्दोंको	**मौर्या भोक्ष्यन्ति**	- मौर्य लोग उपभोग करेंगे ॥ १२ ॥
उद्धरिष्यति	- उखाड़ (नष्टकर) देगा		

स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ।
तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १३ ॥

स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजः राज्ये अभिषेक्ष्यति तत् सुतः वारिसारः तु ततः च अशोक वर्धनः ॥ १३ ॥

वै एव सः	- निश्चय वही ब्राह्मण	**तत् सुतः तु**	- उसका पुत्रतो
द्विजः	(चाणक्य)	**वारिसारः**	- वारिसार (विम्बसार)
चन्द्रगुप्तं	- चन्द्रगुप्तका	**च ततः**	- फिर उसके
राज्ये-	- राज्याभिषेक करेगा	**अशोकवर्धनः**	- अशोक वर्धन होगा
अभिषेक्ष्यति			॥ १३ ॥

सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः ।
शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १४ ॥

सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः शालिशकः ततः तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १४ ॥

तस्य सुयशा-	- उसके सुयशा होगा,	**शालिशूकः**	- उसका शालिशूक
भविता		**तस्य सोमशर्मा**	- उसका पुत्र सोमशर्मा
सुयशः सुतः	- सुयशाका पुत्र	**भविष्यति**	- होगा ॥ १४ ॥
संगतः ततः	- संगत फिर		

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद् बृहद्रथः ।
मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ।
समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥ १५ ॥

शतधन्वा ततः तस्य भविता तत् बृहद्रथः मौर्या हि एते दशनृपाः सप्त समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुल उद्वह त्रिंशत् शत उत्तरम् ॥ १५ ॥

ततः तस्य	- फिर उसका शतधन्वा	**समा कलौ**	- वर्षों तक कलियुगमें
तत् बृहद्रथः-	- उससे वृहद्रथ होगा	**पृथिवीं भोक्ष्यन्ति**	-पृथ्वीका उपभोग करेंगे
भविता		**कुरुकुल उद्वह**	- कुरुकुल पालक
हि एते दश	- क्योंकि ये दस		परीक्षितः
मौर्या नृपाः	- मौर्य राजा	**उत्तरं शतं**	- अधिक सौ (एक सौ
सप्त त्रिंशत्	- सैंतीस		सैंतीस) ॥ १५ ॥

हत्वा बृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ ।
पुष्यमित्रस्तु शुङ्गाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति ।
अग्निमित्रस्ततस्तस्मात् सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ १६ ॥

हत्वा बृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ पुष्यमित्रः तु शुङ्ग आह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति अग्निमित्रः ततः तस्मात् सुज्येष्ठः अथ भविष्यति ॥१६॥

मौर्यं बृहद्रथं	- फिर मौर्य वृहद्रथको	**स्वयं राज्यं**	- स्वयं राज्य
हत्वा	मारकर	**करिष्यति**	- करेगा
कलौ तस्य-	- कलियुगमें उसका	**ततः अग्निमित्रः**	- उससे अग्नि मित्र
सेनापतिः	सेनापति	**अथ तस्मात्**	- फिर उससे
शुङ्गा आह्वः	- शुंग उपाधिवाला	**सुज्येष्ठः-**	- सुज्येष्ठ होगा ॥१६॥
पुष्यमित्रः	- पुष्यमित्र	**भविष्यति**	

वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता ततः ।
ततो घोषः सुतस्तस्माद् वज्रमित्रो भविष्यति ॥ १७ ॥

वसुमित्रः भद्रकः च पुलिन्दः भविता ततः ततः घोषः सुतः तस्मात् वज्रमित्रः भविष्यति ॥ १७ ॥

वसुमित्रः	- (उससे) वसुमित्र,	**ततः घोषः**	- उससे घोष
ततः च	- फिर उससे	**तस्मात् सुतः**	- उसका पुत्र
भद्रकः	- भद्रक	**वज्रमित्रः-**	- वज्रमित्र होगा ॥ १७ ॥
भविता पुलिन्दः	- उससे होगा पुलिन्द	**भविष्यति**	

ततो भागवतस्तस्माद् देवभूतिरिति श्रुतः ।
शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ १८ ॥

ततः भागवतः तस्मात् देवभूतिः इति श्रुतः शुङ्गा दश एते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशत अधिकम् ॥ १८ ॥

ततः भागवतः	- उससे भागवत,	**एते दश शुङ्गा**	- ये दस शुंगवंशी
तस्मात् देवभूतिः	- आसे देवभूति होगा	**शत अधिकं**	- सौ से अधिक (एक सौ बारह वर्ष)
इति श्रुतः	- ऐसा सुना है,	**भूमिं भोक्ष्यन्ति**	- पृथ्वीका उपभोग करेंगे ॥ १८ ॥

ततः कण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान् नृप ।
शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ १९ ॥

ततः कण्वान् इयं भूमिः यास्यति अल्पगुणान् नृप शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वः अमात्यः तु कामिनम् ॥ १९ ॥

ततः इयं भूमिः	- फिर यह पृथ्वी	**कामिनंशुंगं**	- कामुक शुंग
अल्पगुणान्	- (पहिलेसे) कम गुणवाले	**देवभूतिं हत्वा**	- देवभूतिको मारकर
कण्वान्	- कण्ववंशी लोगोंके	**अमात्यः-**	- उसका मन्त्री कण्व
यास्यति	- (हाथमें) चली जायेगी,	**कण्वः तु**	तो ॥ १९ ॥

स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ।
तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ।
नारायणस्य भविता सुशर्मा नाम विश्रुतः ॥ २० ॥

स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवः महामतिः तस्य पुत्रः तु भूमित्रः तस्य नारायणः सुतः नारायणस्य भविता सुशर्मा नाम विश्रुतः ॥ २० ॥

महामतिः	- महान् बुद्धिमान	**तस्य सुतः**	- उसका पुत्र
वसुदेवः	- वसुदेव	**नारायणः**	- नारायण
स्वयं राज्यं-	- स्वयं राज्य करेगा,	**नारायणस्य**	- नारायणका
करिष्यते		**विश्रुतः-**	- प्रसिद्ध सुशर्मा नामका
तस्य पुत्रः तु	- उसका पुत्र तो	**सुशर्मानाम**	
भूमित्रः	- भूमित्र	**भविता**	- (पुत्र) होगा ॥ २० ॥

काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ २१ ॥

काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशत् च पञ्च च शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौयुगे ॥ २१ ॥

इमे काण्वायना	- ये कण्ववंशी	**शतानित्रीणि**	- तीन सौ (तीन सौ पैंतालिस)
चत्वारिंशत् च	- चालीस और	**वर्षाणां च**	- वर्षों तक
पञ्च च	- पांच एवं	**कलौयुगे**	- कलियुगमें
		भूमिं भोक्ष्यन्ति	- भूमिका उपभोग करेंगे ॥ २१ ॥

हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ।
गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कञ्चित् कालमसत्तमः ॥ २२ ॥

हत्वा काण्वं सुशर्माणं तत् भृत्यः वृषलः बली गां भोक्ष्यति अन्ध्रजातीयः कञ्चित् कालं असत्तमः ॥ २२ ॥

काण्वं सुशर्माणं - काण्व सुशर्माको
हत्वा तत् बली - मारकर उसका बलवान
अन्ध्रजातीयः - अन्ध्रजातीय
वृषलः असत्तमः - शूद्र, अत्यन्त दुष्ट
भृत्यः- - सेवक कुछ समयतक
कञ्चित् कालं
गां भोक्ष्यति - पृथ्वीका उपभोग करेगा
॥ २२ ॥

कृष्णनामाथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ।
श्रीशान्तकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २३ ॥

कृष्ण नाम अथ तत् भ्राता भविता पृथिवी पतिः श्रीशान्तकर्णः तत् पुत्रः पौर्णमासः तु तत् सुतः ॥ २३ ॥

अथ तत्- - फिर उसका कृष्णनामक
कृष्णनाम
भ्राता पृथिवी- - भाई पृथ्वी पति
पतिः
भविता - होगा,
तत् पुत्रः तु - उसका पुत्र तो
श्रीशान्तकर्णः - श्रीशान्तकर्ण,
तत् सुतः तु - उसका पुत्र तो
पौर्णमासः - पौर्णमास होगा ॥ २३ ॥

लम्बोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको नृपः ।
मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च ॥ २४ ॥

लम्बोदरः तु तत् पुत्रः तस्मात् चिबिलकः नृपः मेघस्वातिः चिबिलकात् अटमानः तु तस्य च ॥ २५ ॥

तत् पुत्रः तु - उसका पुत्र तो
लम्बोदरः - लम्बोदर,
तस्मात् नृपः - उससे राजा
चिबिलकः - चिबिलक,
चिबिलकात् - चिबिलकसे
मेघस्वातिः - मेघस्वाति,
तस्य तु - उसका फिर
अटमानः - अटमान ॥ २४ ॥

अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ।
पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २५ ॥

अनिष्टकर्मा हालेयः तलकः तस्य च आत्मजः पुरीषभीरुः तत् पुत्रः ततः राजा सुनन्दनः ॥ २५ ॥

अनिष्टकर्मा	- अनिष्टकर्मा	**तत् पुत्रः**	- उसका पुत्र
च तस्य आत्मजः	- और उसका पुत्र	**पुरीष भीरुः**	- पुरीष भीरु
हालेयः	हालेय	**ततः राजा**	- उससे राजा सुनन्दन
		सुनन्दनः	॥ २५ ॥

चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिन्दमः ।
तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान् भविता ततः ॥ २६ ॥

चकोरः बहवः यत्र शिवस्वातिः अरिन्दमः तस्य अपि गोमतीपुत्रः पुरीमान् भविता ततः ॥ २६ ॥

चकोरः	- (सुनन्दनका पुत्र) चकोर	**तस्य अपि**	- उसका भी (पुत्र)
बहवः	- उसके 'बहु' नामक (आठ पुत्र होंगे)	**गोमती पुत्रः**	- गोमतीपुत्र,
		ततः पुरीमान्	- उससे पुरीमान्
यत्र अरिन्दमः	- जिनमें शत्रुदमनकर्ता	**भविता**	- होगा ॥ २६ ॥
शिवस्वातिः	- शिवस्वाति होगा,		

मेदः शिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ।
विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २७ ॥

मेदः शिरा शिवस्कन्दः यज्ञश्रीः तत् सुतः ततः विजयः तत् सुतः भाव्यः चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २७ ॥

तत् मेदशिरा	- उसका मेदशिरा,	**तत् विजयः**	- उसका विजयः
सुतः शिवस्कन्दः	- उसका पुत्र शिवस्कन्द,	**सुतः भाव्यः**	- उसके दो पुत्र होंगे
ततः यज्ञश्रीः	- उसका यज्ञश्री,	**सलोमधिः**	- लोमधीके साथ
		चन्द्रविज्ञः	- चन्द्र विज्ञ ॥ २७ ॥

एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ।
षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥ २८ ॥

एते त्रिंशत् नृपतयः चत्वारि अब्द शतानि च षट् पञ्चाशत् च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥ २८ ॥

कुरुनन्दन - परीक्षित !
एते त्रिंशंत- - ये तीस राजा
नृपतयः
चत्वारिंशतानि च - चार सौ और
षट्पञ्चाशत् - छप्पन (चार सौ छप्पन)
अब्दपृथिवीं - वर्ष पृथ्वीका
भोक्ष्यन्ति - उपभोग करेंगे ॥ २८ ॥

सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ।
कंकाः षोडश भूपाला भविष्यन्त्यतिलोलुपाः ॥ २९ ॥

सप्त आभीरा आवभृत्या दशगर्दभिनः नृपाः कंका षोडश भूपाला भविष्यन्ति अति लोलुपाः ॥ २९ ॥

आवभृत्या - फिर अवन्तीके
सप्त आभीरा - सात अहीर,
दस गर्दभिनः - दस गर्दभी,
नृपाः - राजा होंगे (फिर)
अति लोलुपाः - अत्यन्त लालची
षोडश कंकाः - सोलह कंक
भूपाला- - राजा होंगे
भविष्यन्ति ॥ २९ ॥

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ।
भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ ३० ॥

ततः अष्टौ यवना भाव्या चतुर्दश तुरुष्ककाः भूयः दश गुरुण्डाः च मौना एकादश एव तु ॥ ३० ॥

ततः अष्टौ - फिर आठ
यवना भाव्या - यवन (राजा) होंगे,
चतुर्दश- - चौदह तुर्क
तुरुष्ककाः
भूयः दश- - फिर दस गुरुण्ड
गुरुण्डाः
च मौनाः तु - और मौन तो
एकादश एव - ग्यारह ही (राजा होंगे)
॥ ३० ॥

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ।
नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ ३१ ॥

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च नव अधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ ३१ ॥

एते पृथिवीं	- ये (मौनों के अतिरिक्त) पृथ्वीका	**च नव-** **अधिकां नवतिं**	- नौ अधिक नब्बे (एक हाज निन्यानवे वर्ष)
भोक्ष्यन्ति	- उपभोग करेंगे	**एकादश मौना**	- ग्यारह मौन
दशवर्षशतानि	- दस सौ वर्ष	**क्षितिं**	- पृथ्वीका ॥ ३१ ॥

भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ।
किलिकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वङ्गिरिः ॥ ३२ ॥

भोक्ष्यन्ति अब्द शतानि अंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः किलकिलायां नृपतयः भूत नन्दः अथ वङ्गिरिः ॥ ३२ ॥

अंग	- प्रिय परीक्षित	**ततः-**	- तब किलकिला
त्रीणि शतानि- **अब्द**	- तीन सौ वर्ष	**किलकिलायां**	नगरीमें
भोक्ष्यन्ति	- उपभोग करेंगे,	**भूतनन्दः**	- भूतनन्द (राजा होगा)
तैः संस्थिते	- उनके समाप्त होजानेपर	**अथवङ्गिरिः**	- फिर उसका वंगिरि ॥ ३२ ॥

शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः ।
इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ॥ ३३ ॥

शिशुनन्दिः च तत् भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः इति एते वै वर्षशतं भविष्यन्ति अधिकानि षट् ॥ ३३ ॥

तत् भ्राता - उसका भाई
शिशुनन्दिः - शिशुनन्दि
यशोनन्दिः - यशोनन्दि
च प्रवीरकः - और प्रवीरक
इति एते - इस प्रकार ये
वै षट्-अधिकानि - निश्चय छ अधिक
शतं वर्ष - सौ (एक सौ छ) वर्ष
भविष्यन्ति - (राजा) होंगे ।। ३३ ।।

तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ।
पुष्यमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ।। ३४ ।।

तेषां त्रयोदश सुता भवितारः च बाह्लिकाः पुष्यमित्रः अथ राजन्यः दुर्मित्रः अस्य तथा एव च ।। ३४ ।।

तेषां त्रयोदश - उनके तेरह
बाह्लिकाः सुता - बाह्लीक कहलाने वाले पुत्र
च भवितारः - भी (राजा) होंगे
अथ राजन्यः - फिर क्षत्रिय
पुष्यमित्रः - पुष्यमित्र
च अस्य-तथा एव - एवं इसके उसी प्रकारके पुत्र
दुर्मित्रः - दुर्मित्र का (राज्य होगा) ।। ३४ ।।

एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त-कोसलाः ।
विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ।। ३५ ।।

एक काला इमे भूपाः सप्त अन्ध्राः सप्तकोसलाः विदूरपतयः भाव्या निषधाः तत एव हि ।। ३५ ।।

इमे भूपाः - ये (बाह्लीक) राजा
एक काला - एक ही समयमें
सप्त अन्ध्राः - सात आन्ध्र प्रदेशके,
सप्त कोसलाः - सात कोसल प्रदेशके
विदूर पतयः - कुछ विदूर भूमिके और
हि तत् एव - क्योंकि इसी प्रकार कुछ
निषधाः - निषध प्रदेशके
भाव्या - स्वामी होंगे ।। ३५ ।।

मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ।
करिष्यत्यपरो वर्णान् पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥ ३६ ॥

मागधानां तु भविता विश्व स्फूर्जिः पुरञ्जयः करिष्यति अपरः वर्णान् पुलिन्द यदु मद्रकान् ॥ ३६ ॥

मागधानां तु	- मगध देशीय (राजा) तो	**वर्णान्**	- (यह उच्च) वर्णोंको
विश्व स्फूर्जिः	- विश्व स्फूर्जि	**अपरः**	- दूसरा ही
पुरञ्जयः	- (द्वितीय) पुरञ्जय होगा	**पुलिन्द यदुमुद्रकान्**	- पुलिन्द, यदु, मद्रक
		करिष्यति	- बनावेगा ॥ ३६ ॥

प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ।
वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ।
अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥

प्रजाः च ब्रह्म भूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः वीर्यवान् क्षत्रं उत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि अनुगंगां आप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥

ब्रह्म भूयिष्ठाः	- ब्राह्मण प्रधान तथा	**प्रजाः च-स्थापयिष्यति**	- (शूद्र) प्रजा भी बसावेगा
वीर्यवान् क्षत्रं	- बलवान क्षत्रियोंको	**अनुगंगां**	- गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर
उत्साद्य	- उजाड़कर	**आप्रयागं**	- प्रयागतक की
स दुर्मतिः	- यह दुर्बुद्धि	**गुप्तां मेदिनीं**	- सुरक्षित पृथ्वीका
वै पद्मवत्यां-पुरि	- निश्चय पद्मवतीपुरी में	**भोक्ष्यति**	- उपभोग करेगा ॥ ३७ ॥

सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः ।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३८ ॥

सौराष्ट्राः आवन्त्याः आभीराः च शूरा अर्बुद मालवाः व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जन अधिपाः ॥ ३८ ॥

सौराष्ट्राः	- सौराष्ट्र	**जनअधिपाः**	- राजा लोग
आवन्त्याः	- अवन्तिका,	**शूद्र प्राया**	- शूद्र पाय
आभीराः	- आभीर,	**व्रात्या द्विजा**	- व्रात्य (संस्कारहीन) द्विजाति
शूराः	- शौरसेन,	**भविष्यन्ति**	- होंगे ॥ ३८ ॥
अर्बुद	- अर्बुद (आबू)		
मालवाः	- मालवाके		

सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् ।
भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥

सिन्धोः तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीर मण्डलं भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्या आद्या म्लेच्छाः च अब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥

सिन्धो तटं	- सिन्धुके किनारे,	**अब्रह्मवर्चसः**	- ब्रह्मतेजहीन
चन्द्रभागां	- चन्द्रभागा (के तटवर्ती प्रदेश)	**शूद्रा व्रात्य-आद्या**	- शूद्र, व्रात्य आदि,
कौन्तीं	- कौन्ती प्रदेश और	**च म्लेच्छा**	- और म्लेच्छ
कश्मीर मण्डलं	- कश्मीर मण्डलको	**भोक्ष्यन्ति**	- भोगेंगे ॥ ३९ ॥

तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ।
एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ४० ॥

तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छ प्रायाः च भूभृत एते अधर्म अनृतपराः फल्गुदाः तीव्र मन्यवः ॥ ४० ॥

राजन्	- राजन् !	**अनृतपराः**	- असत्य परायणा
इमे तुल्यकाला	- ये एक ही समयके	**फल्गुदाः**	- अल्पदानी
च म्लेच्छ प्रायाः	- एवं म्लेच्छ प्राय	**तीव्र मन्यवः**	- तीक्ष्ण क्रोधी
एते अधर्म	- ये अधर्म और	**भूभृतः**	- पृथ्वीपति लोग ॥ ४० ॥

स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ।
उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ४१ ॥

स्त्रीबाल गो द्विजघ्नाः च परदार धन आदृताः उदिताः स्तिमित प्राया अल्पसत्त्व अल्प आयुषः ॥ ४१ ॥

स्त्री बाल गो	- स्त्री, बालक, गौ	**उदिताः**	- उत्कर्षके साथ ही
च द्विजघ्नाः	- तथा ब्राह्मणोंको मारने वाले,	**स्तिमित प्राया**	- अस्त प्राय होने वाले,
परदार	- परायी स्त्री एवं	**अल्पसत्त्व**	- अल्प शक्ति एवं
धन आदृताः	- धनको लेनेको उत्सुक,	**अल्प आयुषः**	- अल्पायु वाले होंगे ॥ ४१ ॥

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसाऽऽवृताः ।
प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४२ ॥

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा आवृताः प्रजाः ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्य रूपिणः ॥ ४२ ॥

असंस्कृताः	- संस्कारहीन,	**ते राजन्य-**	- वे राजारूपी
क्रियाहीना	- कर्तव्यपालन रहित,	**रूपिणः**	
रजसा तमसा	- रजोगुण एवं तमोगुणसे	**म्लेच्छा**	- म्लेच्छ
आवृताः	- ढके (अन्धे बने)	**प्रजाः-**	- प्रजाको ही खायेंगे
		भक्षयिष्यन्ति	॥ ४२ ॥

तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ।
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४३ ॥

तत् नाथाः ते जनपदाः तत् शील आचार वादिनः अन्य अन्यतः राजभिः च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४३ ॥

तत् नाथाः - जिनके ऐसे स्वामी हैं
ते जनपदाः - उन बस्तियोंके लोग
तत् शील- - उन्हींके आचरण,
आचार व्यवहार
वादिनः - तथा भाषणको करने वाले,
अन्य अन्यतः - एक दूसरे द्वारा
च राजभिः - तथा राजा द्वारा
पीडिताः - उत्पीडित होकर
क्षयं यास्यन्ति - नष्ट हो जायेंगे ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन् नङ्क्षयत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

ततः च अनुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया कालेन बलिना राजन् नङ्क्षन्ति आयुः बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

राजन् - राजन् !
ततः च - फिर तो
अनुदिनं - दिनों दिन
बलिना - बलवान
कालेन - कालके द्वारा
धर्म सत्यं - धर्म, सत्य,
शचं क्षमा - पवित्रता, क्षमा,
दया आयुः - दया, आयु
बलं स्मृतिः - बल और स्मरण शक्ति
नङ्क्षन्ति - नष्ट होती जायेगी॥ १ ॥

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

वित्तं एव कलौ नृणां जन्म आचार गुण उदयः धर्म न्याय व्यवस्थायां कारणं बलं एव हि ॥ २ ॥

कलौ नृणां - कलियुगके मनुष्योंके लिए
हि बलं एव - क्योंकि बल ही
धर्म न्याय - धर्म और न्यायकी
व्यवस्थायां - व्यवस्थाका
कारणं - कारण होगा (अतः)
जन्म - (उच्चकुलमें) जन्म,
आचार - सदाचार आदि
गुण उदयः - गुणोंका उत्कर्ष
वित्तं एव - धन ही (माना जायेगा) ॥ २ ॥

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥

दाम्पत्ये अभिरुचिः हेतुः माया एव व्यावहारिके स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिः विप्रत्वे सूत्रं एव हि ॥ ३ ॥

हि स्त्रीत्वे च - क्योंकि स्त्रीत्व और
पुंस्त्वे - पुरुषत्व
रतिः - मैथुन शक्ति (ही मानी जायेगी)
दाम्पत्ये - पति-पत्नी बननेमें
अभिरुचिः - परस्परकी रुचि ही
हेतुः - कारण होगी (कुल-शील नहीं देखा जायेगा)
व्यावहारिके - व्यवहार कुशलता
माया एव - छल-कपट ही (माना जायेगा)
विप्रत्वे - ब्राह्मण होनेका (प्रमाण)
हि सूत्रं एव - क्योंकि यज्ञोपवीत ही होगा ॥ ३ ॥

लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥

लिंगं एव आश्रम ख्याताः अन्यः अन्य आपत्ति कारणं अवृत्त्या न्याय दौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥

लिंगं एव - (वस्त्र, दण्ड आदि) चिन्ह ही
आश्रमाख्याताः - आश्रम कहे जायेंगे,
अन्यः अन्य - (एक आश्रमसे) दूसरेकी
आपत्ति कारणं - चले जानेका कारण (चिन्ह परिवर्तन ही) होगा,
अवृत्त्या - घूस न देना
न्याय दौर्बल्यं - न्यायकी दुर्बलता (न्याय न होनेका कारण) होगी
पाण्डित्ये - और पाण्डित्य (विद्वत्ता)
चापलं वचः - वाणीकी चपलता (ही रह जायेगी) ॥ ४ ॥

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥

अनाढ्यता एव असाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु स्वीकार एव च उद्वाहे स्नानं एव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥

अनाढ्यता एव	- गरीब होना ही,	**स्वीकार एव**	- स्वीकार कर लेना ही
असाधुत्वे	- असज्जन (असभ्य) होना हो जायगा,	**उद्वाहे**	- (बिना संस्कारके) विवाह होजायेगा
साधुत्वे	- साधु होनेका लक्षण	**च स्नानं एव**	- तथा स्नान करनेसे ही
तु दम्भ एव	- तो पाखण्ड ही होगा,	**प्रसाधनं**	- शृंगार हुआ (माना जायेगा) ॥ ५ ॥

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ।
उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥ ६ ॥

दूरे वारि अयनं तीर्थे लावण्यं केश धारणं उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यं एव हि ॥ ६ ॥

दूरे वारि अयनं	- दूरका जलाशय	**उदरम्भरता**	- अपना पेट भर लेना
तीर्थे	- तीर्थ माना जायगा,	**स्वार्थः**	- सब पुरुषार्थ हो जायेगा,
केश धारणं	- बड़े वाल रखना	**धार्ष्ट्यं एव-हि**	- धृष्टता पूर्वक बोलना ही
लावण्यं	- सौन्दर्य (समझा जायेगा)	**सत्यत्वे**	- सत्य माना जाने लगेगा ॥ ६ ॥

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ।
एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशः अर्थे धर्मसेवनं एवं प्रजाभिः दुष्टाभिः आकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥

कुटुम्ब भरणं	- अपने कुटुम्बका पालन	**एवं दुष्टाभिः**	- इस प्रकारकी दुष्ट
दाक्ष्यं	- दक्षता माना जायेगा,	**प्रजाभिः**	- प्रजासे
यशः अर्थे	- यशके लिए	**क्षितिमण्डले**	- समस्त भूमण्डल
धर्म सेवनं	- धर्माचरण होगा,	**आकीर्णे**	- व्याप्त होजानेपर ॥७॥

ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ।
प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥

ब्रह्म विट् क्षत्र शूद्राणां यः बली भविता नृपः प्रजाहि लुब्धै राजन्यैः निर्घृणैः दस्यु धर्मभिः ॥ ८ ॥

ब्रह्म विट्	- ब्राह्मण, वैश्य,	**हि लुब्धै**	- क्योंकि लोभी
क्षत्र शूद्राणां	- क्षत्रिय, शूद्रोंमें	**निर्घृणैः**	- निर्दय
यः बली	- जो बलवान होगा	**दस्यु धर्मभिः**	- डाकुओंका धर्म (लूटना) पालन करने वाले
नृपः भविता	- वह राजा बन जायेगा	**राजन्यैः**	- राजाओं द्वारा प्रजाके लोग ॥ ८ ॥

आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ।
शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

आच्छिन्न दारद्रविणा यास्यन्ति गिरि काननं शाक मूल आमिष क्षौद्र फल पुष्प अष्टि भोजनाः ॥ ९ ॥

दार द्रविणा	- स्त्री और धन	**शाक मूल**	- पत्ते, जड़ें,
आच्छिन्न	- छीन लिए जानेसे	**आमिष क्षौद्र**	- मांस, मधु,
गिरिकाननं	- पर्वत एवं वनोंमें	**फल पुष्प**	- फल, फूल,
यास्यन्ति	- चले जायेंगे	**अष्टि भोजनाः**	- गुठलियां खाकर पेट भरेंगे ॥ ९ ॥

अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ।
शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥

अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्ष कर पीडिताः शीत वात आतप प्रावृट् हिमैः अन्यः अन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥

अनावृष्ट्या	- वर्षा न होनेसे	**आतप प्रावृट्**	- लू, वर्षा,
दुर्भिक्ष	- अकालके द्वारा,	**हिमैः**	- बरफ (ओले) तथा
कर	- (सरकारी) कर,	**अन्यः अन्यतः**	- परस्पर एक दूसरेसे
शीत वात	- सर्दी, आँधी,	**पीडिताः प्रजाः**	- उत्पीडित प्रजा
		विनङ्क्ष्यन्ति	- नष्ट होजायेगी ॥ १० ॥

क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ।
त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

क्षुत् तृट्भ्यां व्याधिभिः च एव सन्तपस्यन्ते च चिन्तयात्रिंशत् विंशति वर्षाणि परमआयुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

क्षुत् तृट्भ्यां	- भूख-प्याससे	**कलौ नृणां**	- कलियुगमें मनुष्योंकी
व्याधिभिः	- बीमारियोंसे	**परम आयुः**	- दीर्घायुकी सीमा
च चिन्तया	- तथा चिन्तासे	**त्रिंशत् विंशति**	- तीस या बीस
सन्तप्स्यन्ते	- सन्तप्त होते रहेंगे	**वर्षाणि**	- वर्ष रह जायेगी ॥ ११ ॥

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलि दोषतः वर्ण-आश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥

कलि दोषतः - कलियुगके दोषसे
देहिनां देहेषु - शरीर धारियोंके शरीर
क्षीयमाणेषु - क्षीण (छोटे-दुर्बल) होजानेपर,
नृणां वेदपथे - मनुष्योंके वैदिक मार्ग एवं
वर्ण आश्रमवतां - वर्ण-आश्रम मानने वालोंके
धर्मे नष्टे - धर्मके नष्ट हो जानेपर ॥ १२ ॥

पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥

पाखण्ड प्रचुरे धर्मे दस्यु प्रायेषु राजसु चौर्य अनृत वृथाहिंसा नानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥

धर्मे - धर्ममें
पाखण्ड प्रचुरे - पाखण्ड बहुलता होजानेपर,
राजसु - राजाओंके
दस्यु प्रायेषु - प्रायः डाकू जैसे होजानेपर
वै नृषु - निश्चय मनुष्योंके
चौर्य अनृत - चोरी, झूठ,
वृथा हिंसा - व्यर्थ प्राणिवध जैसी
नाना वृत्तिषु - अनेक प्रकारकी आजीविका अपना लेनेपर ॥ १३ ॥

शूद्रप्रायेषु वर्णेषुच्छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥ १४ ॥

शूद्र प्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु गृहप्रायेषु आश्रमेषु यौन प्रायेषु बन्धुषु ॥ १४ ॥

वर्णेषु - सभी (चारों) वर्णोंके
शूद्र प्रायेषु - शूद्र प्राय होजानेपर,
धेनुषु - गायोंके
छाग प्रायासु - बकरियों जैसी (छोटी, अल्पदूध वाली) होजानेपर
आश्रमेषु - सभी (चारों) आश्रमोंके
गृह प्रायेषु - गृहस्थः प्रायः हो जानेपर
यौन प्रायेषु - वैवाहिक सम्बन्ध वालोंके ही
बन्धुषु - सम्बन्धी रह जानेपर ॥ १४ ॥

अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ।
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मषु ॥ १५ ॥

अणुप्रायेषु औषधिषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु विद्युत् प्रायेषु मेघेषु शून्य प्रायेषु सद्मषु ॥ १५ ॥

औषधिषु - (धान, गेंहू आदि) औषधियोंके
अणु प्रायेषु - बहुत छोटे होजानेपर,
स्थास्नुषु - स्थावरों (वृक्षों) में
शमी प्रायेषु - शमीप्राय (कंटीले) रह जानेपर
मेघेषु - बादलोंमें
विद्युत् प्रायेषु - (वर्षाहीन) बिजली चमकना
सद्मषु - घरोंके
शून्य प्रायेषु - प्रायः सूने होजानेपर ॥ १५ ॥

इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ।
धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥

इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खर धर्मिणि धर्म त्राणाय सत्त्वेन भगवान् अवतरिष्यति ॥ १६ ॥

इत्थं कलौ - इस प्रकार कलियुग (के अन्त) में
जने तु - लोगोंके तो
खर धर्मिणि - गधोंके समान धर्मी
प्राये गते - प्राय होजानेपर
धर्म त्राणाय - धर्मकी रक्षाके लिए
सत्त्वेन - सत्त्वगुणका आश्रम लेकर
भगवान् - भगवान
अवतरिष्यति - अवतार लेंगे ॥ १६ ॥

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥

चर अचर गुरुः विष्णुः ईश्वरस्य अखिल आत्मनः धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्म अपनुत्तये ॥ १७ ॥

चर अचर - (समस्त) जंगम-स्थावर (जगत) के
गुरुः - परम शिक्षक
अखिल आत्मनः - सर्वस्वरूप
ईश्वरस्य - सबके स्वामी
विष्णोः जन्म - श्रीहरिका अवतार
साधूनां - सत्पुरुषोंके
धर्मत्राणाय - धर्मकी रक्षाके लिए एवं
कर्म अपनुत्तये - (उनका) कर्म-बन्धन नष्ट करनेके लिए होता है ॥ १७ ॥

सम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥

सम्भल ग्राम मुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुः भविष्यति ॥ १८ ॥

सम्भलग्राम - सम्भलपुरके
मुख्यस्य - प्रमुख
महात्मनः - महात्मा
ब्राह्मणस्य - ब्राह्मण
विष्णुयशसः - विष्णुयशके
भवने - घरमें
कल्किः - (भगवान) कल्कि
प्रादुः भविष्यति - प्रकट होंगे ॥ १८ ॥

अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ।
असिनासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥

अश्वं आशुगं आरुह्य देवदत्तं जगत् पतिः असिना असाधु दमनं अष्ट ऐश्वर्य गुण अन्वितः ॥ १९ ॥

अष्ट ऐश्वर्य - (अणिमादि) आठों ऐश्वर्य
गुण अन्विता - (सिद्धियोंके) गुणोंसे युक्त
जगत्पतिः - वे जगदीश्वर
देवदत्तं - देवताओंके दिये
आशुगं - तीव्रगामी
अश्वं आरुह्य - घोड़ेपर चढ़कर
असिना - तलवार द्वारा (मारकर)
असाधु दमनं - दुष्टोंका दमन करेंगे ॥ १९ ॥१

---

१. **कल्कि अवतारकी पूरी कथा "कल्कि अवतार या कलियुगका अन्त" में दी गयी है ।**

विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ।
नृपलिङ्गच्छदो दस्यून् कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥

विचरन् आशुना क्षोणीं हयेन अप्रतिमद्युतिः नृपलिंङ्गच्छदः दस्यून् कोटिशः निहनिष्यति ॥ २० ॥

अप्रतिम द्युतिः - अतुलनीय कान्ति वे
आशुना हयेन - तीव्रगामी अश्वद्वारा
क्षोणीं विचरन् - पृथ्वीपर घूमते हुए
कोटिशः - करोड़ों
नृपलिंङ्गच्छदः - राजाओंके चिन्हधारी (मुकुटादि)
दस्यून् - डाकुओंको
निहनिष्यति - मार देंगे ॥ २० ॥

अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ।
वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ।
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥

अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै वासुदेव अंगराग अतिपुण्य गन्ध अनिलस्पृशां पौर जानपदानां वै हतेषु अखिल दस्युषु ॥ २१ ॥

अखिलदस्युषु - समस्त डाकुओंके
वै हतेषु - निश्चित रूपसे मार दिये जानेपर
वासुदेव - भगवान् वासुदेव (कल्किके)
अंगराग - अंगरागकी
अति पुण्यगन्ध - अत्यन्त पवित्र गन्ध वाली
अनिल स्पृशां - वायुको छूने वाले
अथ तेषां - फिर उन
पौर जानपदानां - नगर एवं जनपदोंके निवासियोंके
मनांसि - चित्त
वै विशदानि - निश्चित निर्मल
भविष्यन्ति - हो जायेंगे ॥ २१ ॥

तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः सम्भविष्यति ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥

तेषां प्रजा विसर्गः च स्थविष्ठः सम्भविष्यति वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥

सत्त्वमूर्तौ	- सत्त्वगुण स्वरूप	**तेषां प्रजा**	- उनकी सन्तान
भगवति	- भगवान्	**विसर्गः च**	- परस्पर भी
वासुदेवे	- वासुदेव (कल्कि) के	**स्थविष्ठः**	- (बड़े आकारकी) हृष्ट-पुष्ट
हृदिस्थिते	- हृदयमें स्थित होनेपर	**सम्भविष्यति**	- उत्पन्न होगी ॥ २२ ॥

यदावतीर्णो भगवान् कल्किधर्मपतिर्हरिः ।
कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३ ॥

यदा अवतीर्णः भगवान् कल्किः धर्मपतिः हरिः कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिः च सात्त्विकी ॥ २३ ॥

धर्मपतिः	- धर्मके स्वामी	**तदा कृतं**	- तब सतयुग
हरिः	- श्रीहरि	**भविष्यति**	- होजायेगा
भगवान्	- भगवान	**च सात्त्विकी**	- तथा सत्त्वगुणी
यदा कल्किः	- जब कल्कि रूपमें	**प्रजासूतिः**	- प्रजा उत्पन्न होगी ॥ २३ ॥
अवतीर्णः	- अवतार लेंगे		

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत् कृतम् ॥ २४ ॥

यदा चन्द्रः च सूर्यः च तथा तिष्य बृहस्पतीः एक राशौ सम एष्यन्ति तदा भवति तत् कृतम् ॥ २४ ॥

यदा चन्द्रः च	- जब चन्द्रमा और	**एक राशौ**	- एक ही राशि (कर्क) पर
सूर्यः च	- सूर्य भी	**सम एष्यन्ति**	- एक साथ आवेंगे
तथा तिष्य	- तथा पुष्य नक्षत्रके	**तदा तत्**	- तब वह
बृहस्पतीः	- बृहस्पति	**कृतं भवति**	- सतयुग होगा ॥ २४ ॥

येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः ।
ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥

ये अतीता वर्तमाना मे भविष्यन्ति च पार्थिवाः ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोम सूर्ययोः ॥ २५ ॥

ये सोम सूर्ययोः	- जो चन्द्र और सूर्य	**ये वर्तमानाः**	- जो इस समय हैं,
वंशीयाः	- वंशोंमें उत्पन्न	**च भविष्यन्ति**	- तथा जो आगे होंगे
पार्थिवाः	- राजा	**ते त**	- उनका तुमसे
अतीता	- होगये	**उद्देशतः**	- संक्षिप्त
		प्रोक्ता	- वर्णन कर दिया ॥२५॥

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद् वर्षसहस्त्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

आरभ्य भवतः जन्म यावत् नन्द अभिषेचनं एतत् वर्ष सहस्त्रं तु शतं पञ्चदश उत्तरम् ॥ २६ ॥

भवतः जन्म	- (परीक्षित !) तुम्हारे जन्मसे	**एतत् तु**	- इसमें तो
आरभ्य	- आरम्भकरके	**पञ्चदश उत्तरं**	-पन्द्रह अधिक
यावत्	- जबतक	**शतं सहस्त्रं**	- एकसौ सहस्त्र (एक हजार एक सौ पन्द्रह)
नन्दअभिषेचनं	- नन्दका राज्याभिषेक होगा	**वर्ष**	- वर्ष लगेंगे ॥ २६ ॥

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि ॥ २७ ॥

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि तयोः तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि ॥ २७ ॥

निशि	- रात्रिमें	**तयोः तु मध्ये**	- उन दोनोंके मध्यमें
सप्तर्षीणां तु	- सप्तर्षियोंके उदय होते	**यत् समं**	- जो उनके साथ ही
उदितौ	समय	**नक्षत्रं दृश्येते**	- नक्षत्र दीखता है
यौ पूर्वौ दृश्यते	- (उनमेंसे) जो दो पहिले दीखते हैं		॥ २७ ॥

तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥

तेन एत ऋषयः युक्ताः तिष्ठन्ति अब्दशतं वैः ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना च आश्रिता मघाः ॥ २८ ॥

तेन एत	- उसके साथ ही	**ते द्विजाः**	- जो ब्राह्मण (सप्तर्षि)
युक्ताः	- संयुक्त होकर	**त्वदीये काले**	- तुम्हारे जन्मके समय
ऋषयः	- सप्तर्षि	**च अधुना**	- और इस समय (वे)
वै अब्दशतं	- निश्चित सौ वर्षतक	**मघा-**	- मघा नक्षत्रमें स्थित
तिष्ठन्ति	- रहते हैं,	**आश्रिता**	हैं ॥ २८ ॥

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ।
तदाविशत् कलिर्लोकं पापे यद् रमते जनः ॥ २९ ॥

विष्णोः भगवतः भानुः कृष्ण आख्यः असौ दिवं गतः तदा आविशत् कलिः लोकं पापे यत् रमते जनः ॥ २९ ॥

कृष्ण आख्यः	- श्रीकृष्ण नामक	**तदा लोकं**	- उसी समय संसारमें
असौ विष्णोः	- ये सर्वव्यापक	**कलिः आविशत्**	- कलियुगने प्रवेश किया
भगवतः भानुः	- भगवान सूर्य	**यत् जनः**	- जिसके कारण लोग
दिवंगतः	- (जब) अपने धाम गये	**पापे रमते**	- पाप करनेमें सुख मानते हैं ॥ २९ ॥

यावत् स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ।
तावत् कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशकत् ॥ ३० ॥

यावत् स पादपद्माभ्यां स्पृशन् आस्ते रमापतिः तावत् कलिः वै पृथिवीं पर आक्रान्तुं न च अशकत् ॥ ३० ॥

यावत् स	- जब तक वे	**तावत् वै**	- तब तक निश्चय
रमापतिः	- रमापति	**कलि**	- कलियुग
पादपद्माभ्यां	- अपने चरण कमलोंसे	**पृथिवीं**	- पृथ्वी
स्पृशन् आस्ते	- (इसका) स्पर्श करते थे	**पर आक्रान्तुं**	- पर पैर रखनेमें
		अशकत्न च	- समर्थ नहीं ही हुआ ॥ ३० ॥

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि तदा प्रवृत्तः तु कलिः द्वादश अब्दशत आत्मकः ॥ ३१ ॥

यदा सप्त	- जब सातों	**तदा तु**	- उस समय तो
देवर्षयः	- देवर्षिगण	**द्वादशशत**	- (देवताओंके) बारहसौ
मघासुहि	- मघा नक्षत्र पर ही	**अब्द आत्मकः**	- वर्ष वाला (मनुष्योंके (चार लाख बत्तीस हजार वर्ष) का
विचरन्ति	- विचरण करते हैं	**कलिः प्रवृत्तः**	- कलियुग प्रारम्भ हुआ ॥ ३१ ॥

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः तदा नन्दात् प्रभृति एष कलिः वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥

यदा महर्षयः	- जब सप्तर्षि	**गमिष्यन्ति**	- जायेंगे
मघाभ्यो	- मघा नक्षत्रसे	**तदा नन्दात्**	- उस समय नन्दके
पूर्वाषाढां	- पूर्वाषाढा नक्षत्रमें	**प्रभृति**	राज्यसे
		एष कलिः	- यह कलियुग
		वृद्धिं गमिष्यति	- बढ़ने लगेगा ॥३२॥

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

यस्मिन् कृष्णः दिनं यातः तस्मिन् एव तत् अहनि प्रतिपन्नं कलियुगं इति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

पुराविदः	- पुरातत्त्ववेत्ता	**तस्मिन् अहनि**	- उसी दिन
इति प्राहुः	- ऐसा कहते हैं कि	**तत एव**	- उसी समयसे
यस्मिन्	- जिस समय	**कलियुगं**	- कलियुगका
कृष्णः	- श्रीकृष्ण	**प्रतिपन्नं**	- प्रारम्भ होगया
दिवं यातः	- दिव्यधाम गये		॥ ३३ ॥

दिव्याब्दानां सहस्त्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ।
भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥

दिव्य अब्दानां सहस्र अन्ते चतुर्थे तु पुनः कृतं भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥

दिव्य सहस्र	- देवताओंके सहस्र	**भविष्यति**	- हो जायेगा
अब्दानां अन्ते	- वर्षोंके अन्तमें	**यदा नृणां**	- जब मनुष्योंका
चतुर्थे तु	- (कलियुगके) चतुर्थ	**मन आत्म**	- मन आत्माको
	चरणमें तो	**प्रकाशकं**	- जानने वाला होगा
पुनः कृतं	- फिर सतयुग		॥ ३४ ॥

इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ।
तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥

इति एष मानवः वंशः यथा संख्यायते भुवि तथा विट्शूद्र विप्राणां ताः ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥

इति एष	- इस प्रकार यह	**तथा ताः ता**	- वैसे ही उन उन
यथा मानवः वंशः	- जैसे मनुके वंशकी	**युगे युगे**	- युगोंमें
भुवि संख्यायते	- पृथ्वीपर गणना होती है	**विट् शूद्र**	- वैश्य, शूद्र,
		विप्राणां	- ब्राह्मणोंका (वंश)
		ज्ञेया	- जान लेना चाहिए ॥ ३५ ॥

एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनाम् ।
कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥

एतेषां नाम लिंगानां पुरुषाणां महात्मनां कथा मात्र अवशिष्टानां कीर्तिः एव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥

एतेषां	- इन	**पुरुषाणां**	- पुरुषोंकी
नाम लिंगानां	- नामसे ही पहिचाने जाने वाले	**भुवि**	- पृथ्वीपर
		कीर्तिः एव	- कीर्ति ही
कथामात्र	- कथा मात्र	**स्थिता**	- रह गयी है ॥ ३६ ॥
अवशिष्टानां	- बचे हुए		
महात्मनां	- महात्मा		

देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥

देवापिः शन्तनोः भ्राता मरुः च इक्ष्वाकु वंशजः कलाप ग्राम आसाते महायोग बल अन्वितौ ॥ ३७ ॥

शन्तनोः भ्राता	- शन्तनुके बड़े भाई	महायोग	- महायोग
देवापिः च	- देवापि तथा	बल अन्वितौ	- बल से युक्त
इक्ष्वाकु वंशजः	- इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न	कलाप ग्राम	- कलाप ग्राममें१
मरुः	- मरु	आसाते	- रहते हैं ॥ ३७ ॥

ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥

तौ इह एत्य कलेः अन्ते वासुदेव अनुशिक्षितौ वर्णआश्रम युतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥

कलेः अन्ते	- कलियुगका अन्त होनेपर	पूर्ववत्	- पहिलेके समान
तौ इह एत्य	- वे दोनों यहां आकर	वर्ण आश्रम युतं	- वर्ण-आश्रमयुक्त
वासुदेव	- भगवान वासुदेव (कल्कि) की	धर्मं	- धर्मका
अनुशिक्षितौ	- आज्ञाके अनुसार	प्रथयिष्यतः	- विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुः युगं अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥

कृतं त्रेता	- सतयुग, त्रेता,	अनेक क्रम योगेन	- इसी क्रमके अनुसार
द्वापरं च	- द्वापर तथा	भुवि प्राणिषु	- पृथ्वीपर प्राणियोंमें
कलिः च	- कलियुग भी	वर्तते	- सक्रिय रहते हैं ॥३९॥
इति चतुः युगं	- इस प्रकार चारों युग		

---

१. हिमालय में कहीं बदरीनाथसे आगे यह सामान्य मनुष्यके लिए अदृश्य सिद्ध पुरुषोंका निवास स्थान है । अनेक महात्माओंने 'ज्ञानगंज' जैसे कुछ नामोंसे इसका उल्लेख किया है ।

राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथापरे ।
भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

राजन् एते मया प्रोक्ता नरदेवाः तथा अपरे भूमौ ममत्वं कृत्वा अन्ते हित्वा इमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

राजन् - राजन् !
मया प्रोक्ता - मेरे द्वारा वर्णित
एते नरदेवाः - ये राजा लोग
तथा अपरे - तथा दूसरे भी
भूमौ ममत्वं कृत्वा - पृथ्वीसे ममता करके
अन्ते इमां त्यक्त्वा - अन्तमें इसे छोड़कर
निधनंगताः - मर गये ॥ ४० ॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा अन्ते राज नाम्नः अपि यस्य च भूत ध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥ ४१ ॥

यस्य च - जिस (शरीर) की तो
राज नाम्नः अपि - राजा नाम होनेपर भी
अन्ते - अन्तमें
कृमि - (सड़नेपर) कीड़ा
विट् - (पशु-पक्षी खालें तो) विष्ठा या
भस्म - (जला देनेपर) भस्म
संज्ञा - नाम होगा
तत् कृते - उसके लिए
भूत् ध्रुक् - प्राणियोंसे द्रोह करके
यतः निरयः - जिससे नरक होता है
किं स्वार्थं वेद - क्या कोई (अपना नावास्तविक) स्वार्थ जानता है ? ॥ ४१ ॥

कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ।
मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥

कथं स इयं अखण्डा भूः पूर्वैः मे पुरुषैः धृता मत् पुत्रस्य च पौत्रस्य मत् पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥

मे पूर्वैः	- (वे सोचते हैं) "मेरे पूर्वज	मत्	- मेरा हो जाय,
पुरुषैः धृता	- पुरुषों द्वारा पालिता	पुत्रस्य च	- (मेरे) पुत्रका तथा
इयं अखण्डा	- यह अखण्ड भूमण्डल	पौत्रस्य	- पौत्रका
भूः		वा मत् पूर्व	- अथावा मेरे आने वाले
कथं स	- कैसे वही (सम्पूर्ण)	वंशजस्य	- वंशजोंका (बना रहे) ॥ ४२ ॥

तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वाऽऽत्मतयाबुधाः ।
महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥

तेजः अप् अन्नमयं कायं गृहीत्वा आत्मतया अबुधाः महीं ममतया च उभौ हित्वा अन्ते अदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥

अबुधाः	- ये अज्ञानी	महीं ममतया	- पृथ्वीको ममता (मेरीके) रूपमें
तेजः अप्	- अग्नि, जल तथा	गृहीत्वा	- ग्रहण (मान) करके
अन्नमयं	- अन्नमय	च उभौ हित्वा	- तथा दोनोंको त्यागकर
कायं	- शरीरको	अदर्शनंगता	- अदृश्य होगये ॥४३॥
आत्मतया	- आत्माके रूपमें एवं		

ये ये भूपतयो राजन् भुञ्जन्ति भुवमोजसा ।
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

ये ये भूपतयः राजन् भुञ्जन्ति भुवम् ओजसा कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

राजन्	- राजन् !	ते सर्वे	- वे सब
ये ये भूपतयः	- जो जो राजा लोग	कालेन	- कालके द्वारा
ओजसा	- अपने बलसे	कथासु च	- कथाओंमें तो
भुवम् भुञ्जन्ति	- पृथ्वीका उपभोग करते थे	कथा मात्राः	- कहानीमात्र
		कृताः	- बना दिये गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे द्वितियोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान् नृपान् हसति भूरियम् ।
अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥

दृष्ट्वा आत्मनिजये व्यग्रान् नृपान् हसति भूः इयं अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥

आत्मजये	- अपनेको जीतनेके लिए	**अहो मृत्योः**	- 'अहो, मृत्युके
व्यग्रान्	- उतावले	**क्रीडनकाः**	- खिलौने
नृपान् दृष्ट्वा	- राजाओंको देखकर	**नृपाः मा**	- राजा मुझे
इयं भूः	- यह पृथ्वी	**विजिगीषन्ति**	- जीतना चाहते हैं
हसति	- हँसती है		॥ १ ॥

काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद् विदुषामपि ।
येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥

काम एष नरेद्राणां मोघः स्यात् विदुषां अपि येन फेन उपमे पिण्डे ये अति विश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥

विदुषां अपि	- विद्वान होनेपर भी	**येन नृपाः**	- जिसके कारण राजा लोग
नरेन्द्राणां	- राजाओंकी	**फेन उपमे**	- फेनके समान (नश्वर)
एष काम	- यह कामना	**पिण्डे**	- शरीरपर
मोघः स्यात्	- व्यर्थ है	**अति-विश्रम्भिता**	- बहुत अधिक विश्वास कर लेते हैं ॥ २ ॥

पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः ।
ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥

पूर्वं निर्जित्य षट् वर्गं जेष्यामः राजमन्त्रिणः ततः सचिव पौर आप्तान् करीन्द्रान् अस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥

पूर्वं	- (वे सोचते हैं) पहिले	**ततः सचिव**	- फिर सचिवों,
षट्वर्गं	- मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियोंको	**पौर आप्तान्**	- नगरके मुखियों,
		करीन्द्रान्	- महागजों तथा
निर्जित्य	- जीतकर फिर	**अस्य-**	- इस (विजय) के
राजमन्त्रिणः	- (अपने शत्रु) राजाओंके मन्त्रियोंको	**कण्टकान्**	कण्टकों (बाँधकों) को
		जेष्यामः	- जीत लेंगे ॥ ३ ॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ।
इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागर मेखलां इति आशा बद्ध हृदया न पश्यन्ति अन्तिके अन्तकम् ॥ ४ ॥

एवं क्रमेण	- इस प्रकार क्रमशः	**इति आशा**	- ऐसी आशा
सागर मेखलां	- समुद्रसे घिरी (सम्पूर्ण)	**बद्ध हृदया**	- हृदयमें बाँधकर
पृथ्वीं जेष्यामः	- पृथ्वी जीत लेंगे	**अन्तिके अन्तकं**	- समीप खड़े कालको
		न पश्यन्ति	- नहीं देखते ॥ ४ ॥

समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ।
कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥

समुद्र आवरणां जित्वा मां विशन्ति अब्धिं ओजसा कियत् आत्मजयस्य एतत् मुक्तिः आत्मजये फलम् ॥ ५ ॥

समुद्र आवरणां - समुद्रसे घिरी
मां जित्वा - (एक द्वीप रूपी) मुझे जीतकर
ओजसा - उत्साहपूर्वक
अब्धिं विशन्ति - (दूसरे द्वीपके लिए) समुद्रमें प्रवेश करते हैं
एतत् - यह सब
आत्मजयस्य - चित्तके जीतनेके (सम्मुख)
कियत् - कितना (तुच्छ) है (क्योंकि)
आत्मजये - चित्तको जीतनेका
फलं मुक्तिः - फल मोक्ष है ॥ ५ ॥

यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ।
गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥

यां विसृज्य एव मनवः तत् सुताः च कुरूद्वह गता यथा आगतं युद्धे तां मां जेष्यन्ति अबुद्धयः ॥ ६ ॥

कुरूद्वह - कुरुकुलपालक परीक्षित !
यां विसृज्य एव - जिसको छोड़कर ही
मनवः च - मनुगण तथा
तत् सुताः - उनके पुत्र
यथा आगतं - जैसे आये थे
गता - (वैसे ही) चले गये
तां मां - उस मुझे
अबुद्धयः - ये अज्ञानी
युद्धे जेष्यन्ति - युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥ ६ ॥

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥

मत् कृते पितृ पुत्राणां भ्रातृणां च अपि विग्रहः जायते हि असतां राज्ये ममताबद्ध चेतसाम् ॥ ७ ॥

हि असतां- - क्योंकि दुष्ट हैं,
राज्ये उनके राज्यमें
ममताबद्ध - ममत्वसे बँधे
चेतसां - चित्तवाले
पितृ पुत्राणां - पिता-पुत्रमें,
च भ्रातृणां अपि - तथा भाइयोंमें भी
मत् कृते - मेरे लिए
विग्रहः जायते - लड़ाई होती है ॥७॥

ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ।
स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥

मम एव इयं मही कृत्स्ना न ते मूढ इति वादिनः स्पर्धमाना मिथः घ्नन्ति म्रियन्ते मत् कृते नृपाः ॥ ८ ॥

मत् कृते	- मेरे लिए	**इति वादिनः**	- ऐसा कहते हुए
नृपाः	- राजा लोग	**स्पर्धमाना**	- स्पर्धा करते हुए
इयं कृत्स्ना	- 'यह सम्पूर्ण	**मिथः घ्नन्ति**	- एक दूसरेको मारते हैं
महीमम	- पृथ्वी मेरी है,	**म्रियन्ते**	- और मरते हैं ॥ ८ ॥
मूढतेन	- मूर्ख, तेरी नहीं है'		

पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ।
मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥

पृथुः पुरूरवा, गाधिः, नहुषः, भरतः, अर्जुनः सहस्रजिन्ति मान्धाता, सगरः, रामः खट्वांगः धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥

तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः ।
भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥

तृणबिन्दुः, ययातिः च, शर्यातिः, शन्तनुः, गयः, भगीरथः, कुवयलाश्वः, ककुत्स्थः, नैषधः (नल) नृगः ॥ १० ॥

हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ।
नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥

हिरण्यकशिपुः, वृत्रः रावणः लोकरावणः (लोगोंको रुलाने वाला) नमुचिः, शम्बरः, भौमः (भौमासुर) हिरण्याक्षः, अथ (और) तारकः (तारकासुर) ॥ ११ ॥१

---

१. ये सब केवल नाम हैं । जहाँ आवश्यक है, कोष्ठक में स्पष्टीकरण है ।

अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ।
सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥

अन्ये च बहवः दैत्या राजानः ये महा ईश्वराः सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितः अजिताः ॥ १२ ॥

अन्ये च	- दूसरे भी	**सर्वे सर्वविदः**	- वे सब सर्व विद्या पारंगत,
बहवः	- बहुतसे	**शूराः**	- शूर
दैत्या राजानः	- दैत्य एवं राजा लोग	**सर्वे सर्वजितः**	- वे सभी सबको जीतने
ये महा ईश्वराः	- जो बहुत अधिक समर्थ थे		वाले तथा
		अजिताः	- स्वयं अजेय थे ॥१२॥

ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ।
कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

ममतां मयि अवर्तन्त कृत्वा उच्चैः मर्त्य धर्मिणः कथा अवशेषाः कालेन हि अकृत अर्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

विभो	- प्रभो !	**अकृतअर्थाः**	- लालसा पूरी हुए बिना ही
मयि उच्चैः	- मुझसे प्रगाढ	**कालेन**	- कालके द्वारा
ममतां	- ममत्त्वका	**कथा-**	- कथा मात्र बचे रहने
अवर्तन्त कृत्वा	- व्यवहार करते हुए	**अवशेषाः**	वाला
हि मर्त्य-धर्मिणः	- क्योंकि मरण धर्मा थे	**कृता**	- बना दिये गये ॥ १३ ॥

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥

कथा इमाः ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषां विज्ञान वैराग्य विवक्षया विभो वचः विभूतीः न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥

विभो	- महाराज !	**यशः विताय**	- यशका विस्तार करके
ते इमाः	- तुमसे यह	**परे युषां**	- परलोक चले जाने वालोंकी
महीयसां	- महान् पुरुषों का	**कथा कथिता**	- कथा कही है
विज्ञान वैराग्य	- विज्ञान और वैराग्यका	**वचः विभूतीः**	- (यह सब) वाणीका वैभव है
विवक्षया	- उपदेश करनेके लिए	**पारमार्थ्यं तु न**	- (इसमें) परमार्थ तत्त्वतो नहीं है ॥ १४ ॥
लोकेषु	- लोकमें		

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः
संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः ।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं
कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥

यः तु उत्तमश्लोक गुण अनुवादः संगीयते अभीक्ष्णं अमंगलघ्नः तं एव नित्यं शृणुयात् अभीक्ष्णं कृष्णे अमलां भक्तिं अभीप्समानः ॥ १५ ॥

यः तु	- (किन्तु) इसमें जो तो	**कृष्णे**	- श्रीकृष्णमें निर्मल भक्ति
अमंगलघ्नः	- अमंगलोंका नाशक	**अमलां भक्तिं**	
उत्तम श्लोक	- पुण्यकीर्ति भगवानके	**अभीप्समानं**	- लालसा रखते हुए
गुण अनुवादः	- गुणोंका वर्णन	**तं एव नित्यं**	- उसीको सदा
अभीक्ष्णं	- बार-बार	**अभीक्ष्णं**	- बार-बार
संगीयते	- गाया गया है,	**शृणुयात्**	- श्रवण करे ॥ १५ ॥

राजोवाच-

केनोपायेन भगवन् कलेर्दोषान् कलौ जनाः ।
विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥

केन उपायेन भगवन् कलेः दोषान् कलौ जनाः विधमिष्यन्ति उपचितान् तत् मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥

भगवन् - भगवन् !
मुने - मुनिवर !
कलौ जनाः - कलियुगके लोग
उपचितान् - राशि राशि
कलेः दोषान् - कलियुगके दोषोंको
केन उपायेन - किस उपायसे
यथा - जैसे
विधमिष्यन्ति - पूर्ण भस्म करेंगे
तत् मे ब्रूहि - वह मुझे बतलाइये ॥१६॥

युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ।
कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥

युगानि युग धर्मान् च मानं प्रलय कल्पयोः कालस्य ईश्वर रूपस्य गतिं विष्णोः महात्मनः ॥ १७ ॥

युगानि - युगोंका स्वरूप,
च युग धर्मान् - तथा उन युगोंके धर्म,
प्रलय - प्रलयके समय
कल्पयोः - कल्पकी
मानं - स्थिति,
महात्मनः - महात्मा
विष्णोः - सर्वव्यापक
ईश्वररूपस्य - सर्व समर्थ स्वरूप
कालस्य गतिं - कालका रूप (बतलाइये) ॥ १७ ॥

श्रीशुक उवाच-

कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥

कृते प्रवर्तते धर्मः चतुष्पात् तत् जनैः धृतः सत्यं दया तपः दानं इति पादा विभोः नृप ॥ १८ ॥

नृप	- राजन् !	**चतुष्पात्**	- चारों चरणोंसे
कृते	- सतयुगमें	**प्रवर्तते**	- प्रवृत्त होता है,
तत् जनैः	- उस समय लोगों द्वारा	**सत्यं दया**	- सत्य, दया,
धृतः	- धारण किया हुआ	**तपः दानं**	- तपस्या और दान
विभोः धर्मः	- भगवत् स्वरूप धर्म	**इति पादाः**	- ये (उनके) पैर हैं ॥१८॥

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः ।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्ताः तितिक्षवः आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

जनाः	- (उस समयके) लोग	**दान्ताः**	- इन्द्रिभजयी
सन्तुष्टाः	- सन्तोषी	**तितिक्षवः**	- तितिक्षु
करुणा	- दयालु,	**आत्मारामाः**	- आत्मामें ही रमण करनेवाले
मैत्राः	- (सबके) मित्र,	**समदृशः**	- समदर्शी
शान्ता	- शान्त,	**प्रायशः-श्रमणा**	- सन्यासी प्राय हो रहे हैं ॥ १९ ॥

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।
अधर्मपादैरनृतहिंसासन्तोषविग्रहैः ॥ २० ॥

त्रेतायां धर्म पादानां तुर्य अंशः हीयते शनैः अधर्मपादैः अनृत हिंसा असन्तोष विग्रहैः ॥ २० ॥

त्रेतायां - त्रेतायुगमें
अधर्मपादैः - अधर्मके चरण
अनृत - झूठ,
हिंसा - हिंसा,
असन्तोष - असन्तोष तथा
विग्रहैः - झगड़े द्वारा
धर्मपादानां - धर्मके चरणोंका
तुर्म अशः - चतुर्थांश
शनैः हीयते - धीरे-धीरे क्षीण होता है ॥ २० ॥

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः ।
त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥

तदा क्रिया तपः निष्ठा न अति हिंस्रा न लम्पटाः त्रैवर्गिकाः त्रयी वृद्धा वर्णा ब्रह्म उत्तरा नृप ॥ २१ ॥

नृप - राजन् !
तदा ब्रह्म- - उस समय ब्राह्मण
उत्तरा प्रधान
वर्णाः - वर्ण वाले लोग
क्रिया तपः - कर्मकाण्ड तथा तपस्यामें
निष्ठा - आस्थावान
न अति- - न बहुत हिंसक और
हिंसा
न लम्पटाः - न व्यभिचारी,
त्रैवर्गिकाः - त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) परायण
त्रयीवृद्धा - वेदोंके विद्वान होते हैं ॥ २१ ॥

तपः सत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ।
हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥

तपः सत्य दया दानेषु अर्धं ह्रसति द्वापरे हिंसा अतुष्टि अनृत द्वेषैः धर्मस्य अधर्म लक्षणैः ॥ २२ ॥

द्वापरे	- द्वापरयुगमें	**अधर्म लक्षणैः**	- अधर्मके चिन्होंसे
हिंसा अतुष्टि	- हिंसा, असन्तोष,	**धर्मस्य**	- धर्मके
अनृत	- झूठ,	**तपः सत्यं**	- तपस्या, सत्य,
द्वेषैः	- द्वेष	**दया दानेषु**	- दया, दानमेंसे
		अर्धं ह्रसति	- आधा भाग क्षीण होजाता है ॥ २२ ॥

यशस्विनो महाशालाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।
आढ्याः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥

यशस्विनः महाशालाः स्वाध्याय अध्ययने रताः आढ्याः कुटुम्बिनः हृष्टाः वर्णाः क्षत्र द्विज उत्तराः ॥ २३ ॥

यशस्विनः	- यशस्वी,	**आढ्याः**	- धनवान,
महाशालाः	- कर्मकाण्डी,	**कुटुम्बिनः**	- बड़े परिवार वाले
स्वाध्याय	- वेदोंके पढने	**हृष्टाः**	- प्रसन्नचित्त
अध्ययने	- तथा (गंभीर) अध्ययनमें	**क्षत्र द्विज**	- क्षत्रिय-ब्राह्मण
रताः	- लगे रहने वाले,	**उत्तराः**	- प्रधानता वाले
		वर्णाः	- वर्णोंके होते हैं ॥२३॥

कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ।
एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥

कलौ तु धर्म हेतूनां तूर्य अंशः अधर्म हेतुभिः एधमानैः क्षीयमाणः हि अन्ते सः अपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥

कलौ तु	- कलियुगमें तो	**तूर्य अंशः**	-(प्रारम्भमें) चतुर्थांश
हि अधर्म	- क्योंकि अधर्मके	**क्षीयमाणः**	-क्षीण होने लगे
हेतुभिः एधमानैः	- कारण बढ़ते जाते हैं	**अन्ते सः अपि**	-और अन्तमें वह भी
धर्म हेतूनां	- धर्मके कारणोंका	**विनङ्क्ष्यति**	-नष्ट हो जायगा ॥२४॥

तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ।
दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥

तस्मिन् लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः दुर्भगा भूरितर्षाः च शूद्र दास उत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥

तस्मिन्	- उस (कलि) युगमें	**शुष्कवैरिणः**	- अकारण शत्रुता करने वाले,
लुब्धा	- लोभी,	**दुर्भगा**	- भाग्यहीन
दुराचारा	- दुराचारी,	**च भूरितर्षाः**	- तथा अत्यन्त तृष्णा वाले
निर्दयाः	- निर्दय,	**शूद्र दास-**	- शूद्र एवं केवट
		उत्तराः	आदिकी प्रधानता वाला
		प्रजाः	- प्रजा होगी ॥ २५ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ।
कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥

सत्त्वं रजः तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः काल सञ्चोदिताः ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥

सत्त्वं रजः	- सत्त्व, रज और	**ते वै**	- वे निश्चय
तम इति	- तम ये	**कालसञ्चोदिताः**	- कालकी प्रेरणासे
गुणाः पुरुषे	- गुण पुरुषमें	**आत्मनि**	- चित्तमें
दृश्यन्ते	- दीखते हैं,	**परिवर्तन्त**	- बदलते रहते हैं ॥२६॥

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद् रुचिः ॥ २७ ॥

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनः बुद्धिः इन्द्रियाणि च तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यत् रुचिः ॥ २७ ॥

मनः बुद्धि	- मन, बुद्धि	**तदा कृतयुगं**	- उस समय सतयुग
च इन्द्रियाणि	- तथा इन्द्रियां	**विद्यात्**	- समझना चाहिए
यदा सत्त्वे	- जब सत्त्वगुणमें	**यत् ज्ञाने**	- जिससे ज्ञान एवं
प्रभवन्ति	- स्थित होकर व्यवहार करती है	**तपसि रुचिः**	- तपस्यामें रुचि होती है ॥ २७ ॥

यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

यदा धर्म अर्थ कामेषु भक्तिः भवति देहिनां तदा त्रेता रजोवृत्तिः इति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

बुद्धिमन्	- बुद्धिमान परीक्षित !	**तदा रजोवृत्तिः**	- तब रजोगुणकी वृत्ति
यदा देहिनां	- जब शरीर धारियोंकी	**त्रेता इति**	- त्रेता युग है ऐसा
धर्म अर्थ कामेषु	- धर्म, अर्थ, काममें	**जानीहि**	- समझो ॥ २८ ॥
भक्तिः भवति	- प्रीति हो		

यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद् रजस्तमः ॥ २९ ॥

यदा लोभः तु असन्तोषः मानः दम्भः अथ मत्सरः कर्मणां च अपि काम्यानां द्वापरं तत् रजः तमः ॥ २९ ॥

यदा तु	- जब तो	**च काम्यानां**	- और सकाम
लोभः	- लोभ,	**कर्मणां अपि**	- कर्मोंकी भी (इच्छा बढ़े)
असन्तोषः	- असन्तोष,	**तत् रजः-**	- वह रजोगुण-तमोगुण
मानः दम्भः	- अभिमान, दम्भ,	**तमः**	मिश्रित
अथ मत्सरः	- तथा मात्सर्य	**द्वापरं**	- द्वापर युग है ॥ २९ ॥

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

यदा माया अनृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनं शोकः मोहः भयं दैन्यं स कलिः तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

यदा माया	- जब कपट,	शोकः मोहः	- शोक, मोह,
अनृतं	- झूठ	भयं दैन्यं	- भय, दीनता (चित्तमें आवें)
तन्द्रा निद्रा	- तन्द्रा-निद्रा,	स कलिः	- वह कलियुग
हिंसा विषादनं	- हिंसा, विषाद,	तामसः स्मृतः	- तमोगुणी कहा गया है ॥ ३० ॥

यस्मात् क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ।
कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥

यस्मात् क्षुद्रदृशः मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महा अशनाः कामिनः वित्तहीनाः च स्वैरिण्यः च स्त्रियः असतीः ॥ ३१ ॥

यस्मात्	- जिस (कलियुग) के कारण	कामिनः	- कामुक
मर्त्याः क्षुद्रदशः	- मनुष्य तुच्छदर्शी	च वित्तहीनाः	- तथा धनहीन
क्षुद्रभाग्याः	- अल्प भाग्य,	च स्त्रियाः	- एवं स्त्रियां
महाअशनाः	- बहुत खाने वाले,	स्वैरिण्यः	- स्वेच्छाचारिणी
		असतीः	- कुलटा (हो जाती हैं) ॥ ३१ ॥

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखण्डदूषिताः ।
राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥

दस्यु उत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखण्ड दूषिताः राजानः च प्रजाभक्षाः शिश्न उदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥

जनपदा	- बस्तियोंमें	**च राजानः**	- तथा राजा लोग
दस्यु उत्कृष्टा	- डाकुओंकी प्रधानता होती है,	**प्रजा भक्षा**	- प्रजाका भक्षण (रक्त शोषक) हो जाते हैं
वेदाः	- वेद	**द्विजाः**	- ब्राह्मण
पाखण्ड दूषिताः	- पाखण्डियों द्वारा दूषित हो जाते हैं	**शिश्न उदर**	- उपस्थ और पेट
		परा	- परायण (कामुक और खब्बू) हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥

अव्रता वटवः अशौचा भिक्षवः च कुटुम्बिनः तपस्विनः ग्रामवासा न्यासिनः अति अर्थ लोलुपाः ॥ ३३ ॥

वटवः	- ब्रह्मचारी लोग	**भिक्षवः**	- भिक्षा मांगने वाले,
अव्रता	- ब्रह्मचर्य व्रतहीन	**तपस्विनः**	- तपस्वी वानप्रस्थ
अशौचा	- अपवित्र रहने वाले,	**ग्रामवासाः**	- बस्तियोंमें रहने वाले एवं
च कुटुम्बिनः	- तथा कुटुम्बवान गृहस्थ	**न्यासिनः**	- सन्यासी
		अति अर्थ लोलुपाः	- अत्यन्त धन-लोलुप होजाते हैं ॥ ३३ ॥

ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।
शश्वत्कटुकभाषिण्य श्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥

ह्रस्वकाया महाहारा भूरि अपत्या गत ह्रियः शश्वत् कटुक भाषिण्यः चौर्य माया उरु साहसाः ॥ ३४ ॥

ह्रस्व काया - (लोग) छोटे शरीरके (नाटे)
महाहारा - बहु भोजी,
भूरि अपत्या - बहु-सन्तति,
गत ह्रियः - निर्लज्ज,
शश्वत् - बराबर
कटुक भाषिण्यः - कटुभाषी,
चौर्य माया - चोर, कपटी,
उरु साहसाः - बहुत साहसी (होजाते हैं) ॥३४॥

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ।
अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधुजुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूट कारिणः अनापदि अपि मंस्यन्ते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥

वै क्षुद्राः - निश्चय तुच्छ लोग
कूट कारिणः - छलपूर्ण व्यवहार करने वाले
किराटाः - कौड़ी-कौड़ीसे चिपकने वाले
पणयिष्यन्ति - व्यापार करेंगे,
अनापदि अपि - आपत्तिकाल न होनेपर भी
साधु जुगुप्सितां - सत्पुरुषों द्वारा निन्दित
वार्तां मंस्यन्ते - आजीविका स्वीकार करेंगे ॥ ३५ ॥

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।
भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अपि अखिल उत्तमं भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाः च अपयस्विनीः ॥ ३६ ॥

अखिल उत्तमं - सब प्रकारसे श्रेष्ठ
अपि - होनेपर भी
निर्द्रव्यं पतिं - धनहीन स्वामीको
भृत्या - सेवक,
विपन्नं उत्तमं - विपत्तिमें पड़े श्रेष्ठ
भृत्यं पतयः - सेवकको स्वामी तथा
अपयस्विनीः - दूधन देने वाली (बूढ़ी)
कौलं गाः - अपने घरकी गायको
त्यक्ष्यन्ति - (लोग) त्याग देंगे
॥ ३६ ॥

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन् हित्वा सौरतसौहृदाः ।
ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

पितृ भ्रातृ सुहृत् ज्ञातीन् हित्वा सौरत सौहृदाः ननान्दृ श्याल संवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३६ ॥

कलौ नराः	- कलियुगके पुरुष	**हित्वा**	- त्यागकर,
सौरत सौहृदाः	- कामवासनाकी तृप्तिके लिये मैत्री करने वाले	**दीनाः**	- विचारे होकर
		स्त्रैणाः	- स्त्री जित (होनेसे)
पितृ भ्रातृ	- पिता-भाई,	**ननान्दृ**	- सालियों और
सुहृत् ज्ञातीन्	- हितैषी, जाति वालोंको	**श्याल संवादा**	- सालोंसे सलाह लेगें ॥ ३७ ॥

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपः वेष उपजीविनः धर्मं वक्ष्यन्ति अधर्मज्ञा अधिरुह्य उत्तम आसनम् ॥ ३८ ॥

तपः वेष	- तपस्वीके वेषसे	**अधर्मज्ञा**	- धर्मको न जानने वाले
उपजीविनः	- आजीविका करने वाले	**उत्तम आसनं**	- श्रेष्ठ (वक्ताके) आसनपर
शूद्राः	- शूद्र लोग	**अधिरुह्य**	- बैठकर
प्रतिग्रहीष्यन्ति	- दान लेंगे,	**धर्मं वक्ष्यन्ति**	- धर्मोपदेश करेंगे ॥३८॥

नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः ।
निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥

नित्यं उद्विग्न मनसः दुर्भिक्ष कर कर्शिताः निः अन्ने भूतले राजन् अनावृष्टि भय आतुराः ॥ ३९ ॥

राजन् - राजन् !
दुर्भिक्ष - अकाल तथा
कर कर्शिताः - करसे उत्पीडिता (प्रजा)
नित्यं उद्विग्न - सदा उद्विग्न चित्त,
मनसः
अनावृष्टि - अवर्षण (केकारण)
निः अन्ने - आहारहीन पृथ्वीपर
भूतले
भय आतुराः - भय व्याकुल ॥ ३९ ॥

वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥

वासः अन्न पान शयनव्यवाय स्नान भूषणैः हीनाः पिशाच सन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥

कलौ प्रजाः - कलियुगकी प्रजा
वासः अन्न - वस्त्र, आहार,
पान शयन - पीनेको जल, सोनेको स्थान,
स्नानभूषणैः - स्नान तथा आभूषणोंसे
हीनाः - रहित होकर
पिशाच सन्दर्शा - पिशाचोंके समान दीखने वाली
भविष्यन्ति - होजायगी ॥ ४० ॥

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥

कलौ काकिणिके अपि अर्थे विगृह्य त्यक्त सौहृदाः त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकान् अपि ॥ ४१ ॥

कलौ - कलियुगमें
काकिणिके - कौड़ीमान
अर्थे अपि - धनके लिए भी
त्यक्त सौहृदाः - परस्परकी हितैषिता त्यागकर
विगृह्य - झगड़ा करके
प्रियान् - प्रिय
प्राणान् च - प्राणोंको भी
त्यक्ष्यन्ति - त्याग देंगे और
स्वकान् अपि - अपने लोगोंको भी
हनिष्यन्ति - मार देंगे ॥ ४१ ॥

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ।
पुत्रान् स र्वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ॥ ४२ ॥

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितराः अपि पुत्रान् सर्व अर्थ कुशलान् क्षुद्राः शिश्न उदरम्भराः ॥ ४२ ॥

शिश्न - उपस्थ एवं
उदरम्भराः - पेटको ही तृप्त करनेवाले
क्षुद्राः मनुजाः - क्षुद्र मनुष्य
स्थविरौ अपि - वृद्ध होजानेपर भी
पितराः - माता-पिताकी एवं
सर्व अर्थ - सब कामोंमें
कुशलान् - निपुण
पुत्रान् - पुत्रोंकी
रक्षिष्यन्ति न - रक्षा नहीं करेंगे ॥४२॥

कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं
त्रिलोकनाथानतपादपंकजम् ।
प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं
यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रिलोकनाथ आनत पादपंकजं प्रायेण मर्त्या भगवन्तं अच्युतं यक्ष्यन्ति पाखण्ड विभिन्न चेतसः ॥ ४३ ॥

राजन् - राजन् !
कलौ - कलियुगमें
पाखण्ड - पाखण्डसे
विभिन्न चेतसः - भ्रान्त बुद्धि
प्रायेण मर्त्या - प्रायः मनुष्य
जगतां परं गुरुं - सम्पूर्ण जगतके परमगुरु,
त्रिलोकनाथ - त्रिलोकीनाथ
भगवन्तं - भगवान
अच्युतं - अच्युतके
पादपंकजं - चरण-कमलोंमें
आनत - विनम्र होकर
यक्ष्यन्ति न - (उनकी) उपासना नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥

यत् नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन् वा विवशः गृणन् पुमान् विमुक्त कर्म अर्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥४४॥

म्रियमाण	- मरते समय	**कर्म अर्गल**	- कर्मकी शृंखलासे
आतुरः	- व्याकुल होकर	**विमुक्त**	- छूटकर
वा विवशः	- अथवा विवश होकर	**उत्तमां गतिं**	- उत्तम गति
पतन्	- गिरते समय,	**प्राप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ।
स्खलन्	- फिसलते समय	**कलौ जनाः**	- कलियुगी मनुष्य
यत् नामधेयं	- जिनका नाम	**तं यक्ष्यन्ति न**	- उनकी उपासना नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥
गृणन् पुमान्	- उच्चारणकरके पुरुष		

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्य देश आत्म सम्भवान् सर्वान् हरति चित्तस्थः भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥

द्रव्य देश	- पदार्थ, स्थान एवं	**चित्तस्थः**	- चित्तमें स्थित
आत्म सम्भवान्	- चित्तसे उत्पन्न	**भगवान्**	- भगवान
कलिकृतान्	- कलियुगके प्रभावसे हुए	**पुरुषोत्तमः**	- पुरुषोत्तम
सर्वान् दोषान्	- सब दोषोंको	**हरति**	- हरण कर लेते हैं ॥४५॥

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥

श्रुतः संकीर्तितः ध्यातः पूजितः च आदृतः अपि वा नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थः जन्म अयुत अशुभम् ॥ ४६ ॥

श्रुतः	- श्रवण करनेपर,	**हृतस्थः-**	- हृदयमें स्थित
संकीर्तितः	- संकीर्तन करनेपर,	**भगवान्**	भगवान
ध्यातः च	- ध्यान करने पर तथा	**जन्म अयुत**	- सहस्रों जन्मोंके
पूजितः	- पूजा करनेपर	**नृणां अशुभं**	- मनुष्यके पापोंको
वा आदृतः-	- अथवा आदर करनेपर	**धुनोति**	- नष्ट कर देते हैं ॥४६॥
अपि	भी		

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वणं हन्ति धातुजम् ।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥

यथा हेम्नि स्थितः वह्निः दुर्वणं हन्ति धातुजं एवं आत्मगतः विष्णुः योगिनां अशुभ आशयम् ॥ ४७ ॥

यथा हेम्नि	- जैसे स्वर्णमें	**एवं आत्मगतः**	- इसी प्रकार हृदयमें आनेपर
स्थितः वह्निः	- स्थित होकर अग्नि	**विष्णुः**	- श्रीहरि
धातुजं	- (दूसरी मिली) धातुसे उत्पन्न	**योगिनां**	- साधकोंके
दुर्वणं	- मलिनताको	**आशयं**	- अन्तःकरणके
हन्ति	- नष्ट कर देता है	**अशुभ**	- पापोंको (नष्ट कर देते हैं) ॥ ४७ ॥

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री-
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥

विद्या तपः प्राण निरोध मैत्री तीर्थ अभिषेकव्रत दान जप्यैः न अत्यन्त शुद्धिं लभते अन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवति अनन्ते ॥ ४८ ॥

विद्या तपः	- विद्या, तपस्या,	**अन्तरात्मा**	- अन्तःकरणकी
प्राणनिरोध	- प्राणायाम,	**अत्यन्त शुद्धिं**	- आत्यन्तिक शुद्धि
मैत्री	- सब प्राणियोंसे मित्रता,	**न लभते**	- नहीं प्राप्त करता
तीर्थ अभिषेक	- तीर्थ-स्नान,	**यथा भगवति**	- जैसे भगवान
व्रत दान जप्यैः	- व्रत, दान, जपादिसे	**अनन्ते हृदिस्थे**	- अनन्तके हृदयमें स्थित होनेपर ॥ ४८ ॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् ।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो या सि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

तस्मात् सर्व आत्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवं म्रियमाणः हि अवहितः ततः यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

राजन्	- राजन् !	**हि म्रियमाणः**	- क्योंकि मरते समय भी
तस्मात्	- इसलिए	**अवहितः**	- (उनमें) एकाग्र होकर
सर्व आत्मना	- सम्पूर्ण मनसे	**ततः परां-गतिं**	- फिर परम गति
केशवं	- केशवको	**यासि**	- जाओगे ॥ ४९ ॥
हृदिस्थंकुरु	- हृदयमें स्थित करो		

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः ।
आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥

म्रियमाणैः अभिध्येयः भगवान् परमेश्वरः आत्मभावं नयति अंग सर्व आत्मा सर्व संश्रयः ॥ ५० ॥

अंग	- प्रिय परीक्षित !	**परमेश्वरः**	- परमेश्वरका
म्रियमाणैः	- मरनेवालेको	**अभिध्येयः**	- ही ध्यान करना चाहिए
सर्व आत्मा	- सर्व स्वरूप,	**आत्म भावं**	- (इससे वे) अपने स्वरूपमें
सर्व संश्रयः	- सबके आश्रय	**नयति**	- पहुँचा देते (लीन कर लेते) हैं ॥ ५० ॥
भगवान्	- भगवान		

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

कलेः दोषनिधे राजन् अस्ति हि एकः महान् गुणः कीर्तनात् एव कृष्णस्य मुक्त संगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

राजन्	- राजन !	**अस्ति**	- है कि
दोषनिधे	- दोषनिधान	**कृष्णस्य**	- श्रीकृष्णका
कलेः एकः	- कलियुगमें एक	**कीर्तनात् एव**	- कीर्तन करनेसे ही
हि महान् गुणः	- क्योंकि महान् गुण	**मुक्त संगः**	- आसक्तियोंसे छूटकर
		परं व्रजेत्	- परम पद चला जाता है ॥ ५१ ॥

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

कृते यत् ध्यायतः विष्णुं त्रेतायां यजतः मखैः द्वापरे परिचर्यायां कलौ तत् हरि कीर्तनात् ॥ ५२ ॥

कृते	- सतयुगमें	**द्वापरे**	- द्वापर युगमें
विष्णुं ध्यायतः	- भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे,	**परिचर्यायां**	- (मूर्तिकी) सेवा-पूजा करनेसे
		यत् तत्	- जो (फल होता है) वह
त्रेतायां	- त्रेतायुगमें	**कलौ**	- कलियुगमें
मखैः यजतः	- यज्ञों द्वारा आराधन करनेसे	**हरि-**	- श्रीहरिके कीर्तनसे
		कीर्तनात्	(होता है) ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ।
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

कालः ते परमाणु आदिः द्विपरार्ध अवधिः नृप कथितः युगमानं च शृणु कल्पलयाः अपि ॥ १ ॥

नृप	- राजन् !	**च युगमानं**	- तथा युगोंका मान
ते	- तुमसे	**कथितः**	- बतला चुका (अब)
परमाणु आदिः	- परमाणुसे आरम्भ करके	**कल्प**	- कल्पकी स्थिति और
		लयाः अपि	- प्रलय भी
द्विपरार्ध अवधिः	- दो परार्ध तककी सीमा वाला	**शृणु**	- सुनो ॥ १ ॥
कालः	- काल		

चतुर्युगसहस्त्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥

चतुर्युग सहस्रं तु ब्रह्मणः दिनं उच्यते स कल्पः यत्र मनवः चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥

विशांपते	- प्रजानाथ !	**उच्यते**	- कहा जाता है,
चतुर्युग	- चारों युगोंकी	**सकल्पः**	- उसीका नाम कल्प है
सहस्त्रंतु	- एक सहस्री तो	**यत्र चतुर्दश**	- जिसमें चौदह
ब्रह्मणः दिनं	- ब्रह्माका एक दिन	**मनवः**	- मनु (मन्वन्तर) होते हैं ॥ २ ॥

तदन्ते प्रलयस्तावान् ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ।
त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

तत् अन्ते प्रलयः तावान् ब्राह्मी रात्रिः उदाहृता त्रयः लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

तत् अन्ते	- उस (कल्प) के अन्तमें	**हि इमे**	- क्योंकि ये
प्रलयः	- प्रलय होनेपर	**त्रयः लोका**	- तीनों लोकोंकी
तावान्	- उतनी ही बड़ी	**प्रलयाय**	- प्रलय
ब्राह्मी रात्रिः	- ब्रह्माकी रात	**कल्पन्ते**	- होजाती है ॥ ३ ॥
उदाहृता	- बतलायी गयी है,		

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ।
शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥

एष नैमित्तकः प्रोक्तः प्रलयः यत्र विश्वसृक् शेते अनन्त आसनः विश्वं आत्मसात् कृत्य च आत्मभूः ॥ ४ ॥

एष नैमित्तकः	- यह नैमित्तिक	**आत्मसात् कृत्य**	- अपनेमें लीन करके
प्रलयः प्रोक्तः	- प्रलय कही गयी है	**च अनन्त-**	- तथा शेषशाषी
यत्र आत्मभूः	- जिसमें स्वयं भू ब्रह्माजी	**आसनः**	
विश्वं	- विश्वको	**विश्वसृक्**	- विश्वस्रष्टा भगवान
		शेते	- सोते हैं ॥ ४ ॥

द्विपरार्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

द्विपरार्धे तु अतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

परमेष्ठिनः - परमेष्ठी
ब्रह्मणः - ब्रह्माजीके
द्विपरार्धे - दो परार्ध (उनके दिनके अनुसार सौ वर्ष)
अतिक्रान्ते तु - जब बीत जाते हैं तो
तदा सप्त - तब सातों (महत्तत्त्व, अहंकार, पाँचों तन्मात्रा)
प्रकृतयः - प्रकृतियोंकी
वै प्रलयाय - निश्चित प्रलय
कल्पन्ते - होजाती है ॥ ५ ॥

एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते ।
आण्डकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥

एष प्राकृतिकः राजन् प्रलयः यत्र लीयते आण्डकोशः तु संघातः विघात उपसादिते ॥ ६ ॥

राजन् - राजन !
एष प्राकृतिकः - यह प्राकृतिक
प्रलयः - प्रलय है
यत्र - जिसमें
विघात- - विघटनका समय
उपसादिते आनेपर
संघातः - यह संघीभूत
आण्डकोशः तु - ब्रह्माण्ड तो
लीयते - लीन होजाता है ॥६॥

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन् न वर्षति ।
तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ ७ ॥

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन् न वर्षति तदा निरन्ने हि अन्यः अन्यं भक्षमाणाः क्षुधा अर्दिताः ॥ ७ ॥

राजन् - राजन्
भूमौ पर्जन्यः - पृथ्वीपर मेघ
शत वर्षाणि - सौ वर्षतक
वर्षति न - वर्षा नहीं करते,
तदा हि - उस समय क्योंकि
क्षुधा अर्दिताः - भूखसे बहुत पीड़ित होते हैं
निरन्ने - आहार न होनेसे
अन्यः अन्यं - एक दूसरेको
भक्षमाणाः - खाने लगते हैं ॥ ७ ॥

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ।
सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ॥ ८ ॥

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेन उपद्रुताः प्रजाः सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तकः रविः ॥ ८ ॥

कालेन - कालके द्वारा
उपद्रुताः - उपद्रवग्रस्त
प्रजाः शनकैः - प्रजा धीरे-धीरे
क्षयं यास्यन्ति - नष्ट होजाती है
सांवर्तकः रविः - प्रलयकालीन सूर्य
सामुद्रं दैहिकं - समुद्रका, शरीरोंका,
भौमं रसं - पृथ्वीका रस ॥ ८ ॥

रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ।
ततः संवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ ९ ॥

रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं न एव विमुञ्चति ततः संवर्तकः वह्निः संकर्षण मुख उत्थितः ॥ ९ ॥

घोरैः रश्मिभिः - (अपनी) दारुण किरणोंसे
सर्वं पिबते - सब पी लेता है,
विमुञ्चति - उसे छोड़ता
न एव - नहीं ही है
ततः संकर्षण - फिर शेषजीके
मुख उत्थितः - मुखोंसे प्रगट
संवर्तकः वह्नि - प्रलयाग्नि ॥ ९ ॥

दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरानथ ।
उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ १० ॥

दहति अनिल वेग उत्थः शून्यान् भूविवरान् अथ उपरिआधः समन्तात् च शिखाभिः वह्नि सूर्ययोः ॥ १० ॥

अनिल वेग - वायुके वेगसे
उत्थः - बढ़कर
अथ शून्यान् - फिर सूने
भूविवरान् - पृथ्वीके भीतरके लोकोंको
दहति - जला देता है ।
वह्नि सूर्ययोः - अग्नि और सूर्यकी
शिखाभिः - लपटोंसे
उपरि अधः - ऊपर नीचे
च समन्तात् - तथा चारों ओरसे ॥१०॥

दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ।
ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ ११ ॥

दह्यमानं विभाति अण्डं दग्ध गोमय पिण्डवत् ततः प्रचण्डः पवनः वर्षाणां अधिकं शतम् ॥ ११ ॥

दह्यमानं - जलाया जाता हुआ
दग्ध - जले हुए
गोमय - गोबरके
पिण्डवत् - पिण्ड (उपले) के समान
अण्डं विभाति - ब्रह्माण्ड लगता है,
ततः प्रचण्डः - फिर प्रचण्ड
पवनः - आंधी
वर्षाणां शतं - सैंकड़ों वर्षोंसे
अधिकं - अधिक ही ॥ ११ ॥

परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसाऽऽवृतम् ।
ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ १२ ॥

परः सांवर्तकः वाति धूम्रं खं रजसा आवृतं ततः मेघ कुलानि अंग चित्रवर्णानि अनेकशः ॥ १२ ॥

परः सांवर्तकः - परम प्रलयकालीन
वाति - चलती रहती है,
खं रजसा - आकाश धूलिसे
आवृतम् - ढककर
धूम्रः - धूमिल होजाता है,
अंग ततः - प्रिय परीक्षित ! फिर
अनेकशः - अनेकों प्रकारके
चित्र वर्णानि - अनेकों रंगोंके
मेघ कुलानि - मेघोंके समूह ॥ १२ ॥

शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ।
तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥ १३ ॥

शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः तत एक उदकं विश्वं ब्रह्माण्ड विवर अन्तरम् ॥ १३ ॥

शतं वर्षाणि	- सौ वर्ष तक	**तत ब्रह्माण्ड**	- फिर ब्रह्माण्डके
वर्षन्ति	- बरसते हैं,	**विवर अन्तरम्:**	- बीचके भागका
रभसस्वनैः	- तीव्र स्वरसे	**विश्वं**	- सम्पूर्ण विश्व
नदन्ति	- गर्जना करते हैं	**एक उदकं**	- एक जलमय (होजाता है) ॥ १३ ॥

तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे ।
ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

तदा भूमेः गन्धगुणं ग्रसन्ति आप उदप्लवे ग्रस्त गन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

तदा उदप्लवे	- तब जल प्रलय होजानेपर	**ग्रस्त गन्धा**	- गन्ध निगली जानेपर
भूमेः गुणं गन्ध	- भूमिके गुण गन्धको	**पृथिवी तु**	- पृथिवीकी तो
आप ग्रसन्ति	- जल निगल लेता है	**प्रलयत्वाय**	- प्रलयावस्था
		कल्पते	- होजाती है ॥ १४ ॥

अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ।
ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १५ ॥

अपां रसं अथो तेजः ता लीयन्ते नीरसाः ग्रसते तेजसः रूपं वायुः तत् रहितं तदा ॥ १५ ॥

अथो तेजः	- फिर अग्नि	**तेजसः रूपं**	- अग्निका रूप
अपां रसः	- जलका रस (ग्रहण कर लेता है)	**वायुः ग्रसते**	- वायु निगल लेता है
ता नीरसाः	- वह (जल) रस रहित होजाता है	**तदा तत्-रहितं**	- तब उस (रूप) से अग्नि रहित होजाता है ॥१५॥

लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ।
स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १६ ॥

लीयते च अनिले तेजः वायोः खं ग्रसते गुणं स वै विशति खं राजन् ततः च नभसः गुणम् ॥ १६ ॥

राजन्	- राजन् !	**खं ग्रसते**	- आकाश निगल लेता है,
तेजः च	- अग्नि भी	**वै स खं**	- निश्चय वह (वायु) आकाशमें (मिल जाता है)
अनिले लीयते	- अग्निमें लीन होजाता है,	**ततः च**	- फिर तो
वायोः गुणम्	- वायुके गुण (स्पर्श) को	**नभसः गुणं**	- आकाशके गुण ॥१६॥

शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ।
तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान् वैकारिको गुणैः ॥ १७ ॥

शब्दं ग्रसति भूतादिः नभः तं अनुलीयते तैजसः च इन्द्रियाणि अंग देवान् वैकारिकः गुणैः ॥ १७ ॥

शब्दं भूतादिः	- शब्दको अहंकार	**इन्द्रियाणि च**	- इन्द्रियोंको भी
ग्रसति	- निगलता है,	**तैजसः**	- तैजस (राजस) अहंकार
तं अनु	- उसके पीछे	**देवान्**	- (इन्द्रियोंके अधि) देवताओंका
नभः लीयते	- आकाशलीन होजाता है	**गुणैः**	- (उनके) गुणोंके साथ
अंग	- प्रिय परीक्षित !	**वैकारिकः**	- वैकारिक (सात्त्विक) अहंकार (लीन करता है) ॥ १७ ॥

महान् ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ।
ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन चोदितम् ॥ १८ ॥

महान् ग्रसति अहंकारं गुणाः सत्त्व आदयः च तं ग्रसते अव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन चोदितम् ॥ १८ ॥

राजन्	- राजन् !	**सत्त्व आदयः**	- सत्त्व आदि
अहंकारं	- अहंकारको	**गुणाः**	- गुण (ग्रस लेते हैं)
महान् ग्रसति	- महत्तत्त्व निगल लेता है,	**कालेन चोदितम्**	- कालकी प्रेरणासे
		अव्याकृतं	- प्रकृति
च तं	- तथा उसको	**गुणान् ग्रसते**	- गुणोंको निगल लेती है ॥ १८ ॥

न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ।
अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १९ ॥

न तस्य काल अवयवैः परिणाम आदयः गुणाः अनादि अनन्तम् अव्यक्तं नित्यं कारणं अव्ययम् ॥ १९ ॥

काल अवयवैः	- कलके अंग (दिन, मासादि) में	**अनादि अनन्त**	- वह अनादि, अनन्त,
		अव्यक्तं	- अव्यक्त,
तस्य	- उस (प्रकृति) में	**नित्यं**	- नित्य,
परिणाम आदयः	- परिणाम आदि	**अव्ययं**	- अविनाशी
गुणाः न	- गुण नहीं होते,	**कारणं**	- मूल कारण है ॥१९॥

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं
तमो रजो वा महदादयोऽमी ।
न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा
न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥

न यत्र वाचः न मनः न सत्त्वं तमः रजः वा महत् आदयः अमी न प्राण बुद्धि इन्द्रिय देवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥

यत्र वाचः न	- जहां वाणीका प्रवेश नहीं है,	महत् आदयः	- महत्तत्त्वादि,
न मनः	- न मन,	प्राण बुद्धि	- प्राण, बुद्धि,
न सत्त्वं-	- न सत्त्व, तम, रजोगुण,	वा इन्द्रिय-	- अथवा इन्द्रियोंके देवता
तमः रजः		देवता न	नहीं हैं,
वा अमी	- अथवा ये	खलु-	- अरे लोकोंकी कल्पना
		लोककल्पः	
		सन्निवेशः न	- तथा उनकी स्थिति नहीं है ॥ २० ॥

न स्वप्नजाग्रन्न च तत् सुषुप्तं
न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ।
संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं
तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥

न स्वप्न जाग्रत् न च तत् सुषुप्तं न खं जलं भूः अनिलः अग्नि अर्कः संसुप्तवत् शून्यवत् अप्रतर्क्यं तत् मूलभूतं पदं आमनन्ति ॥ २१ ॥

तत्	- वह	तत् मूल-	- उस सबकी मूलभूत
स्वप्न	- स्वप्न	भूतं	
जाग्रत च	- जाग्रत तथा	पदं	- स्थितिको -
सुषुप्तं न	- सुषुप्त नहीं है,	संसुप्तवत्	- सोयेके समान,
खं जलं	- आकाश, जल,	शून्यवत्	- शून्यके समान,
भूः अनिलः	- पृथ्वी, वायु,	अप्रतर्क्यं	- अचिन्त्य
अग्नि अर्कः न	- अग्नि, सूर्य नहीं है,	आमनन्ति	- श्रुति कहती है ॥२१॥

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ।
शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥

लयः प्राकृतिकः हि एष पुरुष अव्यक्तयोः यदा शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः काल विद्रुताः ॥ २२ ॥

काल विदुताः	- कालके दौड़ानेसे	**शक्तयः**	- शक्तियां
यदा	- जब	**सम्प्रलीयन्ते**	- अत्यन्त लीन होजाती हैं
पुरुष-अव्यक्तयोः	- पुरुष और प्रकृतिकी	**हि एष**	- क्योंकि यह
		प्राकृतिकः	- प्राकृतिक
		लयः	- प्रलय है ॥ २२ ॥

बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ।
दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥

बुद्धि इन्द्रिय अर्थ रूपेण ज्ञानं भाति तत् आश्रयं दृश्यत्व अव्यतिरेकाभ्यां आदि अन्त वत् अवस्तु यत् ॥ २३ ॥

बुद्धि इन्द्रिय	- बुद्धि, इन्द्रिय	**दृश्यत्व**	- उनके दृश्य होनेसे,
अर्थ रूपेण	- एवं उन (इन्द्रियों) के विषयोंके रूपमें	**अव्यतिरेकाभ्यां**	- (ज्ञानसे) पृथक न होनेके कारण,
तत् आश्रयं	- उनका आश्रय (अधिष्ठान)	**यत् आदि-अन्तवत्**	- जो आदि-अन्त वाला है
ज्ञानं भाति	- ज्ञान ही भासित (प्रतीत) होरहा है	**अवस्तु**	- सत्ताहीन है ॥ २३ ॥

दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग् भवेत् ।
एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २४ ॥

दीपः चक्षुः च रूपं च ज्योतिषः न पृथक् भवेत् एवं धीः खानि मात्राः न स्युः अन्यतम् आदृतात् ॥ २४ ॥

दीपः	- दीपक,	**एवं धीः**	- इसी प्रकार बुद्धि,
चक्षुः च	- नेत्र तथा	**खानि**	- इन्द्रियां,
रूपं च	- रूप भी	**मात्राः**	- (रूप, रसादि) तन्मात्रामें
ज्योतिषः	- ज्योतिषसे	**आदृतात्**	- सम्मान्य अधिष्ठानसे
पृथक् न भवेत्	- पृथक नहीं हो सकते,	**अन्यतम्**	पृथक
		न स्युः	- नहीं हो सकते ॥२४॥

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ।
मायामात्रमिदं राजन् नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥

बुद्धेः जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिः इति च उच्यते मायामात्रं इदं राजन् नानात्वं प्रत्यक् आत्मनि ॥ २५ ॥

राजन्	- राजन् !	**उच्यते**	- कही जाती हैं
बुद्धेः जागरणं	- बुद्धि की जाग्रत,	**इदं नानात्वं**	- यह अनेकता
स्वप्नः च	- स्वप्न और	**मायामात्रं**	- केवल माया है
सुषुप्तिः इति	- सुषुप्ति में (तीन अवस्थायें)		॥ २५ ॥

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ।
ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ब्रह्मणि इदं तथा विश्वं अवयवि उदय अप्ययात् ॥ २६ ॥

यथा जलधरा	- जैसे मेघ	**अवयवि**	- अपने अंगों का अंगी
व्योम्नि भवन्ति	- आकाशमें (कभी) होते हैं	**विश्वं**	- विश्व
		उदय	- उत्पत्ति एवं
च न भवन्ति	- और (कभी) नहीं होते	**अप्ययात्**	- विनाशवान है
तथा इदं	- वैसे ही यह	**ब्रह्मणि**	- ब्रह्ममें है ॥ २६ ॥

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ।
विनार्थेन प्रतीयेरन् पटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २७ ॥

सत्यं हि अवयवः प्रोक्तः सर्व अवयविनां इह विना अर्थेन प्रतीयेरन् पटस्य इव अंग तन्तवः ॥ २७ ॥

अंग	- प्रिय परीक्षित !	**प्रोक्तः**	- कहे जाते हैं
हि सत्यं	- क्योंकि सत्य	**पटस्य**	- वस्त्रके
सर्व अवयविनां	- सभी अवयव वालोंका	**तन्तवः**	- सूतके समान
इह	- इस संसार में	**विना अर्थेन**	- बिना पदार्थ हुए ही (जैसे सूत के अतिरिक्त वस्त्र कोई पदार्थ नहीं है)
अवयवः	- अवयव (अंग) ही	**प्रतीयेरन्**	- प्रतीत हो रहे हैं ॥२७॥

यत् सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ।
अन्योन्यापाश्रयात् सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २८ ॥

यत् सामान्य विशेषाभ्यां उपलभ्येत स भ्रमः अन्यः अन्य अपाश्रयात् सर्वं आदि अन्तवत् अवस्तु यत् ॥ २८ ॥

यत् सामान्य	- जो सामान्य (कारण) रूपमें	**अपाश्रयात्**	- आश्रित होनेसे,
विशेषाभ्यां	- एवं विशेष (कार्य) रूपमें	**आदिअन्तवत्**	- आदि-अन्तवाले होनेसे भी
उपलभ्येत	- प्राप्त होता है,	**सर्वं यत्**	- सभी (पदार्थ) क्योंकि
स भ्रमः	- वह भ्रम (प्रतीति) है,	**अवस्तु**	- सत्ताहीन हैं ॥ २८ ॥
अन्यः अन्य	- (क्योंकि दोनों) एक दूसरेके		

विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा ।
न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २९ ॥

विकारः ख्यायमानः अपि प्रत्यक् आत्मानं अन्तरा न निरूप्यः अस्ति अणुः अपि स्यात् चेत् चित् समआत्मवत् ॥ २९ ॥

विकारः - (यह प्रपञ्चरूप) विकार
ख्यायमानः अपि - वर्णित होनेपर भी
प्रत्यक् आत्मानं - अपने अन्तरात्मासे
अन्तरा - पृथक्
अणुः अपितु - किञ्चित् भी तो
निरूप्यः न - निरूपण करने योग्य नहीं है
स्यात् चेत् - यदि (यह निरूपणीय) हो तो
आत्मवत् - आत्माके समान
समचित् - उसके बराबरका चेतन होगा (पर ऐसा है नहीं) ॥ २९ ॥

न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान् यदि मन्यते ।
नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ ३० ॥

न हि सतस्य नानात्वं अविद्वान् यदि मन्यते नानात्वं छिद्रयोः यद्वत् ज्योतिषोः वातयोः इव ॥ ३० ॥

हि सत्यस्य - क्योंकि (परमार्थ) सत्यमें
नानात्वं न - अनेकता नहीं है
अविद्वान् - अज्ञानी व्यक्ति
यदि मन्यते - यदि (अनेकता) मानता है तो
नानात्वं - यह अनेकता
छिद्रयोः - घटाकाश और महाकाश,
ज्योतिषोः - सूर्य बिम्ब तथा उसके प्रतिबिम्ब
वातयोः - (शरीरके भीतर और बाहरकी) वायुके
इव - समान
यद्वत् - (ये भेद) जैसे हैं वैसी (कल्पित) होगी ॥३०॥

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते
नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ।
एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो
व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिः व्यवहार वर्त्मसु एवं वचोभिः भगवान् अधोक्षजः व्याख्यायते लौकिक वैदिकैः जनैः ॥ २१ ॥

यथा - जैसे
व्यवहार - व्यवहारके
वर्त्मसु - मार्गमें
नृभिः - मनुष्यों द्वारा
क्रियाभिः - क्रियाके द्वारा
हिरण्यं - स्वर्णको
बहुधा - अनेक प्रकारका
समीयते - सम्पूर्ण रूप (आभूषणोंका) दिया जाता है
एवं लौकिक - इसी प्रकार साधारण तथा
वैदिकैः जनैः - वेदोंके विद्वानों द्वारा
वचो भिः - वाणी द्वारा
भगवान- - इन्द्रियातीत
अधोक्षजः भगवानकी
व्याख्यायते - (अनेकरूपोंमें) व्याख्याकी जाती है ॥ ३१ ॥

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो
ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ।
एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो
ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥

यथा घनः अर्क प्रभवः अर्कदर्शितः हि अर्कअंश भूतस्य च चक्षुषः तमः एवं तु अहं ब्रह्मगुणः तत् ईक्षितः ब्रह्म अंशकस्य आत्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥

यथा अर्क-प्रभवः - जैसे सूर्यसे उत्पन्न होने वाले,
अर्कदर्शितः - सूर्यके प्रकाशमें दीखने वाले,
हि अर्क-अंशभूतस्य - क्योंकि सूर्यके ही अंश
घनः - मेघ
च चक्षुषः - फिर भी नेत्रोंके लिए
तमः - अन्धकार (उत्पन्न कर देते) हैं
एवं तु अहं - इसी प्रकार तो अहंकार
ब्रह्मगुणः - ब्रह्मका गुण (उत्पन्न)
तत् ईक्षितः - उसीसे प्रकाशित
ब्रह्म-अंशकस्य - ब्रह्मके अंश जीवके लिए
आत्मन - स्वयं ही
आत्मबन्धनः - आत्मका बन्धन (बनता है) ॥ ३२ ॥

घनो यदार्कप्रभवो विदीर्यते
चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ।
यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो
जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥

घनः यदा अर्क प्रभवः विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविं ईक्षते तदा यदा हि अहंकार उपाधिः आत्मनः जिज्ञासया नश्यति तर्हि अनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥

अर्क प्रभवः - सूर्यसे उत्पन्न
घनः यदा - मेघ जब
विदीर्यते - फट जाते हैं
तदाचक्षुः - तब नेत्र
स्वरूपं रवि - अपने स्वरूप सूर्यको
ईक्षते - देख पाते हैं,
यदा आत्मनः - जब आत्माकी
उपाधिः अहंकार- उपाधि अहंकार
हि जिज्ञासया - क्योंकि तत्त्व जिज्ञासासे ही
नश्यति - नाश होती है
तर्हि - तभी
अनुस्मरेत् - (अपने स्वरूपका) ठीक स्मरण (ज्ञान) होता है ॥ ३३ ॥

यदैवमेतेन विवेकहेतिना
मायामयाहंकरणात्मबन्धनम् ।
छित्त्वाच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते
तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग सम्प्लवम् ॥ ३४ ॥

तत् एवं एतेन विवेक हेतिना मायामय अहंकरण आत्मबन्धनं छित्त्वा अच्युत आत्म अनुभवः अवतिष्ठते तं आहुः आत्यन्तिकम् अंग सम्प्लवम् ॥ ३४ ॥

अंग - प्रिय परीक्षित
तत् एवं - अतः इस प्रकार
विवेक हेतिना - विवेक रूपी कुल्हाड़ेसे
आत्मबन्धनं - अपना बन्धनरूप
मायामय - मायामय
अहंकरण - अहंकारको
छित्त्वा - काटकर
अच्युत आत्म - भगवत् स्वरूप आत्माके
अनुभवः - अनुभवमें
अवतिष्ठतः - स्थित होजाना
तं आत्यन्तिकम् -उसे आत्यन्तिक
सम्प्लवम् आहुः- प्रलय कहते हैं ।।३४।।

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ।
उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते ।। ३५ ।।

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मआदीनां परंतप उत्पत्ति प्रलयाः एके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते ।। ३५ ।।

परन्तप - शत्रुतापक परीक्षित !
एके सूक्ष्मज्ञाः - कोई सूक्ष्मदर्शी
ब्रह्मणा आदीनां - ब्रह्मा आदि
सर्वभूतानां - सभी प्राणियोंकी
उत्पत्ति - उत्पत्ति और
प्रलयाः - प्रलय
नित्यदा - सदा होती रहती है (यह)
सम्प्रचक्षते - भली प्रकार बतलाते हैं ।। ३५ ।।

कालस्त्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ।
परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ।। ३६ ।।

कालस्त्रोत जवेन आशु ह्रियमाणस्य नित्यदा परिणामिनां अवस्थाः ता जन्मप्रलय हेतवः ।। ३६ ।।

परिणामिनां - परिवर्तनशील (पदार्थों) की
कालस्त्रोत - काल-प्रवाहके
जवेन - वेगसे
आशु-ह्रियमाणस्य - शीघ्रतासे खींचे जातोंका
ता अवस्थाः - वहस्थितियां
नित्यदा - सदा ही
जन्म-प्रलय - उत्पत्ति-प्रलयकी
हेतवः - कारण हैं ।। ३६ ।।

अनाद्यन्तवतानेन कालेनेश्वरमूर्तिना ।
अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३७ ॥

अनादि अन्तवत् अनेन कालेन ईश्वरमूर्तिना अवस्था न एव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषां इव ॥ ३७ ॥

ईश्वरमूर्तिना - भगवत्स्वरूप
अनादि - अनादि
अन्तवत् - (परमोक्षसे) अन्त होनेवाले
अनेन कालेन - इस कालके द्वारा
अवस्था - (बदलने वाली) स्थितियां
वियति - आकाशमें (चलते)
ज्योतिषां - तारों (की गति) के समान
न एव-दृश्यन्ते - नहीं ही दीखती हैं ॥ ३७ ॥

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३८ ॥

नित्यः नैमित्तिकः च एव तथा प्राकृतिकः लयः आत्यन्तिकः च कथितः कालस्य गतिः ईदृशी ॥ ३८ ॥

नित्यः - नित्य
नैमित्तिकः एव - नैमित्तिक भी,
च प्राकृतिकः - एवं प्राकृतिक
च आत्यन्तिकः - और आत्यन्तिक
लयः कथितः - प्रलयका वर्णन किया
कालस्य - कालकी
ईदृशी गतिः - ऐसी ही गति है ॥३८॥

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-
र्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः
कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३९ ॥

एताः कुरुश्रेष्ठ जगत् विधातुः नाराणस्य अखिल सत्त्वधाम्नः लीला कथाः ते कथिता समासतः कात्स्न्र्येन न अजः अपि अभिधातुं ईशः ॥ ३९ ॥

कुरुश्रेष्ठ	- कुरुश्रेष्ठ !	**एताः-**	- इन लीला कथाओंको
अखिल-	- समस्त प्राणियोंके	**लीलाकथाः**	
सत्त्वधाम्नः	आश्रय	**ते समासतः**	- तुमसे संक्षिप्त रूपसे
जगत् विधातुः	- विश्वविधाता	**कथिताः**	- वर्णनकी
नारायणस्य	- भगवान नारायणकी	**कात्स्न्र्येन**	- सम्पूर्णरूपसे
		अभिधातुं	- वर्णन करनेमें
		अजः अपि	- ब्रजी भी
		ईशः न	- समर्थ नहीं हं ॥ ३९ ॥

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥

संसारसिन्धुं अति दुस्तरं उत्तितीर्षोः न अन्यःप्लवः भगवतः पुरुषोत्तमस्य लीलाकथारस निषेवणं अन्तेरण पुंसः भवेत् विविध दुःख अर्दितस्य ॥ ४० ॥

विविध दुःखदव	- अनेक प्रकारके दुःखोंसे	**भगवतः**	- भगवान
अर्दितस्य	- रौंदे गये	**पुरुषोत्तमस्य**	- पुरुषोत्तमकी
अति दुस्तरं	- अत्यन्त दुष्पार	**लीला कथा**	- लीलाओंकी कथाके
संसारसिन्धुं	- संसार-सागरके	**रस निषेवण**	- रसको भली प्रकार
उत्तितीर्षोः	- पारकर जानेके इच्छुक		सेवनको
पुंसोः	- पुरुषके लिए	**अन्तरेण**	- छोड़कर
		अन्यःप्लवः	- दूसरी नौका
		न भवेत्	- नहीं हो सकती ॥४०॥

पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ।
नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥

पुराण संहितां एतां ऋषिः नारायणः अव्ययः नारदाय पुरा प्राह कृष्ण द्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥

एतां	- इस	**नारायणः ऋषिः**	- नारायण ऋषिने
पुराण संहितां	- संहिताको	**नारदाय प्राह**	- नारदजीको सुनाया था
पुरा	- पहिले	**सः कृष्ण-**	- उन्होंने श्रीकृष्ण द्वैपायन
अव्ययः	- अविनाशी	**द्वैपायनाय**	व्यासजीको सुनाया ॥ ४१ ॥

स वै मह्यं महाराज भगवान् बादरायणः ।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसम्मिताम् ॥ ४२ ॥

स वै मह्यं महाराज भगवान् बादरायणः इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेद सम्मिताम् ॥ ४२ ॥

महाराज	- महाराज	**वै मह्यं प्रीतः**	- निश्चय मुझपर प्रसन्न होकर
स भगवान्	- उन भगवान	**इमां वेदसम्मितां**	- इस वेद सम्मत
बादरायणः	- बादरायण ने	**भागवतीं**	- भागवती
		संहितां	- संहिता को (सुनाया) ॥ ४२ ॥

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४३ ॥

एतां वक्ष्यति असौ सूत ऋषिभ्यः नैमिष आलये दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनक आदिभिः ॥ ४३ ॥

कुरुश्रेष्ठ	- कुरुश्रेष्ठ !	**ऋषिभ्यः**	- ऋषियों द्वारा
नैमिष आलये	- नैमिषारण्यमें रहने वाले	**सम्पृष्टः**	- पूछे जानेपर
दीर्घसत्रे	- दीर्घकालीन यज्ञमें	**असौ सूतः**	- ये सूत
शौनक आदिभिः	- शौनक आदि	**एतां वक्ष्यति**	- इस (संहिता) का प्रवचन करेंगे ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान् हरिः ।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

अत्र अनुवर्ण्यते अभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान् हरिः यस्य प्रसादजः ब्रह्मा रुद्रः क्रोध समुद्भवः ॥ १ ॥

अत्र अभीक्ष्णम्	- इस (संहिता) में निरन्तर	**अनुवर्ण्यते**	- बार-बार वर्णन किया गया है
विश्वात्मा	- विश्वस्वरूप	**यस्य**	- जिनकी
भगवान् हरिः	- भगवान श्रीहरिका	**प्रसादजः ब्रह्मा**	- कृपासे ब्रह्मा उत्पन्न हुए
		क्रोध-समुद्भवः रुद्रः	- और क्रोधसे रुद्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

त्वं तु राजन् मरिष्य इति पशुबुद्धिं इमां जहि न जातः प्राक् भूतः अद्य देहवत् त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

राजन्	- राजन् !	**जहि**	- नष्ट करदो,
त्वं तु	- तुम तो	**त्वं प्राक् भूतः**	- त्वं पहिले हुए थे,
मरिष्य इति	- 'मरुँगा' इस प्रकारकी	**अद्य जातः**	- या अब उत्पन्न हुए हो
इमां पशुबुद्धिं	- इस पशुके जैसी बुद्धिको	**न**	- ऐसा नहीं है
		देहवत्	- शरीरके समान
		नङ्क्ष्यसि न	- नष्ट नहीं होंगे ॥ २ ॥

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ।
बीजाङ्कुरवद् देहादेर्व्यतिरिक्तो यथानलः ॥ ३ ॥

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्र पौत्रादि रूपवान् बीज अंकुरवत् देहादेः व्यतिरिक्तः यथा अनलः ॥ ३ ॥

त्वं भूत्वा - तुम उत्पन्न होकर
पुत्र पौत्रादि - पुत्र पौत्रादि
रूपवान् - रूपवाले
बीज - बीजसे
अंकुरवत् - अंकुरके समान
न भविष्यसि - नहीं होओगे,
यथा अनलः - जैसे अग्नि (काष्ठ से पृथक है)
देहादेः - शरीरादि से (तुम)
व्यतिरिक्तः - पृथक हो ॥ ३ ॥

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ।
यस्मात् पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥

स्वप्ने यथा शिरः छेदं पञ्चत्व आदि आत्मनः स्वयं यस्मात् पश्यति देहस्य तत आत्महि अजः अमरः ॥ ४ ॥

यस्मात् हि - क्योंकि जैसे
स्वप्ने - स्वप्नमें
स्वयं आत्मनः - स्वयं अपना
शिरः छेदं - सिर काटा जाना,
पञ्चत्व आदि - मर जाना आदि
देहस्य पश्यति - शरीरका देखता है
तत आत्मा - अतः व्यापक आत्मा
अजः अमरः - अजन्मा, अमर है ॥ ४ ॥

घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः स्याद् यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

घटे भिन्ने यथा आकाश आकाशः स्यात् यथा पुरा एवं देहेमृते जीव ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

घटे भिन्ने	- घड़े के फूट जानेपर	**एवं देहेमृते**	- ऐसे ही शरीरके मरने पर
यथा आकाशः	- जैसे घटाकाश	**जीवः**	- जीव
यथापुरा	- पहिले जैसा था वैसा	**पुनः ब्रह्म**	- फिर ब्रह्मके (रूपमें)
आकाशः स्यात्	- आकाश ही रहता है	**सम्पद्यते**	- स्थित होजाता है ॥५॥

मनः सृजति वै देहान् गुणान् कर्माणि चात्मनः ।
तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

मनः सृजति वै देहान् गुणान् कर्माणि च आत्मनः तत् मनः सृजते माया ततः जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

वै मनः	- निश्चय मन ही	**सृजति**	- सृष्टि करता है,
आत्मनः	- आत्माके लिए	**तत् मनः**	- उस मनकी
देहान्	- शरीर	**सृजते माया**	- सृष्टि माया करती है
गुणान्	- विषय और	**ततः जीवस्य**	- उसी (माया) से जीवका
कर्माणि	- कर्मोंकी	**संसृतिः**	- आवागमन है ॥ ६ ॥

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ।
ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ।
रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥

स्नेह अधिष्ठान वर्ति अग्नि संयोगः यावत् ईयते ततः दीपस्य दीपत्वं एवं देहकृतः भवः रजः सत्त्व तमः वृत्या जायते अथ विनश्यति ॥ ७ ॥

स्नेह	- तेल	**दीपत्वं**	- दीपकत्व है
अधिष्ठान	- उसका आधार (दीपक)	**एवं भवः**	- इसी प्रकार संसार
वर्ति अग्नि	- बत्ती और अग्निका	**देहकृतः**	- शरीरसे उत्पन्न है,
यावत् संयोगः	- जब तक संयोग	**रजः सत्त्व**	- रजोगुण, सत्त्वगुण,
ईयते	- बनाये रखा जाता है,	**तमः वृत्त्या**	- तमोगुण की वृत्तियोंसे
ततः दीपस्य	- उसीसे दीपकका	**जायते**	- उत्पन्न होता है,
		अथ विनश्यति	-फिर नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥

न तत्र आत्मा स्वयं ज्योतिः यः व्यक्त अव्यक्तयोः परः आकाश इव च आधारः ध्रुवः अनन्त उपमः ततः ॥ ८ ॥

तत्र	- उस (संसार) में	**आकाश इव**	- आकाशके समान
आत्मा न	- आत्मा (सीमित) नहीं है	**आधारः**	- सबका आधार
यः स्वयं-ज्योतिः	- जो स्वयं प्रकाश,	**ध्रुवः**	- अटल
		अनन्त उपमः	- अनन्तके समान
व्यक्त-अव्यक्तयोः	- कार्य-कारणसे	**च ततः**	- तथा सर्वव्यापक है ॥ ८ ॥
परः	- अतीत,		

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।
बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥ ९ ॥

एवं आत्मानं आत्मस्थं आत्मना एव अमृश प्रभो बुद्ध्या अनुमान गर्भिण्या वासुदेव अनुचिन्तया ॥ ९ ॥

एवं	- इस प्रकार	**बुद्ध्या**	- बुद्धिके द्वारा
वासुदेव	- भगवान वासुदेव	**आत्मना एव**	- स्वयं ही
अनुचिन्तया	- बराबर चिन्तन करने वाला	**आत्मस्थं**	- अपने (रूपमें) ही स्थित
		आत्मानं	- आत्मतत्त्वका
अनुमानगर्भिण्या	- अनुमान (विवेक) रखने वाला	**अमृश**	- विचार करो ॥ ९ ॥

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ।
मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥

चोदितः विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः मृत्यवः न उपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युं ईश्वरम् ॥ १० ॥

मृत्यूनां मृत्युं - (तुम) मृत्युओंकी मृत्यु	**त्वां न धक्ष्यति** -तुम्हें नहीं भस्म करेगा
ईश्वरम् - ईश्वरको	**मृत्यवः** - मृत्युके सब कारण
विप्रवाक्येन - ब्राह्मणके वाक्यसे	**उपधक्ष्यन्ति न** - समीप नहीं फटकेंगे
चोदितः - प्रेरित	॥ १० ॥
तक्षकः - तक्षकनाग	

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्म अहं परमं पदं एवं समईक्षन आत्मानं आत्मनि आधाय निष्कले ॥ ११ ॥

निष्कले - कलाहीन	**अहं ब्रह्म** - मैं ब्रह्म हूँ,
आत्मनि - आत्मामें	**परमं पदं** - परमाश्रय
आधाय - सम्पूर्ण स्थित करके	**आत्मानं** - अपनेको
परंधाम - परम प्रकाशक	**एवं समईक्षन्** - इस प्रकार सम्पूर्ण देखते हुए ॥ ११ ॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विष आननैः न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथक् आत्मनः ॥ १२ ॥

विष आननैः - विषैले मुखको	**च शरीरं** - तथा (अपने) शरीरको
लेलिहानं - चाटता हुआ	**च विश्वं** - एवं संसारका
पादैः दशन्तं - पैर में डँसते हुए	**आत्मनः पृथक्** - आत्मासे पृथक
तक्षकं - तक्षकको	**न द्रक्ष्यसि** - नहीं देखोगे ॥ १२ ॥

एतत्ते कथितं तात यथाऽऽत्मा पृष्टवान् नृप ।
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

एतत् ते कथितं तात यथा आत्मा पृष्टवान् नृप हरेः विश्वात्मनः चेष्टां किं भूयः श्रोतुं इच्छसि ॥ १३ ॥

तात नृप	- प्रिय राजन् !	**विश्वात्मनः**	- विश्वात्मा
यथा आत्मा	- जैसा आत्मस्वरूप	**हरेः चेष्टां**	- श्रीहरिकी लीला
पृष्टवान्	- पूछा था	**ते कथितं**	- तुमको सुना दी
एतत्	- यह	**किं भूयः**	- क्या फिर (कुछ)
		श्रोतुं इच्छसि	- सुनना चाहते हो ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच-

एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्
व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ।
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

एतत् निशम्य मुनिना अभिहितं परीक्षित् व्यास आत्मजेन निखिल आत्मदृशा समेन तत् पादमूलं उपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्ध अञ्जलिः तं इदं आह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

निखिल	- समस्त जगतको	**स विष्णुरातः**	- वे विष्णुरात
आत्मदृशा	- आत्माके रूपमें-देखनेवाले	**परीक्षित्**	- परीक्षित
		तत् पादमूलं	- उनके चरणोंके
समेन	- समदर्शी	**उपसृत्य**	- समीप जाकर
व्यास आत्मजेन	- व्यासनन्दन	**नतेन मूर्ध्ना**	- सिर झुकाकर
मुनिना	- मुनि शुकदेवजी द्वारा	**बद्ध अञ्जलिः**	- हाथ जोड़कर
अभिहितं	- कही गयी	**तं इदं आह**	- उनसे यह बोले ॥ १ ॥
एतत् निशम्य	- यह बात सुनकर		

राजोवाच-

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥

सिद्धः अस्मि अनुगृहीतः अस्मि भवता करुण आत्मना श्रावितः यत् च मे साक्षात् अनादि निधनः हरिः ॥ २ ॥

भवता - आप
करुण आत्मना - कृपा स्वरूप द्वारा
यत् च मे - क्योंकि मुझे
अनादि निधनः - अनादि अविनाशी
साक्षात् हरिः - साक्षात् श्रीहरिको
श्रावितः - सुनाया है
अनुगृहीतः - मैं अनुगृहीत
अस्मि - हुआ
सिद्धः अस्मि - सिद्ध (कृतकृत्य) होगया ॥ २ ॥

नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥

न अति अद्भुतं अहं मन्ये महतां अच्युत आत्मनां अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यत् अनुग्रहः ॥ ३ ॥

अज्ञेषु - अज्ञानी
तापतप्तेषु - त्रिताप संतप्त
भूतेषु - (मेरे जैसे) प्राणियोंपर
यत् अनुग्रहः - जो अनुग्रह है (वह)
अच्युत आत्मनां - भगवत् स्वरूप
महतां - (आप) महापुरुषके लिए
अति अद्भुतं - अत्यन्त आश्चर्यजनक
अहं न मन्ये - मैं नहीं मानता ॥ ३ ॥

पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ।
यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥

पुराण संहितां एतां अश्रौष्म भवतः वयं यस्यां खलु उत्तम श्लोकः भगवान् अनुवर्ण्यते ॥ ४ ॥

खलु यस्यां - अहो जिसमें
उत्तम श्लोकः - पुण्यकीर्ति
भगवान् - भगवानका
अनुवर्ण्यते - बराबर वर्णन होता है
एतां- - इस पुराण संहिताको
पुराण संहितां
भवतः - आपसे
वयं अश्रौष्म - हमने सुना ॥ ४ ॥

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

भगवन् तक्षक आदिभ्यः मृत्युभ्यः न बिभेमि अहं प्रविष्टः ब्रह्म निर्वाणं अभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

भगवन् त्वया	- भगवन् आपने	**प्रविष्टः**	- प्रवेश करलेनेसे
अभयं	- अभयपदका	**तक्षक आदिभ्यः**	- तक्षक आदिसे
दर्शितं	- साक्षात्कार करा दिया (अतः)	**मृत्युभ्यः**	- (होने वाली) मृत्युसे
		अहं न बिभेमि	- मैं डरता नहीं हूँ ॥ ५ ॥
ब्रह्म निर्वाणं	- शान्तिस्वरूप ब्रह्ममें		

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ।
मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छामि अधोक्षजे मुक्तकाम आशयं चेतः प्रवेश्य विसृजामि असून् ॥ ६ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**आशयं**	- अन्तःकरणको करके
मां अनुजानीहि	- मुझे आज्ञा दीजिए कि	**चेतः अधोक्षजे**	- चित्तको अन्तर्यामी (परमात्मा) में
वाचं यच्छामि	- वाणीको रोकलूँ	**प्रवेश्य**	- लगाकर
मुक्त काम	- कामनाओंसे मुक्त	**असून् विसृजामि**	- प्राण त्याग दूँ ॥ ६ ॥

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञान विज्ञान निष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञान विज्ञान निष्ठया भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

ज्ञान विज्ञान - ज्ञान-विज्ञान
निष्ठया - निष्ठासे
मे अज्ञानं च - मेरा अज्ञान भी
निरस्तं - दूर होगया
भवता - आपने
परं क्षेमं - परम कल्याणमय
भगवतः पदं - भगवानके स्वरूपका
दर्शितं - साक्षात्कार करा दिया
॥ ७ ॥

सूत उवाच-

इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः ।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥

इति उक्तः तं अनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः जगाम भिक्षुभिः साकं नर देवेन पूजितः ॥ ८ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहने पर
नर देवेन - राजा द्वारा
पूजितः - सत्कृत होकर
तं अनुज्ञाप्य - उनसे अनुमति लेकर
भगवान् - भगवान
बादरायणिः - व्यास-नन्दन
भिक्षुभिः साकं - त्यागी महात्माओंके साथ
जगाम - (वहांसे) चले गये ॥८॥

परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ।
समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥

परीक्षित् अपि राजर्षिः आत्मनि आत्मानं आत्मना समाधाय परं दध्याः अस्पन्द असुः यथा तरुः ॥ ९० ॥

राजर्षिः - राजर्षि
परीक्षित् अपि - परीक्षित भी
आत्मानं - अपनेको
आत्मना - बुद्धि द्वारा
आत्मनि - आत्मामें
समाधाय - भली प्रकार लगाकर
यथा तरुः - जैसे वृक्ष हो
अस्पन्द असुः - प्राण सञ्चार रहित
परं दध्याः - परमात्माका ध्यान करने लगे ॥ ९ ॥

प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ।
ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

प्राक्कूले बर्हिषि आसीनः गंगाकूल उदङ्मुखः ब्रह्मभूतः महायोगी निःसंगः छिन्न संशयः ॥ १० ॥

गंगाकूल - गंगा किनारे
प्राक्कूले - पूर्वकी ओर नोक करके बिछे
बर्हिषि - कुशोंपर
उदङ्मुखः - उत्तरकी ओर मुख करके
आसीनः - बैठे हुए
महायोगी - महायोगी परीक्षित्
ब्रह्मभूतः - ब्रह्मस्वरूप होकर
निःसंगः - आसक्तिहीन होगये थे,
छिन्न संशयः - (उनके सब) सन्देह कट गये थे ॥ १० ॥

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ।
हन्तुकामो नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥

तक्षकः प्रहितः विप्राः क्रुद्धेन द्विज सूनुना हन्तुकामः नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥

विप्राः - शौनकादि विप्रश्रेष्ठ !
क्रुद्धेन - कुपित
द्विजसूनुना - ब्राह्मण पुत्र द्वारा
प्रहितः - भेजा हुआ
तक्षकः - तक्षक नागने
नृपं हन्तुकामः - राजाको मारनेकी इच्छासे
गच्छन् - जाते हुए
पथि - मार्गमें
कश्यपं ददर्श - कश्यपको देखा ॥११॥

तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

तं तर्पयित्वा द्रविणैः निर्वर्त्य विषहारिणं द्विजरूप प्रतिच्छन्नः कामरूपः दशन् नृपम् ॥ १२ ॥

तं विषहारिणं - उस विष दूर करने वालेको
द्रविणैः - धन देकर
तर्पयित्वा - तृप्त करके
निर्वर्त्य - लौटाकर
द्विजरूप - ब्राह्मणके वेशमें
प्रतिच्छन्नः - छिपा हुआ
कामरूपः - इच्छानुसार रूपधारी
नृपम् दशन् - पैरमें डंस लिया ॥१२॥

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ।
बभूव भस्मसात् सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेः देहः अहि गरल अग्निना बभूव भस्मसात् सद्यः पश्यतां सर्व देहिनाम् ॥ १३ ॥

ब्रह्म भूतस्य - ब्रह्ममें एकाकार हुए
राजर्षेः देहः - राजर्षि परीक्षितका शरीर
सर्वदेहिनां - सभी देहधारियोंके
पश्यतां - देखते हुए
अहि गरल - सर्प विषरूपी
अग्निना - अग्निसे
सद्यः - तत्काल
भस्मसात् बभूव - भस्म हो गया ॥१३॥

हाहाकारो महानासीद् भुवि खे दिक्षु सर्वतः ।
विस्मिता ह्यभवन् सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

हाहाकारः महान् आसीत् भुवि खे दिक्षु सर्वतः विस्मिता हि अभवन् सर्वे देव असुर नर आदयः ॥ १४ ॥

भुवि खे - पृथ्वीपर, आकाशमें,
सर्वतः दिक्षु - सब दिशाओंमें
महान्-हाहाकारः - महान् हाहाकार
आसीत् - होने लगा,
हि सर्वे - क्योंकि सब
देव असुर - देवता, असुर,
नर आदयः - मनुष्यादि
विस्मिता-अभवन् - चकित होगये थे ॥ १४ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः ।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥

देव दुन्दुभयः नेदुः गन्धर्व अप्सरसः जगुः ववृषुः पुष्प वर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥

देव दुन्दुभयः	- देवताओंकी दुन्दुभियां	**साधुवादिनः**	- प्रशंसा करने वाले
नेदुः	- बजने लगीं	**विबुधाः**	- देवता
गन्धर्व	- गन्धर्व और	**पुष्पवर्षाणि**	- पुष्पोंकी राशि राशि
अप्सरसः जगुः	- अप्सरा में (कीर्ति) गाने लगी	**ववृषुः**	- वर्षा करने लगे ॥१५॥

जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ।
यथा जुहाव संक्रुद्धो नागान् सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षक भक्षितं यथा जुहाव संक्रुद्धः नागान् सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

जनमेजयः	- जनमेजयने	**सह द्विजैः**	- ब्राह्मणोंके साथ
स्वपितरं	- अपने पिताको	**यथा सत्रे**	- विधिपूर्वक यज्ञमें
तक्षक भक्षितं	- तक्षक द्वारा काटा गया	**नागान् जुहाव**	- सर्पोंकी आहुति देने लगे ॥ १६ ॥
श्रुत्वा संक्रुद्धः	- सुनकर कुपित होकर		

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान् महोरगान् ।
दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥

सर्प सत्रे समिद्ध अग्नौ दह्यमानान् महा उरगान् दृष्ट्वा इन्द्रं भय संविग्नः तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥

सर्प सत्रे	- (उस) नागयज्ञमें	**दृष्ट्वा**	- देखकर
समिद्ध अग्नौ	- प्रज्वलित अग्निमें	**भय संविग्नः**	- भयसे विह्वल
महा उरगान्	- बड़े-बड़े सर्पोंको	**तक्षकः**	- तक्षक
दह्यमानान्	- जलते हुए	**इन्द्रं शरणं ययौ**	- इन्द्रकी शरणमें गया ॥ १७ ॥

अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ।
उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥

अपश्यन् तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितः द्विजान् उवाच तक्षकः कस्मात् न दह्येत उरग अधमः ॥ १८ ॥

तत्र तक्षकं	- वहां (यज्ञ) में तक्षकको	**उरग अधमः**	- सर्पाधम
अपश्यन्	- न देखकर	**तक्षकः**	- तक्षक
पारीक्षितः राजा	- परीक्षित नन्दन राजाने	**कस्मात् न**	- क्यों नहीं
द्विजान् उवाच	- ब्राह्मणोंसे कहा	**दह्येत**	- भस्म होरहा है ॥१८॥

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ।
तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणं आगतं तेन संस्तम्भितः सर्पः तस्मात् न अग्नौ पतति असौ ॥ १९ ॥

राजेन्द्र	- (ब्राह्मणोंने कहा) राजेन्द्र !	**तेन संस्तम्भितः**	- उनके द्वारा रोका हुआ
शरणं आगतं	- शरणमें आये हुए	**असौ सर्पः**	- यह सर्प
तं शक्रः	- उसकी इन्द्र	**तस्मात्**	- इसीलिए
गोपायति	- रक्षा कर रहे हैं,	**अग्नौ न पतति**	- अग्निमें नहीं गिरता है ॥ १९ ॥

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ।
सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राह ऋत्विज उदारधीः सह इन्द्रः तक्षकः विप्रा न अग्नौ किं इति पात्यते ॥ २० ॥

इति श्रुत्वा	- ऐसा सुनकर	**विप्रा**	- ब्राह्मणो !
उदारधीः	- विशाल बुद्धि	**तक्षकः**	- तक्षकको
पारीक्षित	- परीक्षित नन्दन जनमेजय	**किं इति**	- क्या बाधा है कि
ऋत्विज प्राह	- ऋत्विजोंसे बोले	**अग्नौ न-पात्यते**	- अग्निमें नहीं गिरा देते हैं ॥ २० ॥

तच्छ्रुत्वाऽऽजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ।
तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥

तत् श्रुत्वा आजुहुवुः विप्राः सह इदं तक्षकं मखे तक्षक आशु पतस्व इह सह इन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥

तत् श्रुत्वा	- वह (बात) सुनकर	**तक्षक**	- 'तक्षक !
विप्राः मखे	- ब्राह्मणोंने यज्ञमें	**मरुत्वता**	- मरुदगणोंके साथी
सह इन्द्रं	- इन्द्रके साथ	**इन्द्रेण सह**	- इन्द्रके साथ
तक्षकं	- तक्षकका	**इह आशु**	- यहां (अग्नि कुण्डमें) शीघ्र
आजुहुवुः	- आवाहन किया	**पतस्व**	- गिरो !' ॥ २१ ॥

इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः ।
बभूवुः सम्भ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥

इति ब्रह्म उदितः आक्षेपैः स्थानात् इन्द्रः प्रचालितः बभूवुः सम्भ्रान्त मतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥

इति ब्रह्म	- इस प्रकार ब्राह्मणोंके	**प्रचालितः**	- विचलित होगये,
आक्षेपैः	- आकर्षण मन्त्रके	**स विमानः**	- विमानके साथ
उदितैः	- उच्चारण करनेपर	**स तक्षकः**	- तक्षकके साथ
इन्द्रः स्थानात्	- इन्द्र अपने स्थान स्वर्ग से	**सम्भ्रान्त मतिः**	- घबड़ायी बुद्धि वाले
		बभूवुः	- होगये ॥ २२ ॥

तं पतन्तं विमानेन सहतक्षकमम्बरात् ।
विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं वृहस्पतिः ॥ २३ ॥

तं पतन्तं विमानेन सह तक्षकं अम्बरात् विलोक्य आंगिरसः प्राह राजानं तं वृहस्पतिः ॥ २३ ॥

आंगिरसः - अंगिरा-नन्दन
वृहस्पतिः - वृहस्पतिने
सहतक्षकं: - तक्षकके साथ
विमानेन तं - विमानमें बैठे उन (इन्द्र) को
अम्बरात् -आकाशसे
पतन्तं विलोक्य -गिरते देखकर
तं राजानं -उन राजा (जनमेजय) से
प्राह -कहा ॥ २३ ॥

वृहस्पति उवाच-

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ।
अनेन पीतममृतमथ वा अजरामरः ॥ २४ ॥

न एष त्वया मनुष्येन्द्र वधं अर्हति सर्पराट् अनेन पीतं अमृतं अथ वा अजर अमरः ॥ २४ ॥

मनुष्येन्द्र - नरेन्द्र !
एष सर्पराट् - यह सर्पराज
त्वया वधं - आपके द्वारा मार देने
न अर्हति - योग्य नहीं है,
अनेन अमृतं - इसने अमृत
पीतं - पीलिया है
अथ अजर - अतः अजर
वा अमरः - या अमर होचुका है ॥ २४ ॥

जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ।
राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥

जीवितं मरणं जन्तोः गतिः स्वेन एव कर्मणा राजन् ततः अन्यः न अन्यस्य प्रदाता सुख दुःखयोः ॥ २५ ॥

यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

राजन्	- राजन् !	**कर्मणा**	- कर्मानुसार होती है
जन्तोः	- प्राणीका	**ततः अन्यः**	- अतः (कोई) दूसरा
जीवितं मरणं	- जीवन मरण तथा	**अन्यस्य**	- (किसी) दूसरेको
गतिः	- (मरणोत्तर) गति	**सुख दुःखयोः**	- सुख-दुःखका
स्वेन एव	- अपने ही	**प्रदाता न**	- देने वाला नहीं है ॥२५॥

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ।
पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥

सर्प चौर अग्नि विद्युत्भ्यः क्षुत् तट् व्याधि आदिभिः नृपः पञ्चत्वं ऋच्छते जन्तुः भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥

जन्तुः	- प्राणी	**व्याधि आदिभिः**	- रोग आदिसे
सर्प चौर	- सर्प, चोर,	**पञ्चत्वं ऋच्छते**	- मरण पाता है
अग्नि विद्युत्भ्यः	- अग्नि, बिजली,	**तत् आरब्ध-**	- वह अपना प्रारब्ध
क्षुत् तृट्	- भूख, प्यास,	**कर्म**	कर्म ही
		भुङ्क्त	- भोगता है ॥ २६ ॥

तस्मात् सत्रमिदं राजन् संस्थीयेताभिचारिकम् ।
सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

तस्मात् सत्रं इदं राजन् संस्थीयेत अभिचारिकं सर्पा अनागसः दग्धा जनैः दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

राजन्	- राजन् !	**अनागसः**	- निरपराध
तस्मात्	- इसलिए	**सर्पा दग्धा**	- सर्प जल गये
इदं अभिचारिकं	- यह अभिचार	**हि जनैः**	- क्योंकि मनुष्य
सत्रं संस्थीयेत	- यज्ञ रोक दिया जाय	**दिष्टं भुज्यते**	- अपना प्रारब्ध ही भोगता है ॥ २७ ॥

सूत उवाच-

इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन् वचः ।
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

इति उक्तः स तथा इति आह महर्षेः मानयन् वचः सर्प सत्रात् उपरतः पूजयामास वाक् पतिम् ॥ ३८ ॥

इति उक्तः	- ऐसा कहने पर	**आह**	- कहा और
महर्षेः वचः	- महर्षिकी बातको	**सर्प सत्रात्**	- सर्पयज्ञसे
मानयन्	- मानते हुए	**उपरतः**	- उपराम होकर
स तथा इति	- उन्होंने 'ऐसा ही हो' इस प्रकार	**वाक्पतिं**	- वृहस्पतिजीका
		पूजयामास	- सत्कार किया ॥ २८ ॥

सैषा विष्णोर्महामायाबाध्ययालक्षणा यया ।
मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥

स एषा विष्णोः महामाया बाध्यया लक्षणा यया मुह्यन्ति अस्य एव आत्मभूता भूतेषु गुण वृत्तिभिः ॥ २९ ॥

स एषा	- वह यह	**आत्मभूता**	- आत्मज्ञानी भी
बाध्यया लक्षणा	- अनिर्वचनीय लक्षण	**भूतेषु**	- प्राणियोंमें
विष्णोः महामाया	- भगवान् विष्णुकी महामाया है	**गुण वृत्तिभिः**	- गुणोंकी वृत्ति (क्रोधादि) द्वारा
यया अस्य एव	- जिसके द्वारा इसीके विषयमें	**मुह्यन्ति**	- मोहित होजाते हैं ॥ २९ ॥

न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता
मायाऽऽत्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ।

न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो ।
मनश्च संकल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३० ॥

न यत्र दम्भि इति अभया विराजिता माया आत्मवादे असकृत् आत्मवादिभिः न यत् विवादः विविधः तत् आश्रयः मनः च संकल्प विकल्प वृत्ति यत् ॥ ३० ॥

दम्भि इति	- 'यह कपटी है' इस प्रकार	**तत् आश्रयः**	- उस (आत्मा)के सम्बन्धका
अभया-	- निर्भय रूपसे रहने	**यत् विविधः**	- जो अनेक प्रकारका
विराजिता	वाली	**असकृत्**	- निरन्तर
	- माया	**विवादः यत् न**	- विवाद जिससे नहीं
यत्र आत्मवादेन	- जिस आत्मा-परमात्माकी चर्चामें		होता
		संकल्प	- संकल्प
न	- नहीं रहती	**विकल्प वृत्तिमत्**	- विकल्प वृत्तिवाला
आत्मवादिभिः	- अध्यात्मवादियों द्वारा	**मनः च यत्**	- मन भी जहां (नहीं पहुँचता) ॥३०॥

न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं
श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ।
तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं
निषिध्य चोर्मीन् विरमेत् स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥

न यत्र सृज्यं सृजतः उभयोः परं श्रेयः च जीवः त्रिभिः अन्वितः तु अहं तत् एतत् उत्सादित बाध्य बाधकं निषिध्य च उर्मीन् विरमेत् स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥

यत्र - जिसमें
सृज्यं - बननेवाली वस्तु (पदार्थ
सृजतः - उसको बनानेके साधन, (इन्द्रियां)
उभयोः परं - (इन) दोनोंसे परे
च श्रेयः - तथा श्रेष्ठ
जीवः - जीव
त्रिभिः - त्रिविध (राजस, तामस, वैकारिक)
अहं- - अहंकारके साथ तो
अन्वितः तु
न - नहीं है
बाध्य - बाधित होने वाले और
बाधकं - बाधित करने वाले भावको
उत्सादित - उन्मूलित करके (स्थित)
तत् एतत् - उस व्यापक (परमात्मा) में
स्वयं उर्मीन् - स्वयं (मनकी) लहरोंका
निषिध्य - निषेध करके ही
मुनिः - मननशीलं व्यक्ति
विरमेत् - उपराम होजाय ॥३१॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

परं पदं वैष्णवं आमनन्ति तत् यत् न इति न इति अतत् उत्सिसृक्षवः विसृज्य दौरात्म्यं अनन्य सौहृदा हृद उपगह्य अवसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

अतत् - अतथ्यका
उत्सिसृक्षवः - त्याग करनेकी इच्छा वाले (मुमुक्ष)
यत् न- - जिसे 'यह नहीं',
इति न इति यह नहीं (इस वृत्तिसे)
दौरात्म्यं - अनात्म पदार्थको
विसृज्य - त्यागकर
अनन्य सौहृदा - अनन्य सौहार्द्र (भक्ति)
हृद उपगुह्य - हृदयमें आलिंगन करके (उपलब्ध करके)
समाहितैः - अत्यन्त एकाग्र होकर
अवसितं - (उसीमें) लीन होजाते हैं
तत् वैष्णवं - वह भगवान विष्णुका
परं पदं - परमधाम
आमनन्ति - (श्रुति में) कहा गया है ॥ ३२ ॥

त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत् परमं पदम् ।
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥

त एतत् अधिगच्छन्ति विष्णोः यत् परमं पदं अहं मम इति दौर्जन्यं न येषां देह गेहजम् ॥ ३३ ॥

यत् विष्णोः	- जो भगवान विष्णुका	येषां देह-	- जिनमें शरीर और
परमं पदं	- परमपद है	गेहजं	घरसे उत्पन्न
त एतत्	- उसे वे लोग	अहं मम-	- 'यह मैं हूँ, यह मेरा है,
अधिगच्छन्ति	- प्राप्त करते हैं	इति	इस प्रकारकी
		दौर्जन्यं न	- दुर्जनता नहीं है ॥३३॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥

अतिवादान् तितिक्षेत न अवमन्येत कञ्चन न च इमं देहं आश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥

अतिवादान्	- कठोर वाणी	च इमं देहं	- तथा इस शरीरको
तितिक्षेत	- सहन करले,	आश्रित्य	- आधार बनाकर
कञ्चन	- किसीका भी	केनचित्	- किसीसे भी
अवमन्येत न	- अपमान न करे,	वैरं न कुर्वीत	- शत्रुता न करे ॥३४॥

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यत्पादाम्बुरुहध्यानात् संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥

नमः भगवते तस्मै कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे यत् पाद अम्बुरुह ध्यानात् संहितां अध्यगां इमाम् ॥ ३५ ॥

अकुण्ठ मेधसे	- अकुण्ठित प्रज्ञा वाले	**यत् पाद-**	- जिनके चरण कमलके
तस्मै भगवते	- उन भगवान	**अम्बुरुह**	
कृष्णाय नमः	- श्रीकृष्णको नमस्कार	**ध्यानात्**	- ध्यानसे
		इमां संहितां	- इस (श्रीमद्भागवत) संहिताको
		अध्यगां	- (मैंने) अध्ययन किया ॥ ३५ ॥[1]

शौनक उवाच-

पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत् सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥

पैल आदिभिः व्यास शिष्यैः वेदाचार्यैः महात्मभिः वेदाः च कतिधा व्यस्ता एतत् सौम्य अभिधेहि नः ॥ ३६ ॥

सौम्य	- सौम्य सूतजी !	**वेदाः कतिधा च**	- वेदोंका कितना तो
व्यास शिष्यैः	- व्यासजीके शिष्य	**व्यस्ता**	- विभाजन (सम्पादन) किया गया,
पैल आदिभिः	- पैल आदि	**एतत् नः**	- यह हमें
वेदाचार्यैः	- वेदाचार्य	**अभि धेहि**	- सुनाइये ॥ ३६ ॥
महात्मभिः	- महात्माओं द्वारा		

सूत उवाच-

समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद् विभाव्यते ॥ ३७ ॥

---

१. (यह अध्याय यहां स्वाभाविक रूपसे समाप्त हुआ लगता है । आगेजो शौनकजी का प्रश्न है उसका विवरण वेद शाखादि अगले अध्याय के अन्त तक है । अतः वह सम्पूर्ण भाग एक ही अध्याय ७ में होना चाहिए ।)

समाहित आत्मनः ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः हृदि आकाशात् अभूत् नादः वृत्ति रोधात् विभाव्यते ॥ ३७ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**हृदिआकाशात्**	- हृदयाकाशमें
समाहित आत्मनः	- एकाग्रचित्त	**नादः अभूत्**	- नाद उत्पन्न हुआ,
परमेष्ठिनः	- सृष्टिकर्ता	**वृत्तिरोधात्**	- मनोवृत्तियोंको रोक लेनेसे
ब्रह्मणः	- ब्रह्माजीके	**विभाव्यते**	- (उस अनहद नादका) अनुभव किया जाता है ॥ ३७ ॥

यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥

यत् उपासनया ब्रह्मन् योगिनः मल आत्मनः द्रव्य क्रिया कारक आख्यं धूत्वा यान्ति अपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**आख्यं**	- नामक
यत् उपासनया	- जिसकी उपासनासे	**आत्मनः मलं**	- अन्तःकरणकी मलिनता
योगिनः	- योगी लोग	**धूत्वा**	- नष्ट करके
द्रव्य	- द्रव्य (अधिभूत) पदार्थ,	**अपुनर्भवं**	- मोक्ष
क्रिया	- क्रिया (अधिदैव) कर्म,	**यान्ति**	- प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३८ ॥
कारक	- कर्ता (अध्यात्म)		

ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिंगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

ततः अभूत् त्रिवृत् ओंकारः यः अव्यक्त प्रभवः स्वराट् यत् तत् लिंगं भगवतः ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

ततः	- उस (अनहदनाद) से	**अभूत्**	- उत्पन्न हुआ,
अव्यक्त प्रभवः	- अव्यक्त (प्रकृति) को उत्पन्न करने वाला	**यत् तत्**	- जो उस
		परमात्मनः	- परमात्मा
त्रिवृत्	- तीन अक्षर (अ,उ,म) युक्त	**ब्रह्मणः**	- ब्रह्म
स्वराट्	स्वयं प्रकाश युक्त	**भगवतः लिंगं**	- भगवानका चिन्ह है
ओंकारः	- ओंकार		॥ ३९ ॥

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ।
येन वाग् व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्य दृक् येनवाक् व्यज्यते यस्य व्यक्तिः आकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

सुप्त श्रोत्रे	- श्रवणेन्द्रिय शक्ति सुप्त होजानेपर	**शृणोति**	- सुनता है,
		येन वाक्	- जिसके द्वारा (श्रुतिरूपा) वाणी
च शून्य दृक्	- तथा नेत्रादि इन्द्रियोंके सूना (विहीन हो जानेपर)	**व्यज्यते**	- प्रकट होती है
		यस्य आत्मनः	- जिसके स्वरूप (व्यापकता) का
य इमं स्फोटं	- जो इस नादको	**व्यक्तिः-**	- प्राकट्य आकाश है
		आकाश	॥ ४० ॥

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद् वाचकः परमात्मनः ।
स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

स्वधाम्नः ब्रह्मणः साक्षात् वाचकः परमात्मनः स सर्वमन्त्र उपनिषत् वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

स्वधाम्नः	- स्वयं प्रकाश	**उपनिषत्**	- उपनिषदों एवं
साक्षात् ब्रह्मणः	- साक्षात् ब्रह्मका	**वेद**	- वेदका
स वाचकः	- वह (ओंकार) वाचक,	**सनातनं बीजं**	- शाश्वत बीज है ॥४१॥
सर्वमन्त्र	- सबमन्त्रों,		

तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ।
धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥

तस्य हि आसन् त्रयः वर्णा अकार आद्या भृगु उद्वह धार्यन्ते यैः त्रयः भावा गुणानां अर्थ वृत्तयः ॥ ४२ ॥

भृगु उद्वह	- भृगुवंश भूषण शौनकजी !	**गुणानां**	- (सत्तवादि) गुणोंको, (ऋक् साम, यजुः) नामोंको,
हि तस्य	- क्योंकि उस (ओंकार)के	**अर्थ**	- (तीनों) पदार्थ (लोकों) को
त्रयः वर्णा	- तीन (अ, उ, म) अक्षर	**वृत्तयः**	- (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) वृत्तियोंको
आसन्	- हैं,	**धार्यन्ते**	- धारण किया जाता है ॥ ४२ ॥
यैः त्रयः भावा	- जिनके द्वारा त्रयात्मक भावों		

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद् भगवानजः ।
अन्तः स्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

ततः अक्षर समाम्नायं असृजत् भगवान् अजः अन्तःस्थ ऊष्म स्वर स्पर्श ह्रस्व दीर्घ आदि लक्षणम् ॥ ४३ ॥

ततः	- फिर उससे	**स्पर्श**	- स्पर्श (क से म तक)
भगवान् अजः	- भगवान ब्रह्माने	**ह्रस्व दीर्घ**	- ह्रस्व एवं दीर्घ
अन्तःस्थ	- अन्तस्थ (य,र,ल,व)	**लक्षणं**	- लक्षण वाले
ऊष्म	- ऊष्म (श,ष,स,ह)	**अक्षर समाम्नायं**	- अक्षर समूहकी
स्वर	- स्वर (अ सै औ तक)	**असृजत्**	- रचनाकी ॥ ४३ ॥

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ।
सव्याहृतिकान् सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥

तेन असौ चतुरः वेदान् चतुर्भिः वदनैः विभुः स व्याहृतिकान् स ओंकारान् चातुर्होत्र विवक्षया ॥ ४४ ॥

असौ	- इन (ब्रह्माजी) ने	**विवक्षया**	- बतलानेकी इच्छासे
तेन	- उन (अक्षरों) से	**स व्याहृतिकान्**	- (भूः भुवः स्वः) व्याहृतियोंके साथ एवं
विभुः	- उन समर्थने	**स ओंकारान्**	- ओंकारके साथ
चतुर्भिः वदनैः	- अपने चारों मुखोंसे	**चतुरः वेदान्**	- चारों वेदोंको ॥ ४४ ॥
चातुर्होत्र	- चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उदासा एवं ब्रह्माके कर्म)		

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन् ब्रह्मकोविदान् ।
ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥

पुत्रान् अध्यापयत् तान् तु ब्रह्मर्षीन् ब्रह्मकोविदान् ते तु धर्म उपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः सम आदिशन् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मर्षीन्	- ब्रह्मर्षि	**ते धर्म-उपदेष्टारः तु**	- उन धर्मोपदेशकने तो
ब्रह्मकोविदान्	- ब्रह्मज्ञान निपुण	**स्वपुत्रेभ्यः**	- अपने पुत्रोंको
तान् पुत्रान् तु	- उन अपने पुत्रोंको तो	**सम आदिशन्**	- भली प्रकार अध्ययन कराया ॥ ४५ ॥
अध्यापयत्	- पढ़ाया		

ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ।
चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

ते परम्परया प्राप्ताः तत् तत् शिष्यैः धृतव्रतैः चतुर्युगेषु अथ व्यस्ता द्वापर आदौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

ते परम्परया - वे (वेद) परम्परासे
तत् तत् - उन उनके
धृतव्रतैः - व्रतधारी (ब्रह्मचारी)
शिष्यैः प्राप्ताः - शिष्योंने प्राप्त किया
अथ चतुर्युगेषु - फिर चारों युगोंमें
द्वापरआदौ - द्वापरके अन्तमें
महर्षिभिः - महर्षियों द्वारा
व्यस्ता - (उनका) विभाजन हुआ
॥ ४६ ॥१

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य कालतः ।
वेदान् ब्रह्मर्षयो व्यस्यन् हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

क्षीण आयुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य कालतः वेदान् ब्रह्मर्षयः व्यस्यन् हृदिस्थ अच्युत चोदिताः ॥ ४७ ॥

कालतः - समयके प्रभावसे
क्षीण आयुषः - अल्पायु,
क्षीण सत्त्वान् - अल्प शक्ति
दुर्मेधान् - अल्पबुद्धि
वीक्ष्य - (मनुष्योंको) देखकर
अच्युत चोदितः - भगवानकी प्रेरणासे
ब्रह्मर्षयः - ब्रह्मर्षियोंने
हृदिस्थ - हृदयमें स्थित
वेदान् व्यस्यन् - वेदोंका विभाजन किया
॥ ४७ ॥

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः ।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥

अस्मिन् अपि अन्तरे ब्रह्मन् भगवान् लोकभावनः ब्रह्म ईश आद्यैः लोकपालैः याचितः धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
अस्मिन्-अन्तरे अपि - इस मन्वन्तरमें भी
लोकभावनः - लोकरक्षक
भगवान् - भगवान
धर्मगुप्तये - धर्मकी रक्षाके लिए
ब्रह्म ईश आद्यैः - ब्रह्मा, शिव आदि
लोकपालैः - लोकपालोंके
याचितः - प्रार्थना करनेपर ॥४८॥

---

१. वेदोंके विभाजनका अर्थ उनके टुक्ड़े करना नहीं है । इसका अर्थ है कि यज्ञके ऋत्विक आदि चारों कर्ताओंके उपयोगमें आने वाले मन्त्रोंका पृथक्-पृथक् संकलन ।

पराशरात् सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥

पराशरात् सत्यवत्यां अंश अंश कलया विभुः अवतीर्णः महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥

महाभाग	- महाभाग !	**सत्यवत्यां**	- सत्यवतीमें
अंश अंशकलया	- अंशांश कलासे	**अवतीर्णः**	- अवतार लेकर
विभुः	- वे सर्वव्यापक	**वेदं चतुर्विधं**	- वेदको चारप्रकारका
पराशरात्	- पराशरजीसे	**चक्रे**	- बनाया ॥ ४९ ॥

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥

ऋक् अथर्व यजुः साम्नां राशीन् उद्धृत्य वर्गशः चतस्रः संहिताः चक्रे मन्त्रैः मणिगणा इव ॥ ५० ॥

मणिगणा इव	- मणियोंके (वर्गीकरणके) समान	**ऋक् अथर्व**	- ऋक् अथर्व,
		यजुः साम्नां	- यजु, सामकी
वर्गशः	- वर्गोंके अनुसार	**चतस्रः संहिताः**	- चार संहितायें
राशीन्	- मन्त्रोंकी राशि	**चक्रे**	- बनादी ॥ ५० ॥
मन्त्रैः उद्धृत्य	- मन्त्रोंका संग्रह करके		

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥

तासां स चतुरः शिष्यान् उप आहूय महामतिः एक एकां संहितां ब्रह्मन् एक एकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
स महामतिः - उन महाबुद्धिमान
विभुः - समर्थने
चतुरः शिष्यान् - चार शिष्योंको
उपआहूय - समीप बुलाकर
एक एकस्मै - एक एकको
तासां - उनमेंसे
एक एकां - एक एक
संहितां ददौ - संहिता प्रदानकी ।।५१।।

पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ।
वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ।। ५२ ।।

पैलाय संहितां आद्यां बह्वृच आख्यां उवाच ह वैशम्पायन संज्ञाय निगद आख्यं यजुः गणम् ।। ५२ ।।

पैलाय - पैलको
बह्वृच आख्यां - बह्वृच नामकी (ऋग्वेदीय)
आद्यां संहितां - पहिली संहिता एवं
वैशम्पायन - वैशम्पायन
संज्ञाय - नामवाले (शिष्य) को
निगद आख्यं - निगद नामक
यजुः गणं - यजुर्वेदीय संहिता
उवाच ह - अध्ययन करायी ।।५२।।

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ।
अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ।। ५३ ।।

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोग संहितां अथर्व आंगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ।। ५३ ।।

साम्नां - सामवेदकी
छन्दोग संहितां - 'छन्दोग संहिता'
तथा जैमिनये - इसी प्रकार जैमिनीको एवं
आंगिरसीं नाम - 'आंगिरसी' नामकी
अथर्व - अथर्व वेदीय संहिता
स्वशिष्याय - अपने शिष्य
सुमन्तवे प्राह - सुमन्तुको सुनायी ।।५३।।

पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।
बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ।। ५४ ।।

पैलः स्व संहितां ऊचे इन्द्र प्रमितये मुनिः बाष्कलाय च सः अपि आह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥

स्वसंहितां	- अपनी संहिताको (दो भाग करके)	**ऊचे**	- सुनाया,
पैलः मुनिः	- पैल मुनिने	**सः अपि**	- उन (बाष्कल) ने भी
इन्द्रप्रमितये	- इन्द्र प्रमितिको	**स्वकां संहितां**	- अपनी संहिता
च बाष्कलाय	- तथा बाष्कलको	**शिष्येभ्यः**	- शिष्योंको
		आह	- सुनायी ॥ ५४ ॥

चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ।
पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥

चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव पराशराय अग्नि मित्रे इन्द्र प्रमितिः आत्मवान् ॥ ५५ ॥

भार्गव	- भृगुवंशी शौनकजी !	**पराशराय**	- पराशर एवं
चतुर्धा व्यस्य	- चार भागमें विभाजन करके१	**अग्निमित्रे**	- अग्निमित्रको (पढ़या)
		आत्मवान्	- इन्द्रिजयी
बोध्याय	- बोध्य,	**इन्द्रप्रमितिः**	- इन्द्रप्रमितिने ॥ ५५ ॥
याज्ञवल्क्याय	- याज्ञवल्क्य,		

अध्यापयत् संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ।
तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

अध्यापयत् संहितां स्वां माण्डूकेयं ऋषिं कविं तस्य शिष्यः देवमित्रः सौभरि आदिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

---

१. ऋषियोंका यह विभाजन शाखा कहा जाता है । यह किसी संहिता का अंश या खण्ड नहीं होता । पूरी संहिता प्रत्येक शाखा है । शाखा का अर्थ सम्पादन क्रमका भेद है । जैसे कोई छन्दक्रमसे और कोई देवता क्रमसे है ।

स्वां सहितां	- अपनी संहिता	**तस्य शिष्यः**	- उनके शिष्य
कविं	- बुद्धिमान	**देवमित्रः**	- देवमित्रने
माण्डूकेयं ऋषिं	- माण्डूकेय ऋषिको	**सौभरि आदिभ्य**	- सौभरि आदिको
अध्यापयत्	- अध्ययन कराया ।	**ऊचिवान्**	- सुनाया ॥ ५६ ॥

शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ।
वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥

शाकल्यः तत् सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहितां वात्स्य मुद्गल शालीय गोखल्य शिशिरेषु अधात् ॥ ५७ ॥

तत् सुतः	- उन (माण्डूकेय) के पुत्र	**वात्स्य मुद्गल**	- वात्स, मुद्गल,
शाकल्यः	- शाकल्यने	**शालीय**	- शालीय,
स्वां संहितां	- अपनी संहिताका	**गोखल्य**	- गोखलि,
पञ्चधा व्यस्य	- पांच रूपोंमें विभाजन करके	**शिशिरेषु**	- शिशिरको
		अधात्	- अध्ययन कराया ॥५७॥

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ।
बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥

जातूकर्ण्यः च तत् शिष्यः सनिरुक्तां स्व संहितां बलाक पैज वैताल विरजेभ्यः ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥

तत् च शिष्यः	- उन (शाकल्य) के ही शिष्य	**स्व संहितां**	- अपनी संहिताको
		बलाक पैज	- बलाक, पैज,
जातूकर्ण्यः मुनिः	- जातूकर्ण्य मुनिने	**वैताल विरजेभ्यः**	- बैताल, विरजको
सनिरुक्तां	- निरक्तके साथ	**ददौ**	- प्रदानकी ॥ ५८ ॥

वाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ।
चक्रे वालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥

वाष्कलिः प्रति शाखाभ्यः वालखिल्य आख्य संहितां चक्रे वालायनिः भज्यः कासारः च एव तां दधुः ॥ ५९ ॥

वाष्कलिः	- वाष्कलके पुत्र वाष्कलिने	**संहितां चक्रे**	- संहिता निर्मितकी,
प्रति शाखाभ्यः	- प्रत्येक शाखाओंमेंसे	**वालयनिः**	- वालयनि,
वालखिल्य-	- बालखिल्य नामक	**भज्यः**	- भज्य और
आख्य		**कासारः**	- कासारने
		तां दधुः	- उसे धारण किया ॥५९॥

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ।
श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

बह्वृचाः संहिता हि एता एभिः ब्रह्मर्षिभिः धृताः श्रुत्वा एतत् छन्दसां व्यासं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

हि एता	- क्योंकि इतनी	**एतत् छन्दसां**	- इस वेदोंके
बह्वृचाः संहिता	- (ऋग्वेदीय) बह्वृच संहितायें	**व्यासं श्रुत्वा**	- विस्तारको सुनकर
		सर्वपापैः	- (मनुष्य) सब पापोंसे
एभिः ब्रह्मर्षिभिः	- इन ब्रह्मर्षियों द्वारा	**प्रमुच्यते**	- छूट जाता है ॥ ६० ॥
धृताः	- धारणकी गयी हैं,		

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन शिष्या वै चरकाध्वर्यवः अभवन् यत् चेरुः ब्रह्महत्या अहंः क्षपणं स्वगुरोः व्रतम् ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन	- वैशम्पायनके	**स्वगुरोः**	- अपने गुरुदेवके
वै शिष्या	- निश्चित शिष्य	**ब्रह्महत्या**	- ब्रह्महत्याके
चरकाध्वर्यवः	- चरकाध्वर्यु	**अहंः क्षपणं**	- पापका प्रायश्चितका
अभवन्	- थे	**व्रतं यत् चेरुः**	- व्रत जिन्होंने किया ॥ ६१ ॥

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन् कियत् ।
चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥

याज्ञवल्क्यः च तत् शिष्यः आह अहो भगवन् कियत् चरितेन अल्पसाराणां चरिष्ये अहं स्फुदश्चरम् ॥ ६२ ॥

याज्ञवल्क्यः - याज्ञवल्क्य भी
तत् शिष्य - उन (वैशम्पायन) के शिष्य थे
आह - (वे) बोले
अहो भगवन् - अहो भगवन् !
अल्प साराणां - अल्प शक्ति
चरितेन - (इन लोगोंके) करनेसे
कियत् - क्या (लाभ) होने वाला है,
अहं- - मैं (आपके लिये)
सुदुश्चरं अत्यन्त कठिन
चरिष्ये - (प्रायश्चित) करुँगा ॥६२॥

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।
विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

इति उक्तः गुरुः अपि आह कुपितः याहि अलं त्वया विप्राः अवमन्त्रा शिष्येण मत् अधीतं त्यज आशु इति ॥ ६३ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहने पर
कुपितः - कुपित होकर
गुरुः अपि - गुरु ने भी
इति आह - यह कहा
त्वया - तुम
विप्राः- - ब्राह्मणोंके अपमान
अवमन्त्रा करने वाले
शिष्येण अलं - शिष्यसे भरपाया,
याहि - (यहांसे) चले जाओ,
मत् अधीतं - मुझसे पढ़ा हुआ
आशुत्यज - शीघ्र त्याग दो' ॥६३॥

देवरातसुतः सोऽपिच्छर्दित्वा यजुषां गणम् ।
ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान् यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥

देवरात सुतः सः अपि छर्दित्वा यजुषां गणं ततः गतः अथ मुनयः ददृशुः तान् यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥

सः देवरात-	- उन देवरातके पुत्र	**ततः गतः**	- वहांसे चले गये,
सुतः	याज्ञवल्क्य	**अथ मुनयः**	- फिर मुनियोंने
अपि	- भी	**तान् यजुर्गणान्**	- उन यजुर्वेदके मन्त्रोंको
यजुषां गणं	- यजुर्वेदके मन्त्रोंको	**ददृशुः**	- देखा ॥ ६४ ॥
छर्दित्वा	- वमन करके		

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन् सुपेशलाः ॥ ६५ ॥

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तत् लोलुपतया आददुः तैत्तरीया इति यजुः शाखा आसन् सुपेशलाः ॥ ६५ ॥

तत् लोलुपतया	- उस (यजुर्वेद) के लालची होनेसे	**इति यजुः**	- इस प्रकार यजुर्वेदकी
तित्तिरा भूत्वा	- तीतरपक्षी होकर	**सुपेशलाः**	- अत्यन्त सुन्दर
यजूंषि	- यजुर्वेदके मन्त्रोंको	**तैत्तरीया**	- तैत्तरीय
आददुः	- (उन्होंने) ग्रहण कर लिया	**शाखा आसन्**	- शाखायें हो गयी हैं ॥ ६५ ॥१

---

१. अभी तक के ज्ञात विज्ञान के अनुसार पढ़े हुए को वमन करनेका कोई उपाय नहीं है । पढ़ा हुआ सिरके विशेष भागपर चोट लगनेसे भूल जा सकता है; किन्तु याज्ञवल्क्यजीके साथ ऐसा कुछ हुआ । यह वर्णनसे नहीं लगता और चोट से विस्मृति भले हो जाय वह विस्मृत ज्ञान दूसरेको नहीं मिला करता ।

एक आधुनिक ढंगकी कल्पना करें कि याज्ञवल्क्यने सब लिख लिया था और उसे फेंककर चले गये तो उसे उठानेके लिए मुनियोंकी तीतर बननेकी आवश्यकता नहीं थी ।

वैदिक साहित्य में भी ऐसी यह अकेली घटना है और याज्ञवल्क्य योगीके रूपमें बहुत प्रसिद्ध हैं । सूर्यका स्तम्भनतो उन्होंने उसी समय किया । अतः अध्ययनको स्थूल रूप देकर वमन कर देनेकी यह घटना उनकी योगशक्ति मानना अधिक उचित है ।

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन् छन्दांस्यधिगवेषयन् ।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्यः ततः ब्रह्मन् छन्दांसि अधिगवेषयन् गुरोः अविद्यमानानि स उपतस्थे अर्कं ईश्वरम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन !	**छन्दांसि**	- यजुर्वेदको
ततः-	- फिर याज्ञवल्क्य	**अधिगवेषयन्**	- अन्वेषण करते हुए
याज्ञवल्क्यः		**ईश्वरं अर्कं**	- सर्वसमर्थ सूर्यकी१
गुरोः-	- गुरुके पास भी जो	**उपतस्थे**	- स्तुति करने लगे
अविद्यमानानि	(श्रुतियां) नहीं थीं (उन)		॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच-

ॐनमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्ब-पर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाव्यव-धीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचित-संवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रा मनुवहति ॥ ६७ ॥

---

१. श्री करपात्री जी महाराज ने मुझसे एक बार कहा- 'समस्त श्रुति सूर्यमण्डल में है ।' श्रुति नित्य हैं । किसीके भी द्वारा निर्मित न होनेसे अपौरुषेय हैं । अतः सूर्यकी किरणोंकी कम्पन-ध्वनिमें उनकी स्थिति है । उन किरणोंमें चित्त एकाग्र करके उस ध्वनिका श्रवण सम्भव है । याज्ञवल्क्यके शुक्ल यजुर्वेद पानेकी प्रक्रिया कुछ ऐसी ही होनी चाहिए ।

ॐ नमः भगवते आदित्याय अखिल जगतां आत्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विध भूत निकायानां ब्रह्म आदि स्तम्ब पर्यन्तानां अन्तः हृदयेषु बहिः अपि च आकाश इव उपाधिना अव्यवधीयमानः भवान् एक एव क्षण लव निमेष अवयव उपचित संवत्सर गणेन अपां आदान विसर्गाभ्यां इमां लोकयात्रां अनुवहति ॥ ६७ ॥

ॐ भगवते	- ओंकार स्वरूप भगवान	**आकाश इव**	- आकाशके समान
आदित्याय	- सूर्यको	**उपाधिना**	- (शरीर आदि) उपाधियोंस
नमः	- नमस्कार,		
अखिल जगतां	- सम्पूर्ण जगतके	**अव्यवधीयमानः**	- असंग रहते हुए
आत्मस्वरूपेण	- आत्मास्वरूपसे	**भवान् एक एव**	- आप अद्वितीय ही हैं
चतुर्विध	- चारों प्रकार (उद्भिज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज) के	**क्षण लव**	- क्षण, लव,
		निमेष	- निमेष
		अवयव उपचित	- अंगोंसे बने
ब्रह्मादि	- ब्रह्मासे लेकर	**संवत्सर गणेन**	- वर्षोंमें
स्तम्ब पर्यन्तानां	- तिनके तक	**अपां आदान**	- जल-ग्रहण तथा
भूत निकायानां	- प्राणि समुदायके	**विसर्गाभ्यां**	- त्याग (वर्षा) के द्वारा
अन्तः हृदयेषु	- हृदयके भीतर	**इमां लोकयात्रां**	- इन लोकोंकी जीवनचर्या
च काल स्वरूपेण	- तथा कालरूपसे		
बहिः अपि	- बाहर भी	**अनुवहति**	- (आप) बराबर चलाते हैं ॥ ६७ ॥

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवन-महरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजाव-भर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

यत् उह वाव विबुध ऋषभ सवितः अस्त तपति अनुसवनं अहः अहः आम्नाय विधिना उपतिष्ठमानानां अखिल दुरित वृजिन बीज अवभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपन मण्डलम् ॥ ६८ ॥

यत् उह वाव	- जो निश्चित रूपसे ही
विबुध ऋषभ	- देव श्रेष्ठ
सवितः	- सूर्यके
अस्त तपति	- अस्त होते तथा उदय होते समय
अहः अहः	- प्रत्येक दिन
अनुसवनं	- प्रत्येक सन्ध्याके समय
आम्नाय विधिना	- वैदिक विधिसे
उपतिष्ठ- मानानां	- उपस्थान करने वालोंके
अखिल	- समस्त
दुरित वृजिन	- पापों एवं कष्टोंके
बीज अवभर्जन	- बीजोंको भस्म करने वाले हैं
भगवतः	- (उन) भगवानके
तपन मण्डलं	- सूर्य मण्डलका
समभिधीमहि	- (हम) भली प्रकार ध्यान करते हैं ॥ ६८ ॥

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रिया-सुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥

यः इह वाव स्थिर चर निकराणां निज निकेतनानां मन इन्द्रिय असुगणान् अनात्मनः स्वयं आत्म अन्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥

यः इह वाव	- जो इस संसारमें निश्चय
निज निकेतनानां	- अपने निवास स्वरूप
मन इन्द्रिय	- मन, इन्द्रिय
असुगणान्	- प्राण समूह
अनात्मनः	- आत्मासे भिन्न तत्त्वोंमें
स्वयं आत्म-अन्तर्यामी	- स्वयं अन्तर्यामी होकर
प्रचोदयति	- (उन्हें) उन्हें प्रेरित करते हैं ॥ ६९ ॥

य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥७०॥

यः एव इमं लोकं अति करालवदन अन्धकार संज्ञ अजगर ग्रह गिलितं मृतकं इव विचेतनं अवलोक्य अनुकम्पया परम कारुणिक ईक्षया एवं उत्थाप्य अहः अहः अनुसवनं श्रेयसि स्वधर्म आख्य आत्म अवस्थाने प्रवर्तयति अवनि पतिः इव असाधूनां भयं उदीरयन् अटति ॥ ७० ॥

अति कराल - अत्यन्त भयानक
वदन - मुख
अन्धकार संज्ञ - अन्धकार नामक
अजगर ग्रह - अजगर रूपी ग्राहसे
गिलितं - निगले हुए
इमं लोकं - इस संसारको
एव मृतकं इव - इस प्रकार मरेके समान
विचेतनं - संज्ञाशून्य
अवलोक्य - देखकर
यः परम-कारुणिक - जो परम दयालु
अनुकम्पया - कृपा पूर्वक
ईक्षया एव - दृष्टिमात्रसे
उत्थाप्य - उठाकर
अहः अहः - प्रतिदिन
अनुसवनं - प्रत्येक समयके
श्रेयसि - कल्याणके साधन
स्वधर्म आख्य - स्वधर्म नामक
आत्म अवस्थाने - अपने उपस्थानकी ओर लगनेमें
प्रवर्तयति - लगाते हुए
अवनिपतिः इव - भूपतिके समान
असाधूनां - दुष्टोंको
भयं उदीरयन् - भयभीत करते हुए
अटति - विचरण करते हैं ॥७०॥

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमल कोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥

परित आशापालैः तत्र तत्र कमलकोश अञ्जलिभिः उपहृत अर्हणः ॥ ७१ ॥

परित - सब ओरके
आशापालैः - दिक्पालों द्वारा
तत्र-तत्र - उन-उनके स्थानोंमें
कमलकोश - कमल कलीके समान
अञ्जलिभिः - अञ्जलियोंसे (आपको)
अर्हणः - पूजा
उपहृत - दी जाती है ॥ ७१ ॥

अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभि-र्वन्दितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥

अथ ह भगवन् तव चरण नलिन युगलं त्रिभुवन गुरुभिः वन्दितं अहं अयातयाम यजुः काम उपसराम इति ॥ ७२ ॥

अथ	- अब तो	**उपसराम**	- शरणमें
भगवन्	- भगवन !	**अहं**	- मैं
त्रिभुवन गुरुभिः	- त्रिभुवनके गुरु (जैसे- महात्माओं) द्वारा	**अयातयाम**	- सर्वथा एक प्रहरभी (पृथ्वीपर) न बीते
वन्दितं	- वन्दित	**यजुः काम**	- यजुर्वेदके मन्त्र पानेकी कामनासे आया हूँ
तव	- आपके	**इति**	- इतनी ही प्रार्थना है ॥ ७२ ॥
चरण नलिन-युगलं	- चरण कमल युगलकी		

सूत उवाच-

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः ।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः ॥ ७३ ॥

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूप धरः हरिः यजूंषि अयात यामानि मुनये अदात् प्रसादितः ॥ ७३ ॥

एवं स्तुतः	- इस प्रकार स्तुति करनेपर	**अयात यामानि**	- जिनको पृथ्वीपर एक दिन भी नहीं बीता था ।
स भगवान्-हरिः	- वे भगवान सूर्य	**यजूंषि**	- (ऐसे) यजुर्वेदके मन्त्र
प्रसादितः	- प्रसन्न होकर	**मुनये**	- मुनि (याज्ञवल्क्य)को
वाजिरूप धरः	- अश्वका रूप धारण करके	**अदात्**	- दिये ॥ ७३ ॥

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपञ्च शतैर्विभुः ।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥ ७४ ॥

यजुभिः अकरोत् शाखा दशपञ्च शतैः विभुः जगृहुः वाजसन्यस्ताः काण्व माध्यन्दिन आदयः ॥ ७४ ॥

विभुः	- समर्थ (याज्ञवल्क्य) ने	**वाजसन्यस्ताः**	- (उन) वाजसनेय
शतैः यजुभिः	- (उन) सैकड़ों यजुर्वेदके मन्त्रोंसे		(शाखाओं) को
दशपञ्च	- पन्द्रह	**काण्व**	- काण्व
शाखा अकरोत्	- शाखायें बनायीं	**माध्यन्दिन**	- माध्यन्दिन
		आदयः जगृहुः	- आदिने ग्रहण किया

॥ ७४ ॥

जैमिनेः सामगस्यासीत् सुमन्तुस्तनयो मुनिः ।
सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥

जैमिनेः सामगस्य आसीत् सुमन्तुः तनयः मुनिः सुन्वान् तु तत् सुतः ताभ्यां एक एकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥

सामगस्य	- सामवेद जाननेवाले	**सुन्वान् आसीत्**	- सुन्वान् थे
जैमिनेः	- जैमिनिके	**ताभ्यां**	- उन (दोनों) को
तनयः	- पुत्र		(जैमिनीने)
सुमन्तुः मुनिः	- सुमन्तु मुनि	**एक एकां**	- एक एक
तु तत् सुतः	- और उनके पुत्र	**संहितां प्राह**	- संहिता पढ़ायी ॥७५॥

सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ।
सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥

सुकर्मा च अपि तत् शिष्यः सामवेद तरोः महान् सहस्र संहिता भेदं चक्रे साम्नां ततः द्विजाः ॥ ७६ ॥

द्विजाः	- विप्रो !	**तरोः**	- रूपी वृक्षकी
महान्	- महान	**सहस्र-**	- संहिताके सहस्र भेद
सुकर्मा अपि	- सुकर्मा भी	**संहिता भेदं**	
तत् शिष्यः	- उन्हीं (जैमिनी) के शिष्य थे	**चक्रे**	- किये
		ततः	- उनसे
सामवेद	- (उन्होंने) सामवेद	**साम्नां**	- सामगान (सीखा) ॥७६॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः ।
शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्यञ्जिः च सुकर्मणः शिष्यौ जगृहतुः च अन्य आवन्त्यः ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥

सुकर्मणः - सुकर्माके
शिष्यौ - शिष्य
कौसल्यः - कोसल निवासी
हिरण्यनाभः - हिरण्यनाभ
पौष्यञ्जिः - पौष्यञ्जि,
च अन्य - तथा दूसरे
ब्रह्मवित्तमः - ब्रह्म वेत्ताओंमें श्रेष्ठ
आवन्त्यः - आवन्त्य थे (उन्होंने,
जगृहतुः - (वेद शाखाओंको) ग्रहण किया ॥ ७७ ॥

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन् पञ्चशतानि वै ।
पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान् प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन् पञ्चशतानि वै पौष्यञ्ज्य आवन्त्ययोः च अपि तान् च प्राच्यान् प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

पौष्यञ्ज्य - पौष्यंजिके
च आवन्त्ययोः - तथा आवन्त्य
अपि - के भी
वै पञ्चशतानि - निश्चय पांचसौ
शिष्या - शिष्य
आसन् - थे (वे)
उदीच्याः - (उत्तर दिशावासी होनेसे)
सामगाः - 'उदीची सामवेदी' थे,
तान् च - उनको ही
प्राच्यान् - 'प्राच्य सामवेदी
प्रचक्षते - कहा जाता है ॥७८॥

लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुसीदः कुक्षिरेव च ।
पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥

लौगाक्षिः मांगलिः कुल्यः कुसीदः कुक्षिः एव च पौष्यञ्जि शिष्या जगृहुः संहिताः ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥

पौष्यञ्जि - पौष्यञ्जिके
शिष्या - शिष्य
लौगाक्षिः - लौगाक्षि,
मांगलिः - मांगलि,
कुल्यः कुसीदः - कुल्य, कुसीद,
च कुक्षिः एव - तथा कुक्षि भी थे
ते शतं शतं - उन्होंने सौ सौ
संहिताः - संहितायें
जगृहुः - ग्रहणकीं ॥ ७९ ॥

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ।
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

कृतः हिरण्यनाभस्य चतुः विंशति संहिताः शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

हिरण्यनाभस्य - हिरण्यनाभके
शिष्यकृतः - शिष्यकृतने
स्वशिष्येभ्यः - अपने शिष्योंको
चतुः विंशति - चौबीस
संहिताः - संहितायें
ऊचे - पढ़ायी
शेषा - शेष (संहितायें)
आत्मवान् - संयमी
आवन्त्य - आवन्त्य (ने अपने शिष्योंको पढ़ायीं) ॥ ८० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे वेदशाखाप्रणयनं षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथर्ववित् सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत् स्वकाम् ।
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ।। १ ।।

अथर्ववित् सुमन्तुः च शिष्यं अध्यापयत् स्वकां संहितां सः अपि पथ्याय वेद दर्शाय च उक्तवान् ।। १ ।।

अथर्ववित्	- अथर्ववेदके ज्ञाता	**सः अपि**	- उस (शिष्य) ने भी
सुमन्तुः च	- सुमन्तुने भी	**पथ्याय**	- पथ्यको
शिष्यं	- अपने शिष्य (कबन्ध) को	**च वेददर्शाय**	- तथा वेद दर्शको
स्वकां संहितां	- अपनी संहिता	**उक्तवान**	- सुनाया (पढ़ाया) ।।१।।
अध्यापयत्	- पढ़ायी		

शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ।
वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ।। २ ।।

शौक्लायनिः ब्रह्मबलिः मोदोषः पिप्पलायनिः वेददर्शस्य शिष्याः ते पथ्य शिष्यान् अथो शृणु ।। २ ।।

वेददर्शस्य	- वेददर्शके	**मोदोषः**	- मोदोष
शिष्याः ते	- शिष्यवे	**पिप्पलायनिः**	- पिप्पलायनि हैं ।
शौक्लायनिः	- शौक्लायनि,	**अथ पथ्य**	- अब पथ्यके शिष्योंको
ब्रह्मबलिः	- ब्रह्मबलि,	**शिष्यान्**	
		शृणु	- सुनो ।। २ ।।

कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ।
बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च ।
अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथापरे ।। ३ ।।

कुमुदः शुनकः ब्रह्मन् जाजलिः च अपि अथर्ववित् बभ्रुः शिष्यः अथ अंगिरसः सैन्धवायन एव च अधीयेतां संहिते द्वे सावर्णि आद्याः तथा अपरे ॥ ३ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**अथ बभ्रुः च**	- थे बभ्रु और
कुमुदः	- कुमुद,	**सैन्धवायन एव**	- सैन्धवायन भी,
शुनकः	- शुनक	**द्वे संहिते**	- (इन्होंने) दो दो संहिताओंका
च जाजलिः अपि	- तथा जाजलि भी	**अधीयेतां**	- अध्ययन किया ।
अंगिरसः	- अंगिरा गोत्रोत्पन्न	**तथा अपरे**	- और दूसरे
अथर्ववित्	- अथर्ववेदके ज्ञाता (शुनक) के	**सावर्णि आद्या**	- सावणि आदि ॥ ३ ॥
शिष्यः	- शिष्य		

नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः ।
एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान् मुने ॥ ४ ॥

नक्षत्रकल्पः शान्तिः च कश्यप अंगिरस आदयः एते आथर्वणा आचार्याः शृणु पौराणिकान् मुने ॥ ४ ॥

नक्षत्रकल्पः	- नक्षत्रकल्प,	**आथर्वणा**	- अथर्व वेदके
शान्तिः	- शान्ति,	**आचार्याः**	- आचार्य (हुए हैं)
कश्यप	- कश्यप	**मुने**	- मुनि शौनकजी
न अंगिरस	- तथा अंगिरस	**पौराणिकान्**	- (अब) पौराणिकोंको
आदयः एते	- आदिये	**शृणु**	- सुनो ॥ ४ ॥

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ।
वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥

त्रय्यारुणिः कश्यपः च सावर्णिः अकृतव्रणः वैशम्पायन हारीतौ षट् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥

त्रय्यारुणिः	- त्रय्यारुणि,	**वैशम्पायन**	- वैशम्पायन,
कश्यपः	- कश्यप,	**च हारीतौ**	- और हारीत
सावर्णिः	- सावर्णि,	**वै इमे षट्**	- निश्चय ये
अकृतव्रणः	- अकृतव्रण,	**पौराणिका**	- पुराणाचार्य हैं ॥ ५ ॥

अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत्पितुर्मुखात् ।
एकैकामहमे तेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥

अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत् पितुः मुखात् एक एकां अहं एतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥

व्यास शिष्यात्	- व्यासजीके शिष्य	**एतेषां**	- इन लोगोंको
मत् पितुः	- मेरे पिता (रोमहर्षण)के	**शिष्यः अहं**	- शिष्य होकर मैंने
मुखात्	- मुखसे	**एक एकां**	- एकसे एक (के क्रमसे)
अधीयन्त	- (इन्होंने) अध्ययन किया,	**सर्वाः**	- सब (छहो)
		समध्यगाम्	- भली प्रकार अध्ययन किया ॥ ६ ॥

कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ।
अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥

कश्यपः अहं च सावर्णी रामशिष्यः अकृतव्रणः अधीमहि व्यासशिष्यात् चतस्रः मूलसंहिताः ॥ ७ ॥

कश्यपः	- कश्यप,	**च अहं**	- तथा मैं (उग्रश्रवा) ने
सावर्णी	- सावर्णि,	**व्यासशिष्यात्**	- व्यासजीके शिष्य (रोमहर्षण) से
रामशिष्यः	- परशुरामजीके शिष्य	**चतस्रः**	- (और भी) चार
अकृतव्रणः	- अकृतव्रण	**मूल संहिताः**	- मूल (पुराण) संहितायें
		अधीमहि	- अध्ययनकी ॥ ७ ॥

पुराणलक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ।
शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

पुराण लक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिः निरूपितं शृणुष्व बुद्धिं आश्रित्य वेदशास्त्र अनुसारतः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**निरूपितं**	- बतलाये गये
वेदशास्त्र	- वेद तथा शास्त्रोंके	**पुराण लक्षणं**	- पुराणोंके लक्षण
अनुसारतः	- अनुसार	**बुद्धिं आश्रित्य**	- बुद्धिका सहारा लेकर
ब्रह्मर्षिभिः	- ब्रह्मर्षियों द्वारा	**शृणुष्व**	- सुनिये ॥ ८ ॥

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च ।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥

सर्गः अस्य अथ विसर्गः च वृत्ती रक्षा अन्तराणि च वंशः वंश अनुचरितं संस्था हेतुः अपाश्रयः ॥ ९ ॥

सर्गः	-सर्ग (मूल तत्त्वोंकी सृष्टि)	**वंशः**	- (मनुओंका) वंश,
अथ विसर्गः	-तथा विसर्ग (नाना प्रकारकी सृष्टि)	**वंश अनुचरितं**	- वंशानुचरित
		संस्था	- संस्था (प्रलय)
च वृत्ती	-एवं वृत्ति (उनका व्यवहार)	**हेतुः**	- (इन सबका कारण) हेतु,
रक्षा	-रक्षा (उनका रक्षण)	**अपाश्रयः**	- (सर्वाश्रय तत्त्व) अपाश्रय ॥ ९ ॥
अन्तराणि	-मन्वन्तरः		

दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥

दशभिः लक्षणैः युक्तं पुराणं तत् विदः विदुः केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महत् अल्प व्यवस्थया ॥ १० ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**केचित्**	- कुछ लोग
तत् विदः	- उस (पुराण शास्त्र) को जाननेवाले	**पञ्चविधं**	- पांच लक्षण वाला (कहते हैं)
दशभिः	- (इन) दस	**महत्**	- महापुराण,
लक्षणैः	- लक्षणोंसे	**अल्प**	- छोटा (पुराण)
युक्तं पुराणं	- युक्तको पुराण	**व्यवस्थया**	- (होनेसे दोनों बातोंकी)
विदुः	- जानते हैं,		संगति है ॥ ११ ॥

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥

अव्याकृत गुणक्षोभात् महतः त्रिवृतः अहमः भूत मात्र इन्द्रिय अर्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥

अव्याकृत	- मूलप्रकृतिमें	**भूत मात्र**	- पञ्चभूत, तन्मात्रायें,
गुणक्षोभात्	- (लीन) गुणोंके क्षुब्ध होनेसे	**इन्द्रिय**	- इन्द्रियां
महतः	- महत्तत्त्व,	**अर्थानां**	- एवं उनके विषयोंकी
त्रिवृतः अहमः	- त्रिविध अहंकार,	**सम्भवः**	- उत्पत्ति
		सर्ग उच्यते	- सर्ग कही जाती है ॥ ११ ॥

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥

पुरुष अनुगृहीतानां एतेषां वासनामयः विसर्गः अयं समाहारः बीजात् बीजं चर अचरम् ॥ १२ ॥

पुरुष - परमपुरुषका
अनुगृहीतानां - अनुग्रह पानेवाले
एतेषां - इन तत्त्वोंका
अयं वासनामयः - यह वासनामय
समाहारः - सम्पूर्ण (सृष्टि) विस्तार
बीजात् बीजं - एक बीज से दूसरे बीजकी (उत्पत्ति क्रमसे)
चर अचरं - (सम्पूर्ण) चराचर सृष्टि
विसर्गः - विसर्ग (कहलाती) है
॥ १२ ॥

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामच्चोदनयापि वा ॥ १३ ॥

वृत्तिः भूतानि भूतानां चराणां अचराणि च कृता स्वेन नृणां तत्र कामात् चोदनया अपि वा ॥ १३ ॥

नृणां स्वेन - मनुष्योंने स्वयं ही
कामात् कामनाके अनुसार
वा तत्र - अथवा इस विषयमें
चोदनया अपि - शास्त्रकी प्रेरणा होनेसे भी
चराणां- - चलने वाले
भूतानां प्राणियोंके लिए
अचराणि च - न चलने वाले ही (स्थावर)
भूतानि - पदार्थोंको
वृत्तिः कृता - आजीविका बनाया
॥ १३ ॥

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे ।
तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥

रक्षा अच्युत अवतार ईहा विश्वस्य अनु युगे युगे तिर्यक् मर्त्य ऋषि देवेषु हन्यन्ते यैः त्रयी द्विषः ॥ १४ ॥

अनु युगे युगे - प्रत्येक युगमें
तिर्यक् - पशु-पक्षी,
मर्त्य ऋषि - मनुष्य, ऋषि,
देवेषु - देवताओंमें
अच्युत - अच्युतको
अवतार ईहा - अवतार लीला
यैः - जिसके द्वारा
त्रयी द्विषः - वेद द्रोही
हन्यन्ते - मारे जाते हैं
रक्षा - रक्षा कही जाती है
॥ १४ ॥

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥

मन्वन्तरं मनुः देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ऋषयः अंश अवतारः च हरेः षट् विधं उच्यते ॥ १५ ॥

मनुः देवा	मनु, देवता,	**च हरेः अंश**	- तथा श्री हरिके
मनु पुत्राः	- मनुके पुत्र,	**अवतारः**	अंशावतार
सुरेश्वरः	- इन्द्र,	**षट्विधं**	- इन्हीं ६ वर्गको
ऋषयः	- सप्तर्षि,	**मन्वन्तरं**	- मन्वन्तर
		उच्यते	- कहा जाता है,

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।
वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥

राज्ञां ब्रह्म प्रसूतानां वंशः त्रैकालिकः अन्वयः वंश अनुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराः च ये ॥ १६ ॥

ब्रह्म प्रसूतानां	- ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए	**वंशः**	- वंश तथा
राज्ञां	- राजाओंके	**तेषां ये**	- उनके जो
अन्वयः	- वंशमें उत्पन्न हुए (राजाओं) का	**वंशधराः**	- वंश चलाते हुए उनका भी
		वृत्तं	- चरित
त्रैकालिकः	- (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालोंके	**वंशानुचरितं**	- वंशानुचरित (कहलाता) है ॥ १६ ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः ॥ १७ ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिकः नित्य आत्यन्तिकः लयः संस्था इति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धा अस्य स्वभावतः ॥ १७ ॥

अस्य स्वभावतः - इस (प्रलय) के स्वभावानुसार
कविभिः - विद्वानों द्वारा
चतुर्धा प्रोक्ता - चार प्रकारकी कही गयी
नैमित्तिकः - नैमित्तिक,
प्राकृतिकः - प्राकृतिक,
नित्य - नित्य एवं
आत्यन्तिकः लयः - आत्यन्तिक प्रलय
संस्था इति - संस्था ऐसा (कहा गया) है ॥ १७ ॥

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ।
यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥

हेतुः जीवः अस्य सर्ग आदेः अविद्या कर्म कारकः यं च अनुशयिनं प्राहुः अव्याकृतं उत अपरे ॥ १८ ॥

हेतुः जीवः - हेतु जीवको कहा गया है,
अस्य अविद्या - इसीकी अविद्या,
कर्म कारकः - कर्म, कर्तापनसे
सर्ग आदेः - जन्मादि होता है
यं च - जिस (जीव) को ही
अनुशयिनं - (चेतन की दृष्टिसे प्रकृतिमें) सोने वाला
उत अपरे - तथा दूसरे
अव्याकृतं - (जड़की दृष्टिसे) अव्याकृत
प्राहुः - कहते हैं ॥ १८ ॥

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥

व्यतिरेक अन्वयः यस्य जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिषु मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिषुः अपाश्रयः ॥ १९ ।

मायामयेषु - मायामय स्थितिमें
जाग्रत् - जाग्रत,
स्वप्न - स्वप्न,
सुषुप्तिषु - सुषुप्ति रूपमें
व्यतिरेक - उलटे क्रमसे (जाग्रतसे सुषुप्ति)
अन्वयः - सीधे क्रम (सुषुप्तिसे जाग्रत)
जीववृत्तिषुः - जीवके रूपमें व्यवहार है
यस्य - जिसकी (अवस्थायें) हैं
तत् ब्रह्म - वह (तुरीयतत्त्व) ब्रह्म
अपाश्रयः - अपाश्रय है ॥ १९ ॥

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ।
बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन् मात्रं रूप नामसु बीज आदि पञ्चता अन्तासु हि अवस्थासु युत अयुतम् ॥ २० ॥

यथा	- जैसे	**पञ्चता**	- मृत्यु
रूप नामसु	- रूप नाम वाले	**अन्तासु**	- पर्यन्त
पदार्थेषु	- पदार्थोंमें	**अवस्थासु**	- अवस्थाओंमें
सन् मात्रं	- सत्ता मात्र	**हि**	- क्योंकि
द्रव्यं	- द्रव्य है (ऐसे ही)	**युत**	- (उनसे) संयुक्त और
बीज आदि	- बीजसे प्रारम्भ होकर	**अयुतं**	- पृथक भी (रहता है, आत्मा उन अवस्थाओंसे पृथक) है ॥ २० ॥

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ।
योगेन वा तदाऽऽत्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥ २१ ॥

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्ति त्रयं स्वयं योगेन वा तदा आत्मानं वेद ईहाया निवर्तते ॥ २१ ॥

यदा	- जब	**हित्वा**	- त्यागकर
चित्तं	- चित्त	**विरमेत**	- उपराम होजाता है
स्वयं	- स्वयं (अपने विवेकसे)	**तदा**	- तब
वा योगेन	- अथवा योगाभ्याससे	**आत्मानं वेद**	- आत्माको जान लेता है
वृत्ति त्रयं	- तीनों (रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुणकी) वृत्तियोंको	**ईहाया**	- (तथा) प्रवृत्तियोंसे
		निवर्तते	- निवृत्त होजाता है॥२१॥

एवंलक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥

एवं लक्षण लक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः मुनयः अष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥

पुराविदः	- प्राचीन तत्त्वोंको जानने वाले	**क्षुल्लकानि**	- छोटे
मुनयः	- मुनियोंने	**च महान्ति**	- तथा बड़े
एवं	- इस प्रकारके	**अष्टादश**	- अठारह
लक्षण	- लक्षणोंसे	**पुराणानि**	- पुराण
लक्ष्याणि	- पहिचाने जानेवाले	**प्राहुः**	- बतलाये हैं ॥ २२ ॥

ब्राह्मं पाद्यं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥ २३ ॥

ब्राह्मं पाद्यं वैष्णवं च शैवं लैंगं स गारुडं नारदीयं भागवतं आग्नेयं स्कान्द संज्ञितम् ॥ २३ ॥

संज्ञितं	- उनके नाम हैं	**स गारुडं**	- गुरड़ पुराण सहित
ब्राह्मं	- ब्रह्मपुराण,	**नारदीयं**	- नारद पुराण,
पाद्यं	- पद्मपुराण,	**भागवतं**	- भागवत पुराण,
च शैवं	- तथा शिव पुराण	**आग्नेयं**	- अग्नि पुराण
लैंगं	- लिंग पुराण	**स्कान्द**	- स्कन्द पुराण ॥ २३ ॥

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं स वामनं वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्याम् इति त्रिषट् ॥ २४ ॥

भविष्यं - भविष्य पुराण,	**वाराहं** - वाराह पुराण
ब्रह्मवैवर्तं - ब्रह्मवैवर्त पुराण,	**मात्स्यं** - मत्स्य पुराण
मार्कण्डेयं - मार्कण्डेय पुराण	**कौर्मं** - कूर्म पुराण
स वामनं - वामन पुराण सहित	**च ब्रह्माण्डाख्याम्** - तथा ब्रह्माण्ड पुराण
	इति - इस प्रकार
	त्रिषट् - (ये) अठारह पुराण हैं ॥ २४ ॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ।
शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५॥

ब्रह्मन् इदं सम आख्यातं शाखा प्रणयनं मुनेः शिष्य शिष्य प्रशिष्यानां ब्रह्मतेजः विवर्धनम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !	**प्रशिष्यानां** - शिष्योंकी परम्परा द्वारा
इदं - यह	**शाखा** - (वेदोंकी) शाखाका
मुनेः - महामुनि व्यासजीके	**प्रणयनं** - निर्माण
शिष्य - शिष्यः (उनके)	**सम आख्यातं** - भली प्रकार वर्णन किया
शिष्य - शिष्य (उनके भी)	**ब्रह्मतेजः** - (श्रवण करनेवालेके) ब्रह्मतेजको
	विवर्धनम् - (यह) बढ़ानेवाला है ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

शौनक उवाच-

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ।
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

सूत जीव चिरं साधो वद नः वदतां वर तमसि अपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

साधो सूत - साधु सूत !
चिरं जीव - चिरजीवी होओ !
वदतां वर - (तुम) वक्ताओंमें श्रेष्ठ हो,
नः वद - हम लोगोंको सुनाओ,
अपारे तमसि - (संसारके) घोर अन्धकारमें
भ्रमतां नृणां - भटकते मनुष्योंको
त्वं पारदर्शनः - तुम पारहोनेका (मार्ग) दिखलाने वाले हो ॥१॥

आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ।
यः कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥

आहुः चिर आयुषं ऋषिं मृकण्डतनयं जनाः यः कल्प अन्ते उर्वरितः येन ग्रस्तं इदं जगत् ॥ २ ॥

जनाः - लोग
ऋषिं मृकण्ड-तनय - मृकण्ड-नन्दन ऋषि मार्कण्डेयको
चिर आयुष - दीर्घायु
आहुः - कहते हैं,
येन इदं-जगत् - जिसने इस पूरे संसारको
ग्रस्तं - निगल लिया था
कल्पान्त - (उस) कल्पके अन्त (की प्रलय) से
यः उर्वरितः - जो बच गये थे ॥ २ ॥

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन् भार्गवर्षभः ।
नैवाधुनापि भूतानां सम्प्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥

स वा अस्मत् कुल उत्पन्नः कल्पे अस्मिन् भार्गव ऋषभः न एव अधुना अपि भूतानां सम्प्लवः कः अपि जायते ॥ ३ ॥

वा स - किन्तु वे
भार्गव ऋषभः - भार्गव श्रेष्ठ
अस्मत् कुल - हमारे ही कुलमें
उत्पन्नः - उत्पन्न हुए हैं और
अधुना अपि - (इस कल्पमें) अब तक भी
भूतानां - प्राणियोंकी
कः अपि - कोई भी
सम्प्लवः - प्रलय
न एव जायते - नहीं ही हुई है ॥ ३ ॥

एक एवार्णवे भ्राम्यन् ददर्श पुरुषं किल ।
वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥

एक एव अर्णवे भ्राम्यन् ददर्श पुरुषं किल वटपत्र पुटे तोकं शयानं तु एकं अद्भुतम् ॥ ४ ॥

एक एव अर्णवे - (सम्पूर्ण पृथ्वी) एक ही समुद्रमें डूब गयी थी उसमें
भ्राम्यन् - भटकते हुए
किल वटपत्र पुटे - अहो वटके पत्तेके दोनेमें
शयानं - सोते हुए
एकं अद्भुतं - एक अद्भुत
पुरुषं ददर्श - पुरुषको देखा ॥ ४ ॥

एष नः संशयो भूयान् सूत कौतूहलं यतः ।
तं नश्छिन्धि महायोगिन् पुराणेष्वपि सम्मतः ॥ ५ ॥

एष नः संशयः भूयान् सूत कौतूहलं यतः तं नः छिन्धि महायोगिन् पुराणेषु अपि सम्मतः ॥ ५ ॥

सूत - सूतजी !
महायोगिन् - आप महायोगी हैं,
पुराणेषु अपि - पौराणिकोंमें भी
सम्मतः - आदरणीय हैं
नः एष - हमको यह
भूयान् संशयः - बड़ा भारी सन्देह है
यतः कौतूहलं - जिससे सुननेकी उत्कण्ठा है
तं नः छिन्धि - उस हमारे (सन्देहको) काट दीजिये ॥ ५ ॥

सूत उवाच-

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ।
नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥

प्रश्नः त्वया महर्षेः अयं कृतः लोकभ्रम अपहः नारायण कथा यत्र गीता कलि मल अपहा ॥ ६ ॥

महर्षेः - महर्षि !
त्वया - आपने
लोकभ्रम - लोगोंका भ्रम
अपहः - दूर करने वाला
अयं प्रश्नः - यह प्रश्न
कृतः - किया है,
यत्र - जिसमें
कलिमल - कलियुगके दोषोंको
अपहा - दूर करनेवाली
नारायण - नारायणकी
कथा गीता - कथा वर्णित है ॥ ६ ॥

प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ।
छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

प्राप्त द्विजाति संस्कारः मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् छन्दांसि अधीत्य धर्मेण तपः स्वाध्याय संयुतः ॥ ७ ॥

पितुः	- पिता द्वारा	**धर्मेण**	- धर्मपूर्वक
क्रमात्	- क्रमशः	**छन्दांसि**	- वेदोंका
द्विजाति संस्कारः	- द्विजोंके सब संस्कार	**अधीत्य**	- अध्ययन करके
प्राप्त	- हो जानेपर	**तपः स्वाध्याय**	- तपस्या, वेदाध्ययन
मार्कण्डेयः	- मार्कण्डेयजी	**संयुतः**	- युक्त होगये ॥ ७ ॥

बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः ।
बिभ्रत् कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥

बृहत् व्रतधरः शान्तः जटिलः वल्कल अम्बरः बिभ्रत् कमण्डलुं दण्डं उपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥

बृहत् व्रत	- नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत	**दण्डं**	- दण्ड,
धरः शान्तः	- धारण करके शान्त	**समेखलं**	- मेखलाके साथ
जटिलः	- जटाधारी,	**उपवीतं**	- यज्ञोपवीत
वल्कल अम्बरः	- वल्कल वस्त्र पहिनते,	**बिभ्रत्**	- धारण करते थे ॥ ८ ॥
कमण्डलुं	- कमण्डलु,		

कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ।
अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन् सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥

कृष्ण अजिनं स अक्षसूत्रं कुशान् च नियम अर्द्धये अग्नि अर्क गुरु विप्र आत्मसु अर्चयन् सन्ध्ययोः हरिम् ॥ ९ ॥

नियम अर्द्धये	- नियमकी पूर्तिके लिये	**सन्ध्ययोः**	- दोनों सन्ध्याओंमें
कृष्ण अजिनं	- काला मृगचर्म,	**अग्नि अर्क**	- अग्नि, सूर्य,
स अक्षसूत्रं	- रुद्राक्षकी मालाके साथ	**गुरु विप्र**	- गुरु ब्राह्मण तथा
कुशान् च	- कुशोंको भी (रखते थे)	**आत्मसु**	- हृदयमें
		हरिं अर्चयन्	- श्रीहरिकी (मानसिक) पूजा करते थे ॥ ९ ॥

सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ।
बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥

सायं प्रातः च गुरवे भैक्ष्यं आहृत्य वाक्यतः बुभुजे गुरुः अनुज्ञातः सकृत् नो चेत् उपोषितः ॥ १० ॥

सायं च प्रातः	- शामको और सवेरे	**वाक्यतः**	- वाणी संयम करके (मौन होकर)
गुरवे	- गुरुके लिए	**बुभुजे**	- भोजन करते थे
भैक्ष्यं आहृत्य	- भिक्षा लाकर	**नो चेत्**	- यदि (गुरु) अनुमति नहीं देते थे
गुरुः अनुज्ञातः	- यदि गुरु अनुमति देते थे तो	**उपोषितः**	- उपवास करते थे ॥१०॥
सकृत्	- एक बार		

एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ।
आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

एवं तपः स्वाध्याय परः वर्षाणां अयुत अयुतं आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

एवं तपः	- इस प्रकार तपस्या	**हृषीकेशं**	- भगवान् हृषीकेशकी
स्वाध्याय	- वेदाध्ययन	**आराधयन्**	- आराधना करते हुए
परः	- परायण होकर	**सुदुर्जयं**	- जिसे जीतना अत्यन्त कठिन है
अयुत अयुतं	- करोड़ों	**मृत्युं जिग्ये**	- उस मृत्युको जीत लिया ॥ ११ ॥
वर्षाणां	- वर्षों तक		

ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ।
नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥

ब्रह्मा भृगुः भवः दक्षः ब्रह्मपुत्राः च ये परे नृ देव पितृ भूतानि तेन आसन् अतिविस्मिताः ॥ १२ ॥

तेन	- इससे	**नृ देव**	- मनुष्य, देवता,
ब्रह्मा भृगुः	- ब्रह्मा, भृगु,	**पितृ भूतानि**	- पितर (दूसरे) प्राणी
भवः दक्षः	- शंकरजी, दक्ष,	**अतिविस्मिताः**	- अत्यन्त चकित
च ये परे	- तथा जो दूसरे	**आसन्**	- होगये ॥ १२ ॥
ब्रह्मपुत्राः	- ब्रह्माजीके पुत्र		

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥

इत्थं बृहत् व्रत धरः तपः स्वाध्याय संयमैः दध्याः अधोक्षजं योगी ध्वस्त क्लेश अन्तरात्मना ॥ १३ ॥

इत्थं	- इस प्रकार	**संयमैः**	- इन्द्रिय-संयम द्वारा
बृहत् व्रत	- आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत	**अन्तरात्मना**	- अन्तःकरणके
धरः	- धारण करके	**ध्वस्तक्लेश**	- (अविद्यादि) क्लेशोंको[1] नष्ट करें
योगी	- योगी (मार्कण्डेय)	**अधोक्षजं**	- भगवान हृषीकेशका
तपः स्वाध्याय	- तपस्या, वेदाध्ययन तथा	**दध्याः**	- ध्यान करने लगे ॥१३॥

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ।
व्यतीयाय महान् कालो मन्वन्तरषडात्मकः ॥ १४ ॥

तस्य एवं युञ्जतः चित्तं महायोगेन योगिनः व्यतीयाय महान् कालः मन्वन्तर षट् आत्मकः ॥ १४ ॥

तस्य योगिनः	- उन योगीके	**षट् मन्वन्तर**	- छ मन्वन्तर
महायोगेन	- महायोगके द्वारा	**आत्मकः**	- स्वरूप
एवं चित्तं	- इस प्रकार चित्तको	**महान् कालः**	- दीर्घ समय
युञ्जतः	- (भगवानमें) लगाते हुए	**व्यतीयाय**	- बीत गया ॥ १४ ॥

---

१. अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पांच क्लेश हैं ।

एतत् पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन् किलान्तरे ।
तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥

एतत् पुरंदरः ज्ञात्वा सप्तमे अस्मिन् किल अन्तरे तपः विशंकितः ब्रह्मन् आरेभे तत् विघातनम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**एतत् ज्ञात्वा**	- इसे जानकर
किल अस्मिन्	- अहो, इस	**तपः-**	- (उनकी) तपस्यासे
सप्तमे अन्तरे	- सातवें मन्वन्तरमें	**विशंकितः**	बहुत शंकित होकर
पुरन्दरः	- पुरन्दर इन्द्रने	**तत् विघातनं**	- उसे नष्ट करनेकी चेष्टा
		आरेभे	- आरम्भकी ॥ १५ ॥

गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ ।
मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ १६ ॥

गन्धर्व अप्सरसः कामं वसन्त मलय अनिलौ मुनये प्रेषयामास रजः तोक मदौ तथा ॥ १६ ॥

मुनये	- मुनिके यहां	**मलय अनिलौ**	- मलयपवन
गन्धर्व	- गन्धर्वों	**रजः**	- रजोगुण (लोभ)
अप्सरसः	- अप्सरायें,	**तथा तोकमदौ**	- तथा थोड़ा मद भी
कामं	- कामदेव,	**प्रेषयामास**	- भेजा ॥ १६ ॥
वसन्त	- वसन्त		

ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ।
पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

ते वै तत् आश्रमं जग्मुः हिम अद्रेः पार्श्व उत्तरे पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्र आख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

विभो	- प्रभो !	**उत्तरे पार्श्व**	- उत्तरी किनारे पर है
वै ते	- निश्चय वे सब	**यत्र पुष्पभद्रा**	- जहाँ पुष्पभद्रा नदी
तत् आश्रमं	- उस आश्रमपर	**नदी**	
जग्मुः	- गये	**चित्र आख्या**	- और चित्रानामकी
हिम अद्रेः	- (जो) हिमालय पर्वतके	**शिला**	- शिला है ॥ १७ ॥

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् ।
पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥

तत् आश्रम पदं पुण्यं पुण्य द्रुम लता अञ्चितं पुण्य द्विज कुल आकीर्ण पुण्य अमल जलाशयम् ॥ १८ ॥

पुण्यद्रुम	- पवित्र वृक्ष	**पुण्य अमल**	- पवित्र निर्मल
लता अञ्चितं	- लताओंसे शोभित,	**जलाशयं**	- जलाशय वाला
पुण्य द्विजकुल	- पवित्र पक्षि समूहसे	**तत् आश्रमपदं**	- वह आश्रम स्थान
आकीर्णं	- भरा हुआ,	**पुण्यं**	- पवित्र था ॥ १८ ॥

मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ।
मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥

मत्त भ्रमर संगीतं मत्त कोकिल कूजितं मत्त बर्हि नट आटोपं मत्त द्विजकुल आकुलम् ॥ १९ ॥

मत्त भ्रमर	- वहां मतवाले होकर भ्रमर	**मत्तबर्हि**	- मतवाले मयूर
संगीतं	- गाते (गुंजार करते) थे,	**नट आटोपं**	- पंख फैलाकर नाचते थे,
मत्त कोकिल	- आनन्दमत्त कोकिल	**मत्त द्विजकुल**	- आनन्दमत्त पक्षिसमूहसे
कूजितं	- कुहकती थीं,	**आकुलं**	- भरा था ॥ १९ ॥

वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ।
सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन् स्मरम् ॥ २० ॥

वायुः प्रविष्ट आदाय हिम निर्झर शीकरान् सुमनोभिः परिष्वक्तः ववौ उत्तम्भयन् स्मरम् ॥ २० ॥

हिम निर्झर - शीतल करनेकी
शीकरान् - फुहारोंको
आदाय - साथ लेकर
सुमनोभिः - पुष्पोंको

परिष्वक्तः - स्पर्श करता
वायुः - वायु
स्मरं - कामको
उत्तम्भयन् - उद्दीप्त करना
प्रविष्ट ववौ - प्रवेश करके बहने लगी ॥ २० ॥

उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ।
गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत् कुसुमाकरः ॥ २१ ॥

उद्यत् चन्द्र निशा वक्त्रः प्रवाल स्तबका अलिभिः गोपद्रुम लताजालैः तत्र आसीत् कुसुमाकरः ॥ २१ ॥

निशावक्त्रः - रात्रि-मुख (सन्ध्याका समय)
उद्यत् चन्द्र - चन्द्रोदय हुआ,
प्रवाल स्तबक - नये किसलय, पुष्पगुच्छ

लता जालैः - लताओंके जालसे
गोपद्रुम - (लिपटे) छिपे वृक्ष,
अलिभिः - (गुंजार करते) भ्रमरोंसे
तत्र कुसुमाकरः - वहाँ वसन्त ऋतु
आसीत् - होरही थी ॥ २१ ॥

अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ।
अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥

अनु ईयमानः गन्धर्वैः गीत वादित्र यूथकैः अदृश्यत आत्तचाप इषुः स्वः स्त्री यूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥

गीत वादित्र - गाते-बजाते
गन्धर्वैः यूथकैः - गन्धर्वोके समुदाय
अनु ईयमानः - जिसके पीछे चल रहे थे
स्वः स्त्री - (वह) स्वर्गीय स्त्रियों (अप्सराओं)

यूथपतिः - के दलका स्वामी
स्मरः - कामदेव
आत्तचाप इषुः - धनुष-बाण लिए
अदृश्यत - दिखलायी पड़ा ॥२२॥

हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ।
मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥

हुत्वा अग्निं सम उपासीनं ददृशुः शक्र किंकराः मीलित अक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तं इव अनलम् ॥ २३ ॥

शक्र किंकराः - इन्द्रके सेवकोंने
हुत्वा अग्निं - (सायंकालीन) अग्निहोत्र करके
सम उपासीनं - (अग्निके) समीप ही बैठे
मीलित अक्षं - नेत्र बन्द किये
मूर्तिमन्तं - मूर्तिमान
अनलं इव - अग्निके समान
दुराधर्षं - जिन्हें पराजित करना बहुत कठिन है (उन)
ददृशुः - (मार्कण्डेय को) देखा ॥ २३ ॥

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ।
मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥

न नृतुः तस्य पुरतः स्त्रियः अथ गायका जगुः मृदंग वीणा पावैः वाद्यं चक्रुः मनोरम् ॥ २४ ॥

अथ तस्य - फिर उनके
पुरतः - सामने
स्त्रियः - स्त्रियां (अप्सरायें)
ननृतुः - नाचने लगीं,
गायका जगुः - गायक (गन्धर्व) गाने लगे,
मृदंग वीणा - मृदंग, वीणा,
पणवैः - नगाड़ोंसे
मनोरमं वाद्यं - मनोहर वाद्य
चक्रुः - बजाने लगे ॥ २४ ॥

सन्दधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ।
मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥

संदधे अस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा मधुः मनः रजः तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥

तदा कामः	- उस समय कामदेवने लोभरूपी	**मधुः रजः तोक**	- वसन्त, रजोगुण,
स्वधनुषि	- अपने धनुषपर	**इन्द्रभृत्या**	- इन्द्रके सेवकोंने
पञ्चमुखं	- पांच मुखवाला१	**मनः**	- (अनके) मनको
अस्त्रं संदधे	- बाण चढ़ाया,	**व्यकम्पयन्**	विचलित करनेका प्रयत्न किया ॥ २५ ॥

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् ।
भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्त्रंसितस्त्रजः ॥ २६ ॥

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तन गौरवात् भृशं उद्विग्न मध्यायाः केश विस्त्रंसित स्त्रजः ॥ २६ ॥

कन्दुकैः	- गेंदसे	**मध्यायाः**	- कटि
क्रीडन्त्याः	- खेलती हुई	**भृशं उद्विग्न**	- बार-बार लचकती थी और
पुञ्जिकस्थल्याः	- पुञ्जिकस्थली अप्सराके	**केश स्त्रजः**	- बालोंमें लगी मालायें
स्तन गौरवात्	- स्तनोंके भारसे	**विस्त्रंसितः**	- गिरती जाती थीं ॥२६॥

इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम् ।
वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥

इतः ततः भ्रमत् दृष्टेः चलन्त्या अनुकन्दुकं वायुः जहार तत् वासः सूक्ष्मं त्रुटित मेखलम् ॥ २७ ॥

अनु कन्दुकं	- गेंदके पीछे	त्रुटित मेखलं	- (तभी) करधनी टूट जानेसे
चलन्त्या	- चलती हुईकी	वायुः तत्	- वायुने उसकी
इतः ततः	- इधर-उधर	सूक्ष्मं वासः	- झीनी साड़ी
दृष्टेः भ्रमत्	- दृष्टि घूम रही थी,	जहार	- खींच ली ॥ २७ ॥

१. शोषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादन ये कामवणके मुख हैं ।

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ।
सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः सर्वं तत्र अभवन् मोघं अनीशस्य यथा उद्यमः ॥ २८ ॥

तदा स्वजितं - तब अपने द्वारा जीत लिया गया
मत्वा स्मरः - मानकर कामदेवने
बाणं विससर्ज - बाण छोड़ (किन्तु)
तत्र सर्वं - वहां सब (प्रयत्न)
यथा अनीशस्य - जैसे असमर्थके
उद्यमः - उद्योग (होते हैं)
मोघं अभवन् - व्यर्थ होगये ॥ २८ ॥

त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने ।
दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥

त इत्थं अप कुर्वन्तः मुनेः तत् तेजसा मुने दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्य अहिं इव अर्भकाः ॥ २९ ॥

मुने - मुनि शौनकजी !
इत्थं त - इस प्रकार वे
अपकुर्वन्तः - बुराई करनेकी चेष्टा करते हुए
तत् मुनेः - उन (मार्कण्डेय) मुनिके
तेजसा दह्यमाना - तेजसे जलते हुए
अहिं प्रबोध्य - (सोते) सर्पको जगाकर
अर्भकाः इव - बालकोंके समान
निववृतुः - लौट गये ॥ २९ ॥

इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन् धर्षितोऽपि महामुनिः ।
यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥

इति इन्द्र अनुचरैः ब्रह्मन् धर्षितः अपि महामुनिः यत् न अगात् अहमः भावं न तत् चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
इति इन्द्र- - इस प्रकार इन्द्रके
अनुचरैः सेवकों द्वारा
धर्षितः अपि - पराजित करनेका
प्रयत्न करनेपर भी
महामुनिः - महामुनि (मार्कण्डेय)को
अहमः भावं - अहंकारका भाव
यत् न अगात् - जो नहीं आया
हि तत् - क्योंकि वह
महत्सु - महापुरुषोंके लिए
चित्रं न - आश्चर्यकी बात नहीं है
॥ ३० ॥

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान् स्वराट् ।
श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात् परम् ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान् स्वराट् श्रुत्वा अनुभावं ब्रह्मर्षेः विस्मयं सम अगात् परम् ॥ ३१ ॥

भगवान् - ऐश्वर्यशाली
स्वराट् - देवराज (इन्द्र) ने
सगणं कामं - गणोंके साथ कामदेवको
निस्तेजसं - तेजहीन
दृष्ट्वा - देखकर
ब्रह्मर्षेः - ब्रह्मर्षि (मार्कण्डेय) का
अनुभावं - प्रभाव
श्रुत्वा - सुनकर
परम विस्मयं - अत्यन्त आश्चर्यको
सम अगात् - प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥

तस्य एवं युञ्जतः चित्तं तपः स्वाध्याय संयमैः अनुग्रहाय आविः आसीत् नर नारायणः हरिः ॥ ३२ ॥

तपः स्वाध्याय - तपस्या, वेदाध्ययन,
संयमैः - संयमके द्वारा
एवं चित्तं - इस प्रकार चित्तको
(भगवानमें)
युञ्जतः - लगाते हुए
तस्य अनुग्रहाय - उन पर कृपा
करनेके लिए
नर नारायणः - नर-नारायण रूपी
हरिः आविः - श्रीहरि प्रकट हुए
आसीत् ॥३२॥

तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ

चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।

पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्

कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

तौ शुक्ल कृष्णौ नव कञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरव वल्कल अम्बरौ पवित्र पाणी उपवीतकं त्रिवृत् कमण्डलुं दण्डं ऋजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

तौ शुल्क-	- वे दोनों गौर-श्याम	**वल्कल अम्बरौ**	- वल्कल वस्त्रधारी
कृष्णौ	वर्ण,	**पवित्र पाणी**	- हाथोंमें कुश लिये,
नव कञ्ज-	- नये खिले कमलके	**त्रिवृत् उपवीतकं**	- तीन-तीन सूतके
लोचनौ	समान नेत्रों वाले,		यज्ञोपवीत पहिने
चतुर्भुजौ	- चतुर्भुज,	**कमण्डलुं**	- कमण्डलु,
रौरव	- रुरु (चित्तल)	**च ऋजुं**	- तथा सीधे
	मृगका चर्म तथा	**वैणवं दण्डं**	- बांसका दण्ड
			(लिये थे) ॥ ३३ ॥

पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं

वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ।

तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा

प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥

पद्माक्ष मालां उत जन्तु मार्जनं वेदं च साक्षात् तप एव रूपिणौ तप त् तडित् वर्ण पिशंग रोचिषा प्रांशू दधानौ विबुध ऋषभ अर्चितौ ॥ ३४ ॥

विबुध ऋषभ	- (ब्रह्मादि) देवश्रेष्ठोंके भी	**तपत् तडित्**	- चमकती बिजलीके
अर्चितौ	- पूज्य	**वर्ण**	रंगकी
प्राशूं	- उच्चकाम	**पिशंग रोचिषा**	- पीली कान्ति
पद्माक्षमालां	- कमल गट्टेकी माला,	**दधानौ**	- धारण किये
उत जन्तु-	- तथा जीवोंको हटानेकी	**साक्षात्**	- साक्षात्
मार्जनं	(वस्त्रकी) कूंची,	**रूपिणौ-**	- मूर्तिमान तप ही थे
च वेदं	- तथा वेदके लिए,	**तप एव**	॥ ३४ ॥

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ।
दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥

ते वै भगवतो रूपे नर नारायणाः ऋषी दृष्ट्वा उत्थाय आदरेण उच्चैः ननाम अंगेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥

वै ते	- निश्चय वे	**दृष्ट्वा**	- देखकर
भगवतो रूपे	- भगवानके स्वरूप	**आदरेण उत्थाय**	- आदरपूर्वक उठकर
ऋषी नर-	- ऋषि नर-नारायणको	**उच्चैः अंगेन**	- उत्तामांग (सिर) से
नारायणाः		**दण्डवत् ननाम**	- दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ३५ ॥

स तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ।
हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥

स तत् संदर्शन् आनन्द निर्वृत आत्म इन्द्रिय आशयः हृष्ट रोमा अश्रुपूर्ण अक्षः न सेहे तौ उदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥

तत् संदर्शन्	- उनके दर्शनके	**हृष्ट रोमा**	- रोमाञ्च होगया
आनन्द	- आनन्दसे	**अश्रुपूर्ण अक्षः**	- नेत्रोंमें अश्रु भर जानेसे
आत्म इन्द्रिय	- अपनी इन्द्रियों तथा	**स तौ**	- वे (मार्कण्डेय) उन दोनों (नर-नारायण) का
आशयः	- अन्तःकरणके	**उदीक्षितुं**	- दर्शन करना
निर्वृत	- शान्त होजानेसे	**से हे न**	- सह नहीं सके ॥३६॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ।
नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यात् आश्लिषन् इव नमो नम इति ईशानौ बभाषे गद्गद् अक्षरः ॥ ३७ ॥

उत्थाय	- उठकर	**गद्गद् अक्षरः**	- गद्गद् वाणीसे (केवल) ये अक्षर
प्राञ्जलिः	- हाथ जोड़कर	**ईशानौ**	- उन सर्वेशोंसे
प्रह्व	- झुककर	**नमो नमः**	- 'नमस्कार; नमस्कार'
औत्सुक्यात्	- उत्सुकतावश	**इति बभाषे**	- इतना ही बोले ॥३७॥
आश्लिषन्	- जैसे आलिंगन कर लेंगे		

तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ।
अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥

तयोः आसनं आदाय पादयोः अवनिज्य च अर्हणेन अनुलेपेन धूपमाल्यैः अपूजयत् ॥ ३८ ॥

तयोः	- उन दोनोंको	**अर्हणेन**	- पूजा-सामग्री
आसनं आदाय	- आसन देकर	**अनुलेपेन**	- चन्दन लगाना,
च पादयोः	- तथा चरणोंको	**धूप माल्यैः**	- धूप, मालासे
अवनिज्य	- धोकर	**अपूजयत्**	- पूजाकी ॥ ३८ ॥

सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ।
पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

सुखं आसनं आसीनौ प्रसाद अभिमुखं मुनी पुनः आनम्य पादाभ्यां गरिष्ठाः इदं अब्रवीत् ॥ ३९ ॥

आसनं	- आसनपर	**पादाभ्यां**	- चरणोंमें
सुखं आसीनौ	- सुखपूर्वक बैठे,	**पुनः आनम्य**	- फिर प्रणाम करके
प्रसाद अभिमुखं	- कृपापूर्वक अपनी ओर देखते	**मुनी**	- मुनि (मार्कण्डेय) ने
गरिष्ठाः	- उन महत्तमोंके	**इदं अब्रवीत्**	- यह कहा ॥ ३९ ॥

मार्कण्डेय उवाच-

किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः
संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ।
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च
स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

किं वर्णये तव विभो यत् उदीरितः असुः संस्पन्दते तं अनु वाङ् मन इन्द्रियाणि स्पन्दन्ति वै तनुभृतां अजशर्वयोः च स्वस्य अपि अथ अपि भजतां असि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

विभो	- प्रभो !	**असुः संस्पन्दते**	- प्राण-सञ्चार होरहा है
तव किं	- आपकी (महिमा) का क्या	**वै तं अनुवाङ्**	- निश्चय उन (प्राणों) के पीछे ही
वर्णये	- वर्णन करूँ,	**मन इन्द्रियाणि**	- मन एवं इन्द्रियां
यत् उदीरितः	- जिनकी प्रेरणासे ही	**स्पन्दन्ति**	- सचेष्ट होती हैं,
तनुभृतां	- समस्त देहधारियोंमें,	**अथ अपि**	- फिर भी
अज शर्वयोः	- ब्रमा तथा शंकरजीमें	**भजतां**	- भजन करने वालोंके
च स्वस्य अपि	- तथा मुझमें भी	**भाव बन्धुः**	- (आप) भावके बन्धनमें
		असि	- हैं ॥ ४० ॥

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः
क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ।
नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं
सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

मूर्ती इमे भगवतः भगवन् त्रिलोक्याः क्षेमाय ताप विरमाय च मृत्यु जित्यै नाना विभर्षि अवितुं अन्यतनूः यथा इदं सृष्ट्वा पुनः ग्रससि सर्वं इव ऊर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

भगवन्	- भगवन् !	ताप विरमाय	- (प्राणियोंके) त्रितापनाश
त्रिलोक्याः	- त्रिभुवनके	च मृत्यु-	- तथा मृत्युपर विजयके
क्षेमाय	- कल्याणके लिए	जित्यै	लिए (धारण किया) है,
यथा अवितुं	- एवं जैसे रक्षाकेलिए	ऊर्णनाभिः इव	- मकड़ीके समान
नाना अन्यतनूः	- अनेक दूसरे (अवतार) शरीर	इदं सृष्ट्वा	- (आप) इस जगतकी सृष्टि करके
विभर्षि	- धारण करते हैं	पुनः सर्वं	- फिर सबको
इमे भगवतः-मूर्ती	- यह भगवन् आपकी मूर्ति	ग्रससि	- निगल लेते हैं ।।४१।।

तस्याविताः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं
यत्स्थं न कर्मगुणकालरुजः स्पृशन्ति ।
यद् वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं
ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ।। ४२ ।।

तस्य अवितुः स्थिर चर ईशितुः अङ्घ्रिमूलं यत् स्थं न कर्म गुण काल रुजः स्पृशयन्ति यत् वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्ति अभीक्ष्णं ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयः तत् आप्त्यै ।। ४२ ।।

तस्य स्थिर चर	- उन स्थावर-जंगम सबके	वेद हृदया	- वेदोंके मर्मज्ञ
अवितुः ईशितुः	- रक्षक एवं शासक	मुनयः	- मुनिगण
अङ्घ्रि मूलं	- चरणोंमें (प्रणाम)	वै यत्	- निश्चय जिनकी
यत् स्थं	- जिनमें स्थित होनेपर	अभीक्ष्णं	- निरन्तर
कर्मगुण	- कर्म, गुण,	स्तुवन्ति	- स्तुति,
काल रुजः	- और समय जनित रोग (कष्ट)	निनमन्ति	- नमस्कार
		यजन्ति	- आराधना और
न स्पृशन्ति	- नहीं छूते,	ध्यायन्ति	- ध्यान करते हैं ।।४२।।
तत् आप्त्यै	- उनकी प्राप्तिके लिये		

नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः
क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः ।
ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः
कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥

न अन्यं तव अङ्घ्रि उपनयात् अपवर्ग मूर्तेः क्षेमं जनस्य परितः भिय ईश विद्मः ब्रह्मा विभेति अलं अतः द्विपरार्ध धिष्ण्यः कालस्य ते किं उत तत् कृत् भौतिकानाम् ॥ ४३ ॥

ईश	- स्वामी !	विभेति	- डरते हैं,
जनस्य परितः	- लोगोंके चारों ओर	तत् कृत्	- उनके बनाये
भिय	- भय है,	भौतिकानां	- पांच भौतिक शरीर
द्विपरार्ध	- दो परार्धकी		वालोंका
धिष्ण्यः	- आयुवाले	उत किं	- फिर क्या चर्चा
ब्रह्मा	- ब्रह्मा	अपवर्ग मूर्तेः	- मोक्षस्वरूप
ते कालस्य	- आप कालस्वरूपसे	तव अङ्घ्रि	- आपके चरणोंकी
अतः अलं	- अतः बहुत	उपनयात्	- शरणमें आनेको
		अन्यं क्षेमं	- अतिरिक्त कल्याण
		न विद्मः	- नहीं जानता ॥ ४३ ॥

तद् वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं
हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ।
देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं
विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥

तत् वै भजामि ऋतधियः तव पाद मूलं हित्वा इदं आत्मच्छदि च आत्मगुरोः परस्य देहादि अपार्थं असत् अन्त्यं अभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वं मनीषित अर्थम् ॥ ४४ ॥

आत्मगुरोः	- जीवोंके परमगुरु,	**हित्वा**	- त्यागकर
ऋतधियः	- सत्यज्ञान स्वरूप,	**तत्**	- इसलिए
परस्य	- परमपुरुष !	**वै तत्-**	- निश्चय आपके
आत्मच्छदि	- आत्मस्वरूपको ढकने वाले	**पादमूलं**	चरणोंका
		भजामि	- भजन करता हूं,
इदं देह आदि	- इस शरीर आदि	**ते विन्देत**	- वे (चरण) प्राप्त हो जाते हैं
अपार्थं	- निष्फल,		
असत्	- अतथ्य,	**तर्हि सर्व**	- तब सभी
अन्त्यं	- नाशवान	**मनीषित**	- बुद्धिसे सुविचारित
अभिज्ञमात्रं	- प्रतीतिमात्र (पदार्थों) को	**अर्थं**	- पुरुषार्थ (सिद्ध हो जाते हैं) ॥ ४४ ॥

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ।
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

सत्त्वं रजः तम इति ईश तव आत्म बन्धो मायामयाः स्थिति लय उदय हेतवः अस्य लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै न अन्ये नृणां व्यसन मोह भियः च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

आत्मबन्धो	- जीवोंके परम बन्धु !	**तव**	- (ब्रह्मा, विष्णु, शिव,) रूप आपके ही हैं
ईश	- एवं शासक !		
यदपि	- यद्यपि	**नृणां प्रशान्त्यै**	- किन्तु मनुष्योंको शान्ति प्राप्तिके लिए
सत्त्वं रजः	- सत्त्व रज,		
तम इति	- तमोगुणकी इस प्रकार	**सत्त्वमयी**	- (आपकी) सत्त्वगुणमयी मूर्ति हैं
अस्य स्थिति	- इस (जगत) की स्थिति,		

लय उदय	- प्रलय, उत्पत्तिके	**अन्या न**	- दूसरी नहीं
हेतवः	- कारण	**याभ्यां**	- जिनसे
मायामयाः	- मायामय	**व्यसन मोह**	- दुःख, मोह
लीलाधृता	- लीलापूर्वक धारण किये	**च भियः**	- और भय होता है ॥ ४५ ॥

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां
शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ।
यत् सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं
लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥

तस्मात् तव इह भगवन् अथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति यत् सात्वताः पुरुषरूपं उशन्ति सत्त्वं लोकः यतः अभयं उत आत्मसुखं न च अन्यत् ॥ ४६ ॥

भगवन्	- भगवन् !	**सत्त्वं**	- विशुद्ध सत्त्वको ही
तस्मात्	- इसलिए	**पुरुष रूपं**	- परमपुरुषका स्वरूप
कुशला	- बुद्धिमान लोग	**उशन्ति**	- मानते हैं,
इह तव	- इस लोकमें आपकी	**यतः अभयं**	- जिससे भयहीन
अथ तावकानां	- तथा आपके भक्तोंकी	**लोकः**	- (वैकुण्ठ) लोक
स्व दयितां	- अपनी प्रिय	**उत आत्मसुखं**	- तथा आत्मानन्दपूर्ण है
शुक्लां तनुं	- शुद्ध (नर-नारायण) मूर्तिकी	**अन्यत् न**	- (वे) दूसरे (रजोगुण-तमोगुण) को (आपकी मूर्ति) नहीं मानते ॥ ४६ ॥
भजन्ति	- उपासना करते हैं		
यत् सात्त्वताः	- क्योंकि पाञ्चरात्रके अनुयायी		

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने
विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ।

नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय
हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥

तस्मै नमः भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्व गुरवे परदेवतायै नारायणाय ऋषये च नर उत्तमाय हंसाय संयत गिरे निगम ईश्वराय ॥ ४७ ॥

तस्मै भगवते	- उन भगवान	**संयत गिरे**	- वाणीके नियन्ता
भूम्ने पुरुषाय	- सर्व व्यापक परमपुरुष,	**निगम ईश्वराय**	- वेदोंके परम प्रति पाद्य
विश्वाय	- विश्वरूप,	**नारायणाय-**	- ऋषि नारायण
विश्वगुरवे	- विश्वगुरु,	**ऋषये**	
परदेवतायै	- परमाराध्य	**च नर उत्तमाय**	- नरोत्तम नर को
हंसाय	- शुद्ध स्वरूप	**नमः**	- नमस्कार ॥ ४७ ॥

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः
सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ।
तन्मायया ऽऽवृतमतिः स उ एव साक्षा-
दाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥

यं वै न वेद वितथ अक्ष पथैः भ्रमत् धीः सन्तं स्व खेषु असुषु हृदि अपि दृक् पथेषु तत् मायया आवृत मतिः स उ एव साक्षात् आद्यः तव अखिल गुरोः उपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥

अखिल गुरोः	- सबके ही परम गुरु !	**वितथ**	- व्यर्थ
तत् मायया	- जिसकी मायासे	**अक्ष पथैः**	- इन्द्रियोंके द्वारा
आवृत मतिः	- बुद्धि ढक जानेसे	**भ्रमत् धीः**	- चंचल बुद्धि (लोग)
स्व खेषु	- अपनी इन्द्रियोंमें,	**वै यं न वेद**	- निश्चय जिन्हें नहीं जानते
असुषु	- प्राणोंमें,	**वेदं उपसाद्य**	- किन्तु वेदका आश्रय लेकर
हृदि अपि	- हृदयमें भी एवं		

दृक् पथेषु	- नेत्रोंके सामने भी	**आद्यः तव**	- आदि पुरुष आपका
सन्तं	- विद्यमान रहते	**स उ एव**	- निश्चय वही
		साक्षात्	- साक्षात्कार होजाता है ॥ ४८ ॥

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं
मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ।
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं
वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

यत् दर्शनं निगम आत्मरहः प्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयः अज अपरा यतन्तः तं सर्ववाद विषय अप्रतिरूप शीलं वन्दे महापुरुषं आत्म निगूढ बोधम् ॥ ४९ ॥

यत् दर्शनं	- जिनका दर्शन	**तं सर्ववाद**	- उन सब मतोंके
निगम आत्मरहः	- वेदोंका अपना रहस्य	**विषय**	- सिद्धान्तोंके ही
प्रकाशं	- प्रकाशित कर देनेवाला है	**अप्रतिरूप**	- अनुकूल
		शीलं	- स्वभाव वाले
यत्र	- जिन (वेदों) के विषयमें	**आत्म निगूढ**	- अपनेमें अत्यन्तगूढ़
अज अपरा	- ब्रह्मादि दूसरे	**बोधं**	- ज्ञानस्वरूप
कवयः	- बुद्धिमान	**तं महापुरुषं**	- उन पुरुषोत्तमकी
यतन्तः	- प्रयत्न करके भी	**वन्दे**	- मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४९ ॥
मुह्यन्ति	- मोह (भ्रम) में पड़ जाते हैं		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

सूत उवाच-

संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ।
नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

संस्तुतः भगवान् इत्थं मार्कण्डेयेन धीमता नारायणः नरसखः प्रीत आह भृगुउद्वहम् ॥ १ ॥

धीमता	- बुद्धिमान	**नारायणः**	- नारायणने
मार्कण्डेयेन	- मार्कण्डेय द्वारा	**प्रीतः**	- प्रसन्न होकर
इत्थं संस्तुतः	- इस प्रकार स्तुति करनेपर	**भृगु उद्वहं**	- भृगुवंश भूषणसे
		आह	- कहा ॥ १ ॥
नरसखः	- नरके सखा		
भगवान्	- भगवान		

श्रीभगवानुवाच-

भो भो ब्रह्मर्षिवर्यासि सिद्ध आत्मसमाधिना ।
मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥

भो भो ब्रह्मर्षि वर्य असि सिद्ध आत्म समाधिना मयि भक्त्या अनपायिन्या तपः स्वाध्याय संयमैः ॥ २ ॥

भो भो	- हे हे	**मयि अनपायिन्या**	- मुझमें अनन्य
ब्रह्मर्षिवर्य	- ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ !	**भक्त्या**	- भक्तिसे
आत्म समाधिना	- चित्तकी एकाग्रता	**सिद्ध असि**	- सिद्ध होगये हो ॥ २ ॥
तपः स्वाध्याय	- तपस्या, वेदाध्यायन,		
संयमैः	- संयम एवं		

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया ।
वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३ ॥

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वत् बृहत्व्रत चर्यया वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरद ईशात् अभीप्सितम् ॥ ३ ॥

त्वत् - तुम्हारे
बृहत्व्रत - आजीवन ब्रह्मचर्य
चर्यया - पालनसे
ते वयं - तुमपर हम दोनों
परितुष्टाः स्म - परम सन्तुष्ट हैं
वरद् ईशात् - वरदान देनेमें समर्थ (हम) से
अभीप्सितं - अभीष्ट
वरं प्रतीच्छ - वरदान मांग लो
ते भद्रं - तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच-

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ।
वरेणैतावतालं नो यद् भवान् समदृश्यत ॥ ४ ॥

जितं ते देव देवेश प्रपन्न आर्तिहर अच्युत वरेण एतावत अलं नः यत् भवान् समदृश्यत ॥ ४ ॥

देव देवेश - देव देवेश्वर !
प्रपन्न आर्तिहर - शरणागतक्लेश-नाशक
अच्युत - अच्युत !
ते जितं - आपकी जय हो !
नः एतावत - हमारे लिए इतना ही
वरेण अलं - वरदान पर्याप्त है
यत् भवान् - जो आपने
समदृश्यत् - दर्शन दिया ॥ ४ ॥

गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ।
मनसा योगपक्वेन स भवान् मेऽक्षगोचरः ॥ ५ ॥

अन्य प्रतियों में यहाँ ऋषिरुवाच है

गृहीत्वा अज आदयः यस्य श्रीमत् पादाब्ज दर्शनं मनसा योग पक्वेन स भवान् मे अक्षि गोचरः ॥ ५ ॥

अज आदयः	- ब्रह्मा आदि	**पादाब्ज**	- चरण कमलोंका
योग पक्वेन	- योगसे शुद्ध हुए	**दर्शनं गृहीत्वा**	- दर्शन पाते हैं,
मनसा	- मनसे	**स भवान्**	- वह आप
यस्य श्रीमत्	- जिनके परमसुन्दर	**मे अक्षि गोचरः**	- मेरे नेत्रोंके सामने हैं ॥ ५ ॥

अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः संपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

अथ अपि अम्बुज पत्र अक्ष पुण्यश्लोक शिखामणे द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालः वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

अथ अपि	- फिर भी	**लोकः**	- इन लोकों रूप
अम्बुज पत्र अक्ष	- कमलदल लोचन !	**सत् भिदां**	- (एक) सत् वस्तु में ये भेद
पुण्य श्लोक	- पवित्र कीर्ति वालोंके	**वेद**	- जानते हैं
शिखामणे	- शिरोमणि !	**मायां द्रक्ष्ये**	- (वह आपकी) माया देखना चाहता हूँ ॥६॥
यया सपालः	- जिसके द्वारा लोकपालोंके साथ		

सूत उवाच-

इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान् मुने ।
तथेति स स्मयन् प्रागाद् बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥

इति ईडितः अर्चितः कामं ऋषिणा भगवान् मुने तथा इति स स्मयन् प्रागात् बदरि आश्रमं ईश्वरः ॥ ७ ॥

मुने - मुनिवर शौनकजी !
ऋषिणा - ऋषि (मार्कण्डेय) द्वारा
इति ईडितः - इस प्रकार स्तुत होकर
अर्चितः - तथा पूजित होकर
भगवान् - भगवानने
स्मयन् - मुस्कराते हुए
तथा इति - ऐसा ही हो (कहकर)
स ईश्वरः - वे समर्थ
बदरि आश्रमं - (अपने) बदरीनाथ आश्रम
प्रागात् - चले गये ॥ ७ ॥

तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ।
वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥

तं एव चिन्तयन् अर्थं ऋषिः स्व आश्रम एव सः वसन् अग्नि अर्क सोम अम्बु भू वायु वियत् आत्मसु ॥ ८ ॥

तं एव अर्थं - उसी प्रयोजनको
चिन्तयन् - सोचते हुए
सः ऋषिः - वे (मार्कण्डेय) ऋषि
स्व आश्रम एव - अपने आश्रममें ही
वसन् - रहते हुए
अग्नि अर्क - अग्नि, सूर्य,
सोम अम्बु - चन्द्र, जल,
भू वायु - पृथ्वी, वायु,
वियत्- - आकाश तथा हृदयमें
आत्मसु ॥ ८ ॥

ध्यायन् सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ।
क्वचित् पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसम्प्लुतः ॥ ९ ॥

ध्यायन् सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैः अपूजयत् क्वचित् पूजां विसस्मार प्रेमप्रसर सम्प्लुतः ॥ ९ ॥

च सर्वत्र - तथा सर्वत्र
हरिं ध्यायन् - श्रीहरि का ध्यान करते हुए
भावद्रव्यैः - भावनामय द्रव्योंसे (मानसिक)
अपूजयत् - पूजा करते थे,
क्वचित् - कभी
प्रेमप्रसर - प्रेम-प्रवाहमें
सम्प्लुतः - निमग्न होकर
पूजां विसस्मार - पूजा भूल भी जाते थे ॥ ९ ॥

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ।
उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन् वायुरभून्महान् ॥ १० ॥

तस्य एकदा भृगु श्रेष्ठ पुष्पभद्रा तटे मुनेः उपासीनस्थ सन्ध्यायां ब्रह्मन् वायुः अभूत् महान् ॥ १० ॥

भृगुश्रेष्ठ	- भृगुकुलमें श्रेष्ठ	**सन्ध्यायां**	- सन्धया समय
ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**उपासीनस्य**	- उपासना करते समय
एकदा	- एक बार	**महान्**	- बड़ी भारी
तस्य मुनेः	- उन मुनिवरके	**वायुः अभूत्**	- आंधी उठी ॥ १० ॥
पुष्पभद्रा तटे	- पुष्पभद्रा नदी किनारे		

तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं
बलाहका अन्वभवन् कराला: ।
अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः
स्वनन्त उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥

तं चण्डशब्दं सम उदीरयन्तं बलाहका अनु अभवन् कराला: अक्ष स्थविष्ठा मुमुचुः तडिद्भिः स्वनन्त उच्चैः अभिवर्ष धाराः ॥ ११ ॥

तं चण्डशब्दं	- उस प्रचण्ड शब्द	**तडिद्भिः**	- बिजलीके
सम उदीरयन्तं	- करती हुई (आंधी) के	**उच्चैः स्वनन्त**	- उच्च स्वरसे कड़कते हुए
अनुकराला:	- पीछे भयानक	**अक्षस्थविष्ठा**	- रथके धुरेके समान मोटी
बलाहका	- मेघ	**वर्षधाराः**	- वर्षाकी धारायें
अभवन्	- छा गये	**मुमुचुः**	- गिराने लगे ॥ ११ ॥

ततो व्यदृश्यन्त चतुःसमुद्राः
समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः ।

समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्र-
महाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

ततः व्यदृश्यन्त चतुः समुद्राः समन्ततः क्ष्मा तलं आग्रसन्तः समीरवेग ऊर्मिभिः उग्रनक्र महाभय आवर्त गभीर घोषाः ॥ १२ ॥

ततः चतुः समुद्राः - फिर चारों समुद्र
समीरवेग - वायुवेगसे
ऊर्मिभिः - उत्ताल तरंगोंसे
उग्रनक्र - उछलते मगरमच्छों एवं
महाभय - अत्यन्त भयानक
आवर्त - भँवरोंके
गभीर घोषाः - गम्भीर नादसे
समन्ततः - चारों ओरसे
क्ष्मा तलं - भूतलको
आग्रसन्तः - सम्पूर्ण निगलते हुए
व्यदृश्यन्त - दिखलायी पड़े ॥१२॥

अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः
शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ।
चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनि-
र्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥

अन्तः बहिः च अद्भिः अतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभिः उपतापितं जगत् चतुर्विधं वीक्ष्य सह आत्मना मुनिः जल आप्लुतां क्ष्मां विमनाः सम अत्रसत् ॥ १३ ॥

अद्भिः - जलके द्वारा
अन्तः च बहिः - भीतर और बाहर
अति खरैः - अत्यन्त तीक्ष्ण (आंधी) से
द्युभिः - स्वर्गके भी
शतह्रदाभिः - जल-प्रलयमें (डूब जानेपर)
जगत् - जगत (के प्राणियों) को
सह आत्मना - अपने साथ
उपतापितं - संतप्त किये जाते तथा
क्ष्मां जल-आप्लुतां - पृथ्वीको जलमें डूबी
वीक्ष्य मुनिः - देखकर मुनि
विमनाः - उदास होगये तथा

चतुर्विधं	- चारों प्रकार (स्वेदज, अण्डज, पिण्डज, जरायुज) के	**समत्रसत्**	- अत्यन्त भयभीत होगये ॥ १३ ॥

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः
प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ।
आपूर्यमाणो वर्षद्भिरम्बुदैः
क्ष्मामप्यधाद् द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥

तस्य एवं उद्वीक्षत ऊर्मि भीषणः प्रभञ्जन आघूर्णित वारि महार्णवः आपूर्यमाणः वर्षद्भिः अम्बुदैः क्ष्मां अप्यधात् द्वीपवर्ष अद्रिभिः समम् ॥१४॥

एवं तस्य	- इस प्रकार उनके	**वर्षद्भिः**	- (निरन्तर) वर्षासे
उद्वीक्षत	- देखते-देखते	**आपूर्यमाणः**	- चारों ओरसे भरा जाता
ऊर्मि भीषणः	- भयानक लहरों वाला	**महार्णवः**	- महासमुद्रने
प्रभञ्जन	- अन्धड़से	**द्वीपवर्ष**	- द्वीप, वर्ष,
आघूर्णित वारि	- घूमते जलवाला	**अद्रिभिः समं**	- पर्वतोंके साथ
अम्बुदैः	- बादलोंकी	**क्ष्मां अप्यधात्**	- पृथ्वीको डुबा दिया ॥ १४ ॥

सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं
त्रैलोक्यमासीत् सह दिग्भिराप्लुतम् ।
स एक एवोर्वरितो महामुनि-
र्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥ १५ ॥

सक्ष्मा अन्तरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यं आसीत् सह दिक्भिः आप्लुतं स एक एव उर्वरितः महामुनिः बभ्राम विक्षिप्य जटा जड अन्धवत् ॥ १५ ॥

सक्ष्मा - पृथ्वीके साथ
अन्तरिक्षं - अन्तरिक्ष,
स दिवं - स्वर्गके साथ
स भागणं - नक्षत्रोंके साथ
सह दिक्भिः - दिशाओंके साथ
त्रैलोक्यं - तीनो लोक
आप्लुतं आसीत् - डूब गये थे,
स एक एव - वे अकेले ही
उर्वरितः - बचे हुए
महामुनिः - महामुनि
जटा विक्षिप्य - जटा फैलाये
जड अन्धवत् - मूर्ख अन्धेके समान
बभ्राम - भटकने लगे ॥ १५ ॥

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलै-
रुपद्रुतो वीचिनभस्वता हतः ।
तमस्यपारे पतितो भ्रमन् दिशो
न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥

क्षुत् तट् परीतः मकरैः तिमिङ्गलैः उपद्रुतः वीचि नभस्वता हतः तमसि अपारे पतितः भ्रमन् दिशः न वेद खं गां च परिश्रम ईषितः ॥ १६ ॥

क्षुत् तट् - भूख-प्याससे
परीतः - घिरे (व्याकुल)
मकरैः - मगरमच्छों एवं
तिमिङ्गलैः - तिमिंगलोंके
उपद्रुतः - उपद्रवोंसे ग्रस्त,
वीचि नभस्वता - लहरों तथा वायुके
हतः - थपेड़े खाते
अपारे तमसि - अपार अन्धकारमें
पतितः - गिरकर
परिश्रम ईषितः - थकावटसे मूर्छित प्राय
भ्रमन् - भटकते हुए
दिशः खं - दिशायें, आकाश,
च गां - तथा पृथ्वीको
न वेद - नहीं जानते थे ॥१६॥

क्वचिद् गतो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ।
यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७ ॥

क्वचित् गतः महा आवर्ते तरलैः ताडितः क्वचित् यादोभिः भक्ष्यते क्वापि स्वयं अन्यः अन्य घातिभिः ॥ १७ ॥

क्वचित्	- कभी	**क्वापि**	- कभी
महा आवर्ते	- बड़े भँवरमें	**स्वयं अन्यः अन्य**	- स्वयं एक दूसरेको
गतः	- पड़ जाते,	**घातिभिः**	- मारने वाले
क्वचित्	- कभी	**यादोभिः**	- जलजीवों द्वारा
तरलैः ताडितः	- लहरोंके थपेड़े लगते,	**भक्ष्यते**	- काटे खाये जाते ॥ १७ ॥

क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद् दुःखं सुखं भयम् ।
क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥

क्वचित् शोकं क्वचित् मोहं क्वचित् दुःखं सुखं भयं क्वचित् मृत्युं अवाप्नोति व्याधि आदिभिः उत आर्दितः ॥ १८ ॥

क्वचित् शोकं	- कभी शोक,	**क्विचत्**	- कभी
क्वचित् मोहं	- कभी मोह,	**व्याधि आदिभिः**	- रोग आदिसे
क्वचित् दुःखं	- कभी दुःख,	**आर्दितः उत**	- पीड़ित होकर अथवा
सुखं भयं	- सुख या भय,	**मृत्युं अवाप्नोति**	- मृत्यु प्राप्त करते थे ॥ १८ ॥

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ।
व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन् विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥

अयुत अयुत वर्षाणां सहस्राणि शतानि च व्यतीयुः भ्रमतः तस्मिन् विष्णु माया आवृत आत्मनः ॥ १९ ॥

विष्णु माया	- भगवान विष्णुकी मायासे	**शतानि**	- सैकड़ों,
आवृत आत्मनः	- आच्छादित चित्त	**सहस्राणि**	- सहस्रों
तस्मिन् भ्रमतः	- उस (प्रलयसिन्धु) में भागते	**च अयुत अयुत**	- एवं लाखों करोड़ों
		वर्षाणां व्यतीयुः	- वर्ष बीत गये ॥१९॥

स कदाचिद् भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः ।
न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥

स कदाचित् भ्रमन् तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः न्यग्रोध पोतं ददृशो फल पल्लव शोभितम् ॥ २० ॥

तस्मिन् भ्रमन् - उस (जल) में भटकते हुए
कदाचित् - किसी समय
स द्विजः - उन विप्रवरने
पृथिव्याः ककुदि - पृथ्वीके टीलेपर
फल पल्लव - फल तथा पत्तोंसे
शोभितं - सुशोभित
न्यग्रोध पोतं - बटका छोटा वृक्ष
ददृशे - देखा ॥ २० ॥

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ।
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥

प्राक् उत्तरस्यां शाखायां तस्य अपि ददृशे शिशुं शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥

तस्य अपि - उसके भी
प्राक् उत्तरस्यां - पूर्वोत्तर (ईशान कोण) की
शाखायां - डालीपर
पर्णपुटके - पत्तोंके दोनेमें
शयानं - सोते हुए
प्रभया तमः - अपनी कान्तिसे अन्धकारके
ग्रसन्तं - नष्ट करते
शिशुं ददृशे - एक शिशुको देखा ॥ २१ ॥

महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम् ।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥

महामरकत श्यामं श्रीमत् वदनपंकजं कम्बु ग्रीवं महा उरस्कं सुना सं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥

महामरकत - महामरकत मणिके समान
श्यामं - श्यामवर्ण,
श्रीमत् - अत्यन्त शोभाशाली
वदन पंकजं - कमलमुख,
कम्बु ग्रीवं - शंखके समान गला,
महा उरस्कं - विशाल वक्षस्थल,
सुनासं - सुन्दर नासिका एवं
सुन्दर भ्रुवं - सुन्दर भौंहों वाला
॥ २२ ॥

श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् ।
विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥

श्वास एजत् अलक आभातं कम्बु श्री कर्ण दाडिमं विद्रुम अधर भास ईषत् शोणायित सुधा स्मितम् ॥ २३ ॥

श्वास एजत् - श्वास से हिलती
अलक आभातं - अलकोंसे सुशोभित्
कम्बु श्री कर्ण - शंखके समान (घुमावदार) कर्णोंकी शोभा
दाडिमं - अनारके (लाल) पुष्पों युक्त,
विद्रुम - मूंगेकेसमान
अधर भास - ओष्ठोंकी कान्तिसे
सुधास्मितं - अमृतमयी मुस्कान
ईषत् - किञ्चित्
शोणायित - अरुणिम होरही थी
॥ २३ ॥

पद्मगर्भारुणापांग हृद्यहासावलोकनम् ।
श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥

पद्मगर्भ अरुण अपांग हृद्य हास अवलोकनं श्वास एजत् वलि संविग्न निम्न नाभि दल उदरम् ॥ २४ ॥

पद्मगर्भ - कमल पुष्पके भीतरी भागके समान
अरुण अपांग - रतनारे नेत्र कोण,
हृद्य - हृदयहारी
हास अवलोकनं - हँसी युक्त दृष्टि,
निम्ननाभि - गहरी नाभियुक्त
बलि संविग्न - त्रिबली अंकित
दल उदरं - पत्तेके समान पतला पेट
श्वांस एजत् - श्वांससे हिलता था
॥ २४ ॥

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

चारु अंगुलिभ्यां पाणिभ्यां उन्नीय चरणाम्बुजं मुखे निधाय विप्रेन्द्रः धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

चारु अंगुलिभ्यां	- सुन्दर अंगुलियों वाले	**मुखे निधाय**	- मुखसे लगाकर
पाणिभ्यां	- दोनों हाथोंसे	**धयन्तं वीक्ष्य**	- चूसते देखकर
चरणाम्बुजं	- चरण कमलको	**विप्रेन्द्रः**	- ब्राह्मण श्रेष्ठ (मार्कण्डेय)
उन्नीय	- ऊपर लाकर	**विस्मितः**	- चकित रह गये ॥२५॥

तद्दर्शनाद् वीतपरिश्रमो मुदा
प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनाम्बुजः ।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः
प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

तत् दर्शनात् वीत परिश्रमः मुदा प्रोत्फुल्ल हृत् पद्म विलोचन अम्बुजः प्रहृष्ट रोमा अद्भुतभाव शंकितः प्रष्टुं पुरः तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

तत् दर्शनात्	- उनके दर्शनसे	**प्रहृष्ट रोमा**	- रोमाञ्च होगया,
वीत परिश्रमः	- थकावट मिट गयी	**अद्भुत भाव**	- इस अद्भुत भावसे
मुदा हृत् पद्म	- आनन्दसे हृदय कमल एवं	**शंकितः**	- आशंकित होकर
		तं बालकं-	- उस बालकसे
विलोचन अम्बुजः	- नयन सरोज	**प्रष्टुं**	पूछनेके लिए
प्रोत्फुल्ल	- पूरे खिल गये,	**पुरः प्रससार**	- सामने सरक आये ॥ २६ ॥

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः
सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत् ।

तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृतस्नशो
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥

तावत् शिशोः वै श्वसितेन भार्गवः सः अन्तः शरीरं मशकः यथा आविशत् तत्र अपि अदः न्यस्तं अचष्ट कृत्स्नशः यथा पुरा मुह्यत अतीव विस्मितः ॥ २७ ॥

तावत् भार्गवः	- इतनेमें तो मार्कण्डेयजी	**यथा पुरा**	- जैसा (प्रलयसे) पहिले था
वै शिशोः	- निश्चय शिशुकी	**कृत्स्नशः**	- सम्पूर्ण
श्वसितेन	- श्वाससे (खिंचकर)	**अदः न्यस्तं**	- संसार व्यवस्थित
मशकः यथा	- मच्छरके समान	**अचष्ट**	- देखकर
अन्तः शरीरं	- शरीरके भीतर	**अतीव विस्मितः**	- अत्यन्त चकित होकर
आविशत्	- घुस गये,	**मु ह्य त्**	- मोह (भ्रम) में पड़ गये
तत्र अपि सः	- वहां भी उन्होंने		॥ २७ ॥

खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्
द्वीपान् सवर्षान् ककुभः सुरासुरान् ।
वनानि देशान् सरितः पुराकरान्
खेटान् व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥

खं रोदसी भगणान् अद्रि सागरान् द्वीपान् स वर्षान् ककुभः सुर असुरान् वनानि देशान् सरितः पुर आकरान् खेटान् व्रजान् आश्रम वर्ण वृत्तयः ॥२८॥

खं रोदसी	- आकाश, अन्तरिक्ष,	**वनानि देशान्**	- वन, प्रदेश,
भगणान्	- नक्षत्र मण्डल,	**सरितः**	- नदियां,
अद्रि सागरान्	- पर्वत, समुद्र,	**पुर आकरान्**	- नगर, खदानें,
स वर्षान्	- वर्षोंके साथ	**खेटान् व्रजान्**	- गांव, गोपोंकी बस्तियां,
द्वीपान्	- द्वीपों,	**आश्रम वर्ण**	- वर्ण-आश्रम तथा
ककुभः	- दिशायें,	**वृत्तयः**	- उनकी आजीविका (देखी)
सुर असुरान्	- देवता, असुर,		॥ २८ ॥

महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ
कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ।
यत् किञ्चिदन्यद् व्यवहारकारणं
ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥

महान्ति भूतानि अथ भौतिकानि असौ कालं च नाना युग कल्प कल्पनं यत् किञ्चित् अन्यत् व्यवहार कारणं ददर्श विश्वं सत् इव अवभासितम् ॥ २९ ॥

महान्ति भूतानि	- पञ्च महाभूत,	**अन्यत्**	- दूसरा
अथ भौतिकानि	- तथा उनसे उत्पन्न पदार्थ,	**व्यवहार कारणं**	- व्यवहारका हेतु है
च नाना युग	- और अनेक युगों एवं	**सत् इव**	- सत्की भांति
कल्प कल्पनं	- कल्पोंकी कल्पना वाला	**अवभासितं**	- प्रतीत होता
कालं	- समय,	**विश्वं**	- (सम्पूर्ण) विश्व
यत् किञ्चित्	- जो कुछ भी	**असौ ददर्श**	- इन्होंने देखा ॥ २९ ॥

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं
निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ।
विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै
बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निज आश्रमं तत्र ऋषीन् अपश्यत् विश्वं विपश्यन् श्वसितात् शिशोः वै बहिः निरस्तः न्यपतत् लय अब्धौ ॥ ३० ॥

हिमालयं	- हिमालय पर्वतको	**विश्वं विपश्यन्**	- (इस प्रकार) विश्वको देखते हुए
च तां पुष्पवहां	- तथा उस पुष्पभद्रा		
नदीं	- नदीको,	**वै शिशोः**	- निश्चय उस शिशुके
निज आश्रमं	- अपने आश्रमको	**श्वसितात्**	- श्वांस छोड़नेसे
तत्र ऋषीन्	- वहाँ ऋषियोंको भी	**बहिः निरस्तः**	- बाहर निकाले जाकर
अपश्यत्	- देखा,	**लय अब्धौ**	- प्रलय समुद्रमें
		न्यपतत्	- गिर पड़े ॥ ३० ॥

तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं
वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ।
तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन
निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥

तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत् पर्णपुटे शयानं तो कं च तत् प्रेम सुधास्मितेन निरीक्षितः अपांग निरीक्षणे ॥ ३१ ॥

तस्मिन्	- उस (प्रलय सागर) में	**तो कं च**	- शिशुको एवं
पृथिव्याः ककुदि	- पृथ्वीके टीलेपर	**तत् प्रेम**	- उसकी प्रेमभरी
प्ररूढं वटं	- उगे हुए वट वृक्षको	**सुधास्मितेन**	- अमृतमयी मुस्कान सहित
च तत् पर्णपुटे	- तथा उसके पत्तेके दोनेमें	**अपांग-निरीक्षणे**	- तिरछी चितवनसे
शयानं	- सोते	**निरीक्षितः**	- देखे जारहे थे ॥ ३१ ॥

अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ।
अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि अभ्ययात् अति संक्लिष्टः परिष्वक्तुं अधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

अथ हृदि	- फिर	**अति संक्लिष्टः**	- बड़े कष्टसे
धिष्ठितं	- विराजमान	**अधोक्षजं**	- उन इन्द्रियातीतका
तं बालकं	- उस बालकको	**परिष्वक्तुं**	- आलिंगन करनेके लिए
नेत्राभ्यां वीक्ष्य	- नेत्रोंसे (सम्मुख) देखकर	**अभ्ययात्**	- आगे बढ़े ॥ ३२ ॥

तावत् स भगवान् साक्षाद् योगाधीशो गुहाशयः ।
अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥

तावत् स भगवान् साक्षात् योग अधीशः गुहाशयः अन्तः दध ऋषेः सद्यः यथा ईहा अनीश निर्मिता ॥ ३३ ॥

तावत्	- इतनेमें ही	**भगवान्**	- भगवान्
स साक्षात्	- वे साक्षात्	**यथा अनीश-निर्मिता**	- जैसे असमर्थकी चेष्टा
योग अधीशः	- योगोंके स्वामी		
गुहाशयः	- (सबकी) हृदयगुफा में रहने वाले	**ऋषेः**	- ऋषि (मार्कण्डेय)के सामनेसे
		सद्यः अन्तः-दध	- तत्काल अन्तर्ध्यान होगये ॥ ३३ ॥

तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसम्प्लवः ।
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत् स्थितः ॥ ३४ ॥

तं अन्वथ वटः ब्रह्मन् सलिलं लोक सम्प्लवः तिरोधायि क्षणात् अस्य स्व आश्रमे पूर्ववत् स्थितः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्म् न !	**अस्य क्षणात्**	- इनके लिए क्षणभरमें
वटः तं अन्वथ	- वट वृक्ष भी उनके पीछे चला गया	**तिरोधायि**	- अदृश्य होगया,
		पूर्ववत्	- (वे) पहिलेकी भांति
लोक सम्प्लवः	- लोकोंका प्रलय करने वाला	**स्व आश्रमे**	- अपने आश्रममें
		स्थितः	- बैठे थे ॥ ३४ ॥
सलिलं	- जल भी		

श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

सूत उवाच-

स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ।
वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

स एवं अनुभूय इदं नारायण विनिर्मितं वैभवं योगमायायाः तं एव शरणं ययौ ॥ १ ॥

स एवं	- वे (मार्कण्डेयजी) इस प्रकार	**इदं वैभवं**	- यह वैभव
नारायण	- नारायण द्वारा	**अनुभूय**	- अनुभव करके
विनिर्मितं	- रचित	**तं एव**	- उन्हींकी
योगमायायाः	- योगमायाका	**शरणं ययौ**	- शरणमें गये ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच-

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ।
यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥

प्रपन्नः अस्मि अङ्घ्रि मूलं ते प्रपन्न अभयदं हरे यत् मायया अपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानक आशया ॥ २ ॥

ज्ञानक आशया	- ज्ञानके समान (सत्य) प्रतीत	**प्रपन्न अभयदं**	- शरणागतको अभय देनेवाले
यत् मायया	- जिनकी मायासे	**हरे**	- श्रीहरि !
विबुधा अपि	- देवता भी	**ते अङ्घ्रि मूलं**	- आपके चरणोंकी
मुह्यन्ति	- मोहित होजाते हैं	**प्रपन्नः अस्मि**	- शरणमें हूं ॥ २ ॥

सूत उवाच-

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ।
रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

तं एवं निभृत आत्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् रुद्राण्या भगवान् रुद्रः ददर्श स्वगणैः वृतः ॥ ३ ॥

रुद्राण्या	- भवानीके साथ	**दिवि पर्यटन्**	- आकाश मार्गसे विचरण करते हुए
स्वगणैः वृतः	- अपने गणोंसे घिरे हुए	**तं एवं**	- उन (मार्कण्डेयजी) को इस प्रकार
भगवान् रुद्रः	- भगवान् शिवने	**निभृत आत्मानं**	- एकाग्रचित्त
वृषेण	- वृषभपर बैठकर	**ददर्श**	- देखा ॥ ३ ॥

अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ।
पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४ ॥

अथ उमा तं ऋषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत पश्य इमं भगवन् विप्रं निभृत आत्म इन्द्रिय आशयम् ॥ ४ ॥

तं ऋषिं वीक्ष्य	- उन ऋषिको देखकर	**आत्म इन्द्रिय**	- अपनी इन्द्रियों और
अथ उमा	- तब भगवती उमाने	**आशयं**	- चित्तको
गिरिशं	- शंकरजीसे	**निभृत**	- एकाग्र किये
सम भाषत	- सप्रेम कहा-	**इमं विप्रं**	- इन विप्रवरको
भगवन्	- 'भगवन् !	**पश्य**	- देखिये ॥ ४ ॥

निभृतोदग्रषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ।
कुर्वस्य तपसः साक्षात् संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

निभृत उद झष व्रातं वात अपाये यथा अर्णवं कुरु अस्य तपसः साक्षात् संसिद्धिं सिद्धिदः भवान् ॥ ५ ॥

वात अपाये	- अन्धड़ चले जानेपर	**साक्षात् संसिद्धिं**	- प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्धि
निभृत उदझष	- जल तथा मत्स्योंके शान्त होजानेपर	**कुरु**	- कर दीजिए (क्योंकि)
		भवान्	- आप
यथा अर्णवं	- जैसे समुद्रहो	**सिद्धिदः**	- सिद्धि दाता हैं ॥ ५ ॥
अस्य तपसः	- इनकी तपस्याकी		

श्रीभगवानुवाच-

नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषोऽव्यये ॥ ६ ॥

न एव इच्छति आशिषः क्वअपि ब्रह्मर्षिः मोक्षं अपि उत भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषो अव्यये ॥ ६ ॥

अव्यये पुरुषो	- अविनाशी परमपुरुषमें	**क्वअपि आशिषः**	- कोई भी आशीर्वाद
परां भक्तिं	- पराभक्ति	**उत मोक्षं अपि**	- तथा मोक्ष भी
लब्धवान्	- प्राप्त करलेनेसे	**न एव इच्छति**	- नहीं ही चाहते हैं ॥ ६ ॥
ब्रह्मर्षि :	- (ये) ब्रह्मर्षि		

अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ।
अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥

अथ अपि संवदिष्यामः भवानि एतेन साधुना अयं हि परमः लाभः नृणां साधु समागमः ॥ ७ ॥

भवानि	- भवानी !	**हि नृणां**	- क्योंकि मनुष्यके लिए
अथ अपि	- फिर भी	**साधु समागमः**	- सत्पुरुषसे मिलना
एतेन साधुना	- इन सत्पुरुषसे	**परमः लाभः**	- परम लाभ है ॥ ७ ॥
संवदिष्यामः	- बातचीत करेंगे,		

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान् स सतां गतिः ।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥

इति उक्त्वा तं उपेयाय भगवान् स सतां गतिः ईशानः सर्व विद्यानां ईश्वरः सर्व देहिनाम् ॥ ८ ॥

इति उक्त्वा	- ऐसा कहकर	**सर्व देहिनां**	- सम्पूर्ण शरीरधारियोंके
स सतां गतिः	- वे संतोंके परमाश्रय,	**ईश्वरः**	- परम प्रेरक
सर्व विद्यानां	- समस्त विद्याओंके	**भगवान्**	- भगवान शिव
ईशानः	- प्रवर्तक	**तं उपेयाय**	- उनके समीप आये ॥८॥

तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ।
न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥

तयोः आगमनं साक्षात् ईशयोः जगत् आत्मनोः न वेद रुद्धधी वृत्तिः आत्मानं विश्वं एव च ॥ ९ ॥

धीवृत्तिः	- बुद्धिकी वृत्तियोंके	**जगत् आत्मनोः**	- जगत्के आत्मा
रुद्ध	- रोक देनेसे	**ईशयोः**	- तथा स्वामी उमा महेश्वरका
आत्मानं	- अपने आपके		
च विश्वं एव	- तथा विश्वको भी (भूल जानेसे)	**आगमनं**	- आगमन
		न वेद	- नहीं जान सके ॥९॥
तयोः साक्षात्	- उन साक्षात्		

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया ।
आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥

अन्य प्रतियों में यहां भगवानुवाच है ।

भगवान् तत् अभिज्ञाय गिरीशः योगमायया आविशत् तत् गुहाआकाशं वायुः छिद्रं इव ईश्वरः ॥ १० ॥

तत् अभिज्ञाय	- यह स्थिति समझकर	**छिद्रं वायुः इव**	- शून्य स्थानमें वायुकी भांति
ईश्वरः	- सर्व-समर्थ	**तत् गुहा-आकाशं**	- उनके हृदयाकाशमें
भगवान् गिरीशः	- भगवान् शंकरने	**आविशत्**	- प्रवेश किया ॥ १० ॥
योगमायया	- योगशक्तिसे		

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ।
त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥

आत्मनि अपि शिवं प्राप्तं तडित् पिंङ्ग जटाधरं त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुं उद्यन्तं इव भास्करम् ॥ ११ ॥

आत्मनि अपि	- अन्तःकरणमें भी	**दशभुजं**	- दस भुजावाले
तडित् पिङ्ग	- विद्युतके समान पीली	**प्रांशुं**	- सुदीर्घ देह
जटाधरं	- जटायें धारण किये	**उद्यन्तं**	- उगते हुए
त्र्यक्षं	- त्रिनयन,	**भास्करं इव**	- सूर्यके समान
		शिवं प्राप्तं	- शंकरजीको प्रगट हुआ ॥ ११ ॥

व्याघ्रचर्माम्बरधरं शूलखट्वाङ्गचर्मभिः ।
अक्षमालाडमरुककपालासिधनुः सह ॥ १२ ॥

व्याघ्र चर्म अम्बर धरं शूल खट्वाङ्ग चर्मभिः अक्षमाला डमरु कपाल असि धनुः सह ॥ १२ ॥

व्याघ्र चर्म	- बाघके चर्मका	**अक्षमाला**	- रुद्राक्षकी माला
अम्बरधरं	- वस्त्र पहिने,	**डमरू कपाल**	- डमरू, खप्पर,
शूल खट्वाङ्ग	- शूल, चारपाईका पाया,	**असि धनुः सह**	- तलवार, धनुष साथ ॥ १२ ॥
चर्मभिः	- ढाल,		

बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ।
किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥

बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः किं इदं कुत एव इति समाधेः विरतः मुनिः ॥ १३ ॥

बिभ्राणं	- धारण किये	**किं इदं**	- 'यह क्या हुआ ?
सहसा हृदि	- अचानक हृदयमें	**कुत एव**	- कहांसे आये ?'
भातं विचक्ष्य	- प्रत्यक्ष हुए देखकर	**इति समाधेः**	- ऐसा सोचते समाधिसे
विस्मितः मुनिः	- चकित मुनि (सोचने लगे)	**विरतः**	- निवृत्त होगये ॥ १३ ॥

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ।
रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं स उमया आगतं रुद्रं त्रिलोक एक गुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥

नेत्रे उन्मील्य	- नेत्र खोलकर	**रुद्रं आगतं**	- भगवान शिवको आया
सगणं	- गणोंके साथ	**ददृशे**	- देखा,
स उमया	- भगवती उमाके साथ	**मुनिः शिरसा**	- मुनिने मस्तक झुकाकर
त्रिलोक-	- त्रिलोकीके एक	**ननाम**	- (उन्हें) प्रणाम किया
एक गुरुं	मात्र गुरु		॥ १४ ॥

तस्मै सपर्यां व्यदधात् सगणाय सहोमया ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यगन्धस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

तस्मै सपर्यां व्यदधात् सगणाय सह उमया स्वागत आसन पाद्य अर्घ्य गन्ध स्रक्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

स्वागत	- स्वागत,	**सगणाय**	- गणोंके साथ,
आसन	- आसन,	**सह उमया**	- भगवती उमाके साथ
पाद्य अर्घ्य	- पाद्य, अर्घ्य,	**तस्मै सपर्यां**	- उनकी पूजा
गन्ध स्रक्	- चन्दन, माला,	**व्यदधात्**	- सम्पन्नकी ॥ १५ ॥
धूप दीपकैः	- धूप, दीपकसे		

आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ।
करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥

आह च आत्म अनुभावेन पूर्ण कामस्य ते विभो करवाम किं ईशान येन इदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥

आह च	- बोले भी	**आत्म अनुभावेन**	- अपने प्रभावसे ही
विभो ईशान	- 'सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान,	**पूर्णकामस्य**	- पूर्णकाम
येन इदं जगत्	- जिनसे यह संसार	**ते किं करवाम**	- आपकी क्या सेवा
निर्वृतं	- सुख-शान्ति पाता है (उन)		करूँ ? ॥ १६ ॥

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १७ ॥

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च रजः जुषे अपि अघोराय नमः तुभ्यं तमः जुषे ॥ १७ ॥

सत्त्वाय शान्ताय	- सत्त्वगुणमय शान्त स्वरूप	**प्रमृडाय**	- सर्वप्रवर्तक रूपको,
शिवाय नमः	- सदाशिवको नमस्कार,	**तमः जुषे**	- तमोगुणसे युक्त
च रजः-	- तथा रजोगुणसे भी	**अघोराय अपि**	- अघोर स्वरूप भी
जुषे अपि	युक्त	**तुभ्यं नमः**	- आपको नमस्कार ॥ १७ ॥

सूत उवाच-

एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ।
परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥ १८ ॥

एवं स्तुतः स भगवान् आदिदेवः सतां गतिः परितुष्टः प्रसन्न आत्मा प्रहसन् तं अभाषत ॥ १८ ॥

एवं स्तुतः	- इस प्रकार स्तुति करनेपर	**परितुष्टः**	- परम सन्तुष्ट होकर
स आदिदेवः	- वे आदिदेव	**प्रसन्न आत्मा**	- प्रसन्न चित्त
सतां गतिः	- संतोंके परमाश्रय	**प्रहसन्**	- हँसते हुए
भगवान्	- भगवान	**तं अभाषत**	- उनसे बोले ॥ १८ ।

श्रीभगवानुवाच-

वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ।
अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद् विन्दतेऽमृतम् ॥ १९ ॥

वरं वृणीष्व नः कामं वरद ईशा वयं त्रयः अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यः यत् विन्दते अमृतम् ॥ १९ ॥

नः कामं	- हमसे इच्छानुसार	**येषां दर्शनं**	- जिनका दर्शन
वरं वृणीष्व	- वरदान मांग लो,	**अमोघं**	- व्यर्थ नहीं होता,
वयं त्रयः	- हम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, मैं)	**यत् मर्त्यः**	- जिनसे मरणधर्मा प्राणी
वरद ईशा	- वरदान देनेमें समर्थ हैं ।	**अमृतं विन्दते**	- अमृततत्त्व पा लेता है ॥ १९ ॥

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसंगा भूतवत्सलाः ।
एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसंगा भूत वत्सलाः एकान्त भक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥

अन्य प्रतियों में यहां 'श्रीभगवानुवाच' है और कुछ में 'श्रीमहादेव उवाच' है ।

ब्राह्मणाः साधवः	- ब्राह्मण (स्वभावसे) साधु,	**अस्मासु**	- हम लोगोंके
शान्ता	- शान्त,	**एकान्त भक्ता**	- अनन्य भक्त
निःसंगा	- आसक्तिहीन,	**निर्वैराः**	- शत्रुताहीन
भूतवत्सलाः	- प्राणियोंसे स्नेह करनेवाले	**समदर्शिनः**	- समदर्शी होते हैं ।।२०।।

सलोका लोकपालास्तान् वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ।
अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ।। २१ ।।

स लोका लोकपालाः तान् वन्दन्ति अर्चन्ति उपासते अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिः ईश्वरः ।। २१ ।।

स लोका	- सब लोकोंके साथ	**च स्वयं**	- और स्वयं
लोकपालाः	- लोकपाल गण,	**ईश्वरः हरिः**	- सर्वेश्वर श्रीहरि
च अहं	- तथा मैं,	**तान् वन्दन्ति**	- उनकी वन्दना करते हैं,
भगवान् ब्रह्मा	- भगवान् ब्रह्मा	**अर्चन्ति**	- पूजा करते हैं,
		उपासते	- (उनके) समीप रहते हैं ।। २१ ।।

न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ।
नात्मनश्च जनस्यापि तद् युष्मान् वयमीमहि ।। २२ ।।

न ते मयि अच्युते अजे च भिदां अणु अपि चक्षते न आत्मनः च जनस्य अपि तत् युष्मान् वयं ईमहि ।। २२ ।।

मयि अच्युते	- मुझमें, श्रीहरिमें,	**ते आत्मनः च**	- तुममें अपनेमें तथा
च अजे	- तथा ब्रह्माजीमें	**जनस्य अपि**	- लोगोंमें भी
अणु अपि	- तनिक भी	**न चक्षते**	- (भेद) नहीं दीखता
भिदां न	- भेद नहीं है	**तत् युष्मान्**	- इसलिए तुम महात्माओंकी
		वयं ईमहि	- हम स्तुति करते हैं ।। २२ ।।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥

न हि अप् मयानि तीर्थानि न देवाः चेतन उज्झिताः ते पुनन्ति उरुकालेन यूयं दर्शन मात्रतः ॥ २३ ॥

हि अप् मयानि	- क्योंकि जलमय ही	**ते उरु-**	- वे (सेवा करनेपर)
तीर्थानि न	- तीर्थ नहीं हैं,	**कालेन**	बहुत दिनोंमें
चेतन उज्झिताः	- चेतनाहीन (मूर्तियां) ही	**पुनन्ति**	- पवित्र करते हैं,
देवाः न	- देवता नहीं हैं,	**यूयं**	- पर आप लोग
		दर्शन मात्रतः	- दर्शनमात्रसे (पवित्र कर देते हो) ॥ २३ ॥

ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ।
बिभ्रत्यात्मसमाधानतपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥

ब्राह्मणेभ्यः नमस्यामः ये अस्मत् रूपं त्रयीमयं बिभ्रति आत्म समाधान तपः स्वाध्याय संयमैः ॥ २४ ॥

आत्म-समाधान	- चित्तकी एकाग्रता,	**अस्मत् रूपं**	- हमारे रूपको
तपः स्वाध्याय	- तपस्या, वेदाध्ययन,	**बिभ्रति**	- धारण करते हैं (उन)
संयमैः	- संयमके द्वारा	**ब्राह्मणेभ्यः**	- ब्राह्मणोंको
ये त्रयीमयं	- जो वेदमय	**नमस्यामः**	- हम नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥

श्रवणाद् दर्शनाद् वापि महापातकिनोऽपि वः ।
शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु सम्भाषणादिभिः ॥ २५ ॥

श्रवणात् दर्शनात् वा अपि महापातकिनः अपि वः शुध्येरन् अन्त्यजाः च अपि किमु सम्भाषण आदिभिः ॥ २५ ॥

वः श्रवणात्	- आपके चरित-श्रवणसे,	**शुध्येरन्**	- शुद्ध होजाते हैं,
वा दर्शनात्-अपि	- अथवा दर्शनसे भी	**सम्भाषण आदिभिः-किमु**	- बातचीत करने आदिसे तो कहना ही क्या ॥ २५ ॥
महापातकिनः	- महापापी		
च अन्त्यजाः-अपि	- तथा अन्त्यज भी		

सूत उवाच-

इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ।
वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत् कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥

इति चन्द्र ललामस्य धर्म गुह्य उपबृंहितं वचः अमृत अयनं ऋषिः न अतृप्यत् कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥

चन्द्रललामस्य	- शशिभूषण भगवानके	**वचः**	- वचन
इति	- इस प्रकारके	**कर्णयोः पिबन्**	- कानोंसे पीते हुए
धर्मगुह्य	- धर्मके रहस्यसे	**ऋषिः**	- ऋषि (मार्कण्डेय)
उपबृंहितं	- परिपूर्ण	**न अतृप्यत्**	- नहीं तृप्त होते थे ॥ २६ ॥
अमृत अयनं	- अमृत भरे		

स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ।
शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २७ ॥

स चिरं मायया विष्णोः भ्रामितः कर्शितः भृशं शिववाक् अमृत ध्वस्त क्लेश पुञ्जः तं अब्रवीत् ॥ २७ ॥

विष्णोः मायया	- भगवान विष्णुकी माया द्वारा	**शिव वाक् अमृत**	- शंकरजीकी वाणी रूपी अमृतसे
स चिरं	- वे देरतक	**क्लेश पुञ्जः**	- क्लेश समूह
भ्रामितः	- भटकाये गये	**ध्वस्त**	- नष्ट होगये
भृशं कर्शितः	- बहुत थक गये थे	**तं अब्रवीत्**	- उन (शंकरजी) से बोले ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच -

अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ।
यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥

अहो ईश्वर लीला इयं दुर्विभाव्या शरीरिणां यत् नमन्ति ईशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥

अहो	- अहो !	**यत् जगदीश्वराः**	- जो जगत्के स्वामी
इयं ईश्वर लीला	- यह सर्वशक्तिमानकी लीला	**ईशितव्यानि**	- शासन करने योग्य (मेरे जैसों) की
शरीरिणां	- प्राणियोंके लिए	**नमन्ति स्तुवन्ति**	- वन्दना एवं स्तुति करते हैं ॥ २८ ॥
दुर्विभाव्या	- समझसे परे है,		

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ।
आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारः च देहिनां आचरन्ति अनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥

देहिनां	- शरीरधारियोंको	**आचरन्ति**	- (वैसा) आचरण करते हैं,
धर्मं ग्राहयितुं	- धर्मका ग्रहण करानेके लिए	**अनुमोदन्ते**	- अनुमोदन करते हैं,
प्रायः-	- प्रायः (उसके)	**च क्रियमाणं**	- तथा करनेपर
प्रवक्तारः च	उपदेशक भी -	**स्तुवन्ति**	- प्रशंसा करते हैं ॥ २९ ॥

नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ।
न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥

अन्य प्रतियों में यहां ऋषिरुवाच है ।

न एतावता भगवतः स्वमायामय वृत्तिभिः न दुष्येत अनुभावः तैः मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥

स्वमायामय - अपनी मायामयी
वृत्तिभिः - वृत्तियोंके द्वारा
एतावता - इतने (स्तुति आदि) से ही
तैः- - (आपका) वह प्रभाव
अनुभावः
दुष्येत न - दूषित नहीं होता
यथा मायिनः - जैसे जादूगरका (प्रभाव)
कुहकं - जादूके खेलोंसे (घटता नहीं) ॥ ३० ॥

सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ।
गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृग् यथा ॥ ३१ ॥

सृष्ट्वा इदं मनसा विश्वं आत्मना अनु प्रविश्य यः गुणैः कुर्वद्भिः आभाति कर्ता इव स्वप्नदृक् यथा ॥ ३१ ॥

यथा स्वप्नदृक् - जैसे स्वप्न देखनेवाला हो
यः आत्मना - जो अपने
मनसा - मनसे
इदं विश्वं सृष्ट्वा - इस जगतकी सृष्टि करके
अनुप्रविश्य - फिर इसमें प्रवेश करके
गुणैः कुर्वद्भिः - गुणोंके द्वारा किये जाते (कर्मोंका)
कर्ता इव - कर्ताके समान
आभाति - प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥

तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ।
केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥

तस्मै नमः भगवते त्रिगुणाय गुण आत्मने केवलाय अद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥

तस्मै त्रिगुणाय - उन त्रिगुण स्वरूप (होनेपर भी)
गुण आत्मने - गुणोंके आत्मा (गुणातीत)
केवलाय - केवल
अद्वितीयाय - अद्वितीय
गुरवे - परमगुरु
ब्रह्ममूर्तये - ब्रह्मस्वरूप
भगवते नमः - भगवानको नमस्कार ॥ ३२ ॥

कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वद् वरदर्शनात् ।
यद्दर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत् ॥ ३३ ॥

कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वत् वर दर्शनात् यत् दर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत् ॥ ३३ ॥

त्वत् वरदर्शनात् - आपके श्रेष्ठ दर्शनसे
नु परं - भला उत्तम क्या है
वरं वृणे - जिसे वरदानमें मांगूं,
भूमन् - सर्वव्यापक प्रभु !
यत् दर्शनात् - जिस (आपके) दर्शनसे
पुमान् - पुरुष
पूर्णकामः - पूर्णकाम और
सत्यकामः - सत्यसंकल्प
भवेत् - होजाता है ॥ ३३ ॥

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

वरं एकं वृणे अथ अपि पूर्णात् कामअभिवर्षणात् भगवति अच्युतां भक्तिं तत् परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

अथ अपि - फिर भी
पूर्णात् - (आप) परिपूर्ण
काम- - (भक्तोंके) अभीष्टकी
अभिवर्षणात् वर्षा करने वालेसे
एकं वरं वृणे - एक वरदान मांगता हूं
भगवति अच्युतां - भगवान अच्युतमें,
तत् परेषु - उनके परायण (भक्तों) में,
तथा त्वयि - तथा आपमें
भक्तिं - भक्ति हो ॥ ३४ ॥

सूत उवाच-

इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ।
तमाह भगवाञ्छर्वः शर्वया चाभिनन्दितः ॥ ३५ ॥

इति अर्चितः अभिष्टुतः च मुनिना सूक्तया गिरा तं आह भगवान् शर्वः शर्वया च अभिनन्दितः ॥ ३५ ॥

इति मुनिना	- इस प्रकार मुनि द्वारा	**भगवान् शर्वः**	- भगवान शंकर
सूक्तया गिरा	- वैदिक सूक्तरूप वाणीसे	**तं आह**	- उनसे बोले
अर्चितः च	- सत्कृत एवं	**च शर्वया**	- तथा भवानी ने भी (उसका)
अभिष्टुतः	- स्तवन किये जानेपर	**अनुमोदितः**	- अनुमोदन किया ॥३५॥

कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ।
आकल्पान्ताद् यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६ ॥

श्रीरुद्र उवाच-

कामः महर्षे सर्वः अयं भक्तिमान् त्वं अधोक्षजे आकल्पान्तात् यशः पुण्यं अजर अमरता तथा ॥ ३६ ॥

महर्षे	- महर्षि !	**आकल्पान्तात्**	- कल्पपर्यन्त
अयं सर्वः कामः	- (तुम्हारी) यह सब कामनायें (पूर्ण हों)	**पुण्यं यशः**	- (तुम्हारा) पवित्र यश रहे,
त्वं अधोक्षजे	- तुम भगवान् हृषीकेशमें	**तथा अजर**	- तथा जराहीन
भक्तिमान्	- भक्तिमान हो ओ !	**अमरता**	- अमरत्व प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ।
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात् पुराणाचार्यतास्तु ते ॥ ३७ ॥

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ब्रह्मवर्चस्विनः भूयात् पुराण आचार्यता अस्तु ते ॥ ३७ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**विज्ञानं**	- तत्त्वज्ञान,
त्रैकालिकं ज्ञानं	- तीनों (भूत, भविष्य, वर्तमान) का ज्ञान,	**ब्रह्मवर्चस्विनः**	- ब्रह्मतेज सम्पन्नता तथा
		ते पुराण-	- तुमको पुराणोंका
विरक्तिमत्	- वैराग्ययुक्त	**आचार्यता**	आचार्यत्व
		अस्तु	- प्राप्त हो ॥ ३७ ॥

सूत उवाच-

एवं वरान् स मुनये दत्त्वागात्त्र्यक्ष ईश्वरः ।
देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३८ ॥

एवं वरान् स मुनये दत्त्वा अगात् त्र्यक्ष ईश्वरः देव्यै तत् कर्म कथयन् अनुभूतं पुरा अमुना ॥ ३८ ॥

मुनये	- (मार्कण्डेय) मुनिको	**पुरा अमुना**	- पहिले इन्होंने
एवं वरान्	- इस प्रकारके वरदान	**अनुभूतं**	- जो अनुभव किया था
दत्त्वा	- देकर	**तत् कर्म**	- वह (प्रलयादि) कर्म
त्र्यक्षईश्वरः	- त्रिलोचन भगवान शिव	**देव्यै कथयन्**	- देवी (उमा) से वर्णन करते
		अगात्	- चले गये ॥ ३८ ॥

सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ।
विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥

सः अपि अवाप्त महायोग महिमा भार्गव उत्तमः विचरति अधुना अपि अद्धा हराः एकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥

सः भार्गव-	- वे भार्गवश्रेष्ठ	**अधुना अपि**	- इस समय भी
उत्तमः		**हराः-**	- हरिहरके अनन्य प्रेमी
अपि	- (मार्कण्डेय) भी	**एकान्ततां**	होकर
महायोग महिमा	- महायोगका प्रभाव	**गतः**	
अवाप्त	- प्राप्त करके	**अद्धा विचरति**	- साक्षात् विचरण करते हैं ॥ ३९ ॥

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥

अनुवर्णितं एतत् ते मार्कण्डेयस्य धीमतः अनुभूतं भगवतः माया वैभवं अद्भुतम् ॥ ४० ॥

एतत्	- यह	**अनुभूतं**	- अनुभव किया गया
धीमतः	- बुद्धिमान	**भगवतः**	- भगवानकी
मार्कण्डेयस्य	- मार्कण्डेयजी द्वारा	**माया अद्भुतं**	- मायाका अद्भुत
		वैभवं	- वैभव
		ते अनुवर्णितं	- आपसे वर्णन किया ॥ ४० ॥

एतत् केचित् अविद्वान् सः माया संसृतिं आत्मनः ।
अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

एतत् केचित् अविद्वान् सः माया संसृतिं आत्मनः अनादि वर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

केचित्-	- कोई अज्ञानी लोग	**कादाचित्कं**	- कभी होने वाली
अविद्वान् सः		**संसृतिं**	- सृष्टिको
आत्मनः	- अपने (मार्कण्डेय) के लिए ही	**नृणां**	- मनुष्योंकी
		अनादि वर्तितं	- अनादिकालसे होने वाली
माया	- मायाकी	**प्रचक्षते**	- (प्रलय) कहते हैं ॥ ४१ ॥

य एवमेतद् भृगुवर्य वर्णितं
रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ।
संश्रावयेत् संशृणुयादु तावुभौ
तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥

य एवं एतत् भृगुवर्य वर्णितं रथाङ्गपाणेः अनुभाव भावितं संश्रावयेत् संशृणुयात् ताः उभौ तयोः न कर्माशय संसृतिः भवेत् ॥ ४२ ॥

य एतत्	- जो इस	**संश्रावयेत्**	- सुनाता है (और जो)
रथाङ्गपाणेः	- भगवान चक्रपाणिके	**संशृणुयात्**	- श्रवण करता है
अनुभाव	- प्रभावसे	**ताः उभौ**	- यह दोनों (करने वाले)
भावितं	- प्रभावित	**तयोः**	- उन दोनों की
भृगुवर्य	- भृगुश्रेष्ठ (मार्कण्डेय)का	**कर्माशय-**	- कर्म वासनाके कारण
वर्णितं	- वर्णन किया (चरित)	**संसृतिः**	होने वाली जन्म-मरण रूपी गति
		न भवेत्	- नहीं होती ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम ।
समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान् भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥

अथ इमं अर्थं पृच्छामः भवन्तं बहुवित् तमं समस्त तन्त्र राद्ध अन्ते भवान् भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥

बहुवित् तमं	- बहुज्ञोंमें श्रेष्ठ	**समस्त तन्त्र**	- जो सब तन्त्र
भवन्तं	- आपसे	**राद्धअन्ते**	- सिद्धान्तोंका अन्तिम मत है,
अथ इमं अर्थं	- अब यह प्रयोजनकी		
पृच्छामः	- पूछता हूँ	**भवान्**	- आप
		भागवत	- भागवत (धर्म) के
		तत्त्ववित्	- तत्त्ववेत्ता हैं ॥ १ ॥

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ।
अंगोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ॥ २ ॥

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः अंग उपाङ्ग आयुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ॥ २ ॥

तान्त्रिकाः	- (पाञ्चरात्रागमकी) विधि जानने वाले	**यथा च यैः**	- जैसे और जिन तत्त्वोंसे
केवलस्य	- कैवल्यस्वरूप	**अंग-उपाङ्ग**	- (उनके) अंग-उपाङ्ग,
श्रियःपतेः	- भगवान श्रीपतिकी	**आयुध**	- अस्त्र-शस्त्र,
परिचर्यायां	- पूजा-सेवामें	**आकल्पं**	- वस्त्राभरण
		कल्पयन्ति	- कल्पित करते हैं ॥२॥

तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

तत् नः वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सतां येन क्रिया नैपुणेन मर्त्यः यायात् अमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

क्रिया योगं	- (हम) क्रियायोग	**येन क्रिया**	- जिस क्रियाकी
बुभुत्सतां	- जाननेकी इच्छावालोंसे	**नैपुणेन**	- निपुणतासे
तत् नः वर्णय	- वह हमसे वर्णन कीजिए,	**मर्त्यः**	- मरणधर्मा मनुष्य
		अमर्त्यतां	- अमरत्वको
ते भद्रं	- आपका कल्याण हो,	**यायात्**	- पहुंच जाता है ॥ ३ ॥

सूत उवाच-

नमस्कृत्य गुरून् वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ।
याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥

नमस्कृत्य गुरून् वक्ष्ये विभूतीः वैष्णवीः अपि याः प्रोक्ता वेद तन्त्राभ्यां आचार्यैः पद्मज आदिभिः ॥ ४ ॥

गुरून् नमस्कृत्य	- गुरुओंको नमस्कार करके	**याः आचार्यैः**	- जिसे आचार्य
		पद्मज आदिभिः	- ब्रह्मा आदि द्वारा
वैष्णवीः विभूतीः	- भगवान् विष्णुका वैभव	**वेद तन्त्राभ्यां**	- वेद एवं (पाञ्चरात्र) तन्त्रों द्वारा
अपि वक्ष्ये	- भी कहूंगा,	**प्रोक्ता**	- वर्णन किया गया है ॥ ४ ॥

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ।
निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

मायाऽऽद्यैः नवभिः तत्त्वैः स विकारमयः विराट् निर्मितः दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

यत्र सचित्के - जिस चेतन स्वरूपमें
भुवनत्रयं - यह त्रिलोकी रूप
माया आद्यैः - माया आदि
नवभिः - नव (प्रकृति, सूत्रात्मा, महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा)
तत्त्वैः - तत्त्वों द्वारा
स विकारमयः - विकारों (मन, दस इन्द्रिय, पंच महाभूत इन सोलह) से युक्त
निर्मितः - बना हुआ
विराट् दृश्यते - विराट् दीख पड़ता है ॥ ५ ॥

एतद् वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ।
नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौदिशः प्रभोः ॥ ६ ॥

एतत् वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरः नभः नाभिः सूर्यः अक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥

प्रभोः - प्रभो !
वै एतत् - निश्चित यह
पौरुषं रूपं - पुरुषका रूप है,
भूः पादौ - (जिसकी) पृथ्वीचरण,
द्यौः शिरः - द्युलोक (स्वर्ग) सिर,
नभः नाभिः - आकाश नाभि,
सूर्यः अक्षिणी - सूर्य नेत्र
वायुः नासे - वायु नासिका और
दिशः कर्णौ - दिशायें कान हैं ॥ ६ ॥

प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ।
तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥

प्रजापतिः प्रजननं अपानः मृत्युः ईशितुः तत् बाहवः लोकपाला मनः चन्द्रः भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥

प्रजापतिः - प्रजापति
प्रजननं - लिंग,
मृत्युः अपानः - मृत्यु गुदा,
तत् ईशितुः - उन सर्वेश्वरकी
लोकपाला - लोकपाल
बाहवः - भुजायें
चन्द्रः मनः - चन्द्रमामन,
यमः भ्रुवौ - यमराज भौंह हैं ॥ ७ ॥

लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ।
रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्धजाः ॥ ८ ॥

लज्जा उत्तरः अधरः लोभः दन्ता ज्योत्स्ना स्मयः भ्रमः रोमाणि भूरुहा भूम्नः मेघाः पुरुष मूर्धजाः ॥ ८ ॥

भूम्नः पुरुष - उन सर्व व्यापक पुरुषका
लज्जा उत्तरः - लज्जा ऊपरका ओष्ठ,
लोभः अधरः - लोभ नीचेका ओष्ठ
ज्योत्स्ना दन्ता - चन्द्रिका दांत,
भ्रमः स्मयः - भ्रान्ति मुस्कान,
भूरुहा रोमाणि - वृक्ष रोम एवं
मेघाः मूर्धजाः - मेघ केश हैं ॥ ८ ॥

यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ।
तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥

यावान् अयं वै पुरुषः यावत्या संस्थया मितः तावान् असाः अपि महापुरुषः लोकसंस्थया ॥ ९ ॥

वै अयं पुरुषः - निश्चय यह व्यक्ति पुरुष
यावत्या संस्थया - जितने परिमाणसे
मितः - मापा गया (सात बित्तेका)
यावान् - जितना बड़ा है,
असाः - यह
महापुरुषः अपि - विराट् पुरुष भी
लोक संस्थया - सब लोकोंके सहित
तावान् - (अपने सात बित्तेका) उतना ही बड़ा है ॥९॥

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ।
तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥

कौस्तुभ व्यपदेशेन स्व आत्म ज्योतिः बिभर्ति अजः तत् प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्सं उरसा विभुः ॥ १० ॥

अजः विभुः	- वे अजन्मा सर्वव्यापक	**बिभर्ति**	- धारण करते हैं
कौस्तुभ व्यपदेशेन	- कौस्तुभमणिके बहाने	**तत्- व्यापिनी प्रभा**	- उसकी सर्वव्यापक प्रभा
स्व आत्मज्योतिः	- (जीव चैतन्य रूप) अपनी आत्मज्योतिको	**उरसा साक्षात्**	- उनके वक्षस्थल पर प्रत्यक्ष
		श्रीवत्स	- श्रीवत्स चिन्ह है ।।१०।।

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ।
वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम् ।। ११ ।।

स्वमायां वनमाला आख्यां नाना गुणमयीं दधत् वासः छन्दः मयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम् ।। ११ ।।

नानागुणमयीं	- अनेक गुणरूपा	**पीतंवासः**	- पीताम्बर,
स्वमायां	- अपनी मायाको	**त्रिवृत्स्वरं**	- तीन मात्रावाले स्वर (ओंकार) को
वनमाला आख्यां	- वनमाला नामसे,	**ब्रह्मसूत्रं**	- यज्ञोपवीत रूपमें
छन्दःमयं	- वेदमय	**दधृत्**	- धारण करते हैं ।।११।।

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ।
मौलिं पदं पारमेष्ठयं सर्वलोकाभयंकरम् ।। १२ ।।

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवः मकर कुण्डले मौलिं पदं पारमेष्ठयं सर्वलोक अभयंकरम् ।। १२ ।।

देवः	- देवाधिदेव	**अभयंकरं**	- अभय करने वाले
सांख्यं च योगं	- सांख्य तथा योगको	**पारमेष्ठयं पदं**	- ब्रह्मलोकको
मकर कुण्डले	- मकराकृति कुण्डलके रूपमें	**मौलिं बिभर्ति**	- मुकुटके रूपमें धारण करते हैं ।। १२ ।।
सर्व लोक	- एवं सब लोकोंको		

अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥

अव्याकृतं अनन्त आख्यं आसनं यत् अधिष्ठितः धर्मज्ञान आदिभिः युक्तं सत्त्वं पद्मं इह उच्यते ॥ १३ ॥

अनन्त आख्यं	- अनन्त (शेष) नामक	**धर्मज्ञान**	- धर्म, ज्ञान
यत् आसनं	- जिस आसन (शय्या) पर	**आदिभिः युक्तं**	- आदिसे युक्त
अधिष्ठितः	- विराजमान हैं (वह)	**सत्त्वं**	- सत्वगुण
अव्याकृतं	- मूल प्रकृति है,	**इहपद्मं**	- यहां पद्म
		उच्यते	- कहा जाता है ॥१३॥

ओजः सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ।
अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥

ओजः सहः बलयुतं मुख्य तत्त्वं गदां दधत् अपां तत्त्वं दरवरं तेजः तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥

ओजः	- मनोबल	**अपां तत्त्वं**	- जलतत्त्वको
सहः	- इन्द्रियबल	**दरवरं**	- श्रेष्ठ (पांच जन्य) शंखके रूपमें
बल युतं	- देहबलसे युक्त		
मुख्यतत्त्वं	- प्रमुख तत्त्व (प्राणशक्ति) को	**तेजः तत्त्वं**	- अग्नितत्त्वको
		सुदर्शनं	- सुदर्शन चक्रके रूपमें
गदां	- गदाके रूपमें,	**दधत्**	- धारण करते हैं ॥१४॥

नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ।
कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥

नभः निभं नभः तत्त्वं असिं चर्म तमः मयं कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममय इषुधिं ॥ १५ ॥

नभः तत्त्वं - आकाश तत्त्वको
नभः मयं - तमोगुण रूप
असिं चर्म - तलवार-ढाल,
कालरूपं - कालस्वरूप
शार्ङं धनुः - शारंग धनुष
तथा कर्ममयं - कर्म स्वरूप
इषुधिं - तरकश (धारण किये हैं) ॥ १५ ॥

इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्ति मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि शरान् आहुः आकूतिः अस्य स्यन्दनं तन्मात्राणि अस्य अभिव्यक्तिं मुद्रया अर्थ क्रिया आत्मताम् ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि - इन्द्रियोंको
अस्य शरान् - इन (विराट्) के बाण
आहुः - कहा गया है,
आकूतिः - क्रियाशील मन
अस्य स्यन्दनं - इनका रथ है,
तन्मात्राणि - (शब्द, स्पर्शादि) तन्मात्रायें
अस्य- - इस (रथ) के प्रकट
अभिव्यक्तिं (बाहरी) भाग हैं,
मुद्रया - (वर, अभय आदि) मुद्रायें
क्रिया अर्थतां - क्रियाशीलता हैं ॥१६॥

मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥

मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः परिचर्या भगवत आत्मनः दुरितक्षयः ॥ १७ ॥

देव मण्डलं - सूर्य एवं अग्नि देवका मंडल
यजनं - पूजाका स्थान,
आत्मनः संस्कार- अन्तःकरणकी शुद्धि
दीक्षा - मन्त्रदीक्षा तथा
आत्मनः - अपने
दुरित क्षयः - पापोंको नष्ट कर देना
भगवत - भगवानकी
परिचर्या - सेवा है ॥ १७ ॥

भगवान् भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ।
धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥

भगवान् भगशब्द अर्थं लीला कमलं उद्वहन् धर्मं यशः च भगवान् चामर व्यजने अभजत् ॥ १८ ॥

भगवान्	- भगवान	**भगवान्**	- एवं भगवान होनेसे
भग शब्द अर्थं	- भग शब्दका अर्थ (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य)	**धर्मं च यशः**	- धर्म और यशको
		चामर व्यजने	- चामर और व्यजनके रूपमें
		अभजत्	- सेवन करते हैं ॥ १८ ॥
लीला कमलं	- लीला कमलके रूपमें		
उद्वहन्	- धारण करते हैं ।		

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धाम अकुतोभयं त्रिवृत् वेदः सुपर्ण आख्यः यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥

द्विजा	- विप्रवरो !	**त्रिवृत् वेदः**	- वेदत्रयी का
अकुतो भयं	- सर्वथा निर्भय	**सुपर्ण आख्यः**	- गरुड़ नाम है
वैकुण्ठं धामतु	- वैकुण्ठ धाम ही	**यज्ञं पूरुषं**	- जो यज्ञपुरुषको
आतपत्रं	- छत्र है,	**वहति**	- वहन करते हैं ॥१९॥

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ।
विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ।
नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ २० ॥

अनपायनी भगवती श्रीः साक्षात् आत्मनः हरेः विष्वक्सेनः तन्त्र मूर्तिः विदितः पार्षद अधिपः नन्द आदयः अष्टौ दाःस्थाः च ते अणिमा आद्या हरेः गुणाः ॥ २० ॥

अनपायनी	- कभी वियुक्त न होने वाली	पार्षद अधिपः	- पार्षदोंके प्रधान
भगवती श्रीः	- भगवती लक्ष्मी	विदितः	- प्रसिद्ध हैं
हरेः साक्षात्	- श्रीहरिकी साक्षात्	नन्द आदयः	- नन्द आदि
आत्मनः	- आत्मा हैं,	अष्टौद्वाःस्थाः च	-जो आठ द्वारपाल हैं
तन्त्रमूर्तिः	- तन्त्र स्वरूप	ते अणिमा-आद्या	- वे अणिमा आदि
विष्वक्सेनः	- विष्वक् सेन	हरेः गुणाः	- श्रीहरिके (आठ) गुण हैं ॥ २० ॥

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥ २१ ॥

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयं अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्ति व्यूहः अभिधीयते ॥ २१ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	प्रद्युम्नः	- प्रद्युम्न,
स्वयं पुरुषः	- स्वयं परम पुरुष	अनिरुद्ध	- अनिरुद्ध
वासुदेवः	- वासुदेव,	इति मूर्ति व्यूहः	- इस प्रकार चतुर्व्यूह रूप
संकर्षणः	- संकर्षण,	अभिधीयते	- कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।
अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान् परिभाव्यते ॥ २२ ॥

स विश्वः तैजसः प्राज्ञः तुरीय इति वृत्तिभिः अर्थ इन्द्रिय आशय ज्ञानैः भगवान् परिभाव्यते ॥ २२ ॥

स भगवान्	- वे भगवान्	**तुरीय**	- (तीनोंमें व्याप्त) तुरीय
विश्वः	- (जाग्रत अवस्थाके अभिमानी) विश्व	**इति वृत्तिभिः**	- इस प्रकार वृत्तियोंके द्वारा
तैजसः	- (स्वप्नावस्थाभिमानी) तैजस	**अर्थ इन्द्रिय**	- विषय, इन्द्रिय तथा
प्राज्ञः	- (सुषुप्ति अभिमानी) प्राज्ञ	**ज्ञानैः**	- उनके ज्ञानसे
		परिभाव्यते	- सब स्थितियोंमें रहते हैं ॥ २२ ॥

अंगोपाङ्गायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ।
बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान् हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥

अंग उपांङ्ग आयुध आकल्पैः भगवान् तत् चतुष्टयं बिभर्ति स्म चतुः मूर्तिः भगवान् हरिः ईश्वरः ॥ २३ ॥

ईश्वरः	- सर्व-समर्थ	**तत् चतुष्टयं**	- वह चतुर्व्यूह
भगवान् हरिः	- भगवान् श्रीहरि	**चतुः मूर्तिः**	- चारों स्वरूप
अंग-उपांङ्ग	- अंग-उपांग,	**भगवान्**	- भगवान ही
आयुध	- आयुध	**बिभर्ति स्म**	- धारण करते हैं ॥२३॥
आकल्पैः	- आभूषणों सहित		

द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक्
स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ।
सृजति हरति पातीत्याख्ययानावृताक्षो
विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ॥ २४ ॥

द्विज ऋषभ स एष ब्रह्म योनिः स्वयं दृक् स्व महिम परिपूर्णः मायया च स्वया एतत् सृजति हरति पाति इति आख्यया अनावृत अक्षः विवृत इव निरुक्तः तत् परैः आत्मलभ्यः ॥ २४ ॥

द्विज ऋषभ - विप्रवर !
एष ब्रह्मयोनिः - ये भगवान वेदोंके मूल कारण,
स्वयं दृक् - स्वयं प्रकाश,
स्वमहिम - अपनी महिमासे ही
परिपूर्णः - परिपूर्ण,
च स्वया मायया - तथा अपनी माया द्वारा
एतत् - इस विश्वकी
सृजति - सृष्टि,
पाति, हरति - रक्षा तथा हरण (प्रलय) करते
इति आख्यया - इन नामों (तथा कर्मों) से
अनावृत अक्षः - उनकी दृष्टि (ज्ञान) ढकता नहीं,
विवृत इव - (यद्यपि) भिन्नके समान
निरुक्तः - (शास्त्रों) में वर्णित हैं
तत् परैः - (किन्तु) जो उनके परायण हैं
आत्मलभ्यः - (उन्हें) आत्मारूपसे प्राप्त होनेवाले हैं ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रु-
ग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोपवनिताव्रजभृत्यगीत-
तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्णि ऋषभ अवनि ध्रुक् राजन्यवंश दहनात् अपवर्ग वीर्य गोविन्द गोपवनिता व्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवण मंगल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण - श्रीकृष्ण,
कृष्णसख - अर्जुनके सखा,
वृष्णिऋषभ - यादव श्रेष्ठ,
अवनि ध्रुक् - पृथ्वीके द्रोही
राजन्य वंश - राजकुलोंको
गोपवनिता - गोप-स्त्रियों,
व्रज भृत्य - व्रजवासियों तथा (नारदादि) सेवकों (भक्तों) द्वारा
गीत - (सुयश) गाये जाने वाले,
तीर्थश्रवः - पुण्यकीर्ति,

दहनात् - भस्म करने वाले,
अपवर्ग वीर्य - मोक्षदायक पराक्रम (शक्ति) वाले,
गोविन्द - गोविन्द,
श्रवण मंगल - (जिनकी नाम, लीला) सुननेसे ही मंगल होता है,
भृत्यान् - (हम) सेवकोंकी
पाहि - रक्षा कीजिए ॥ २५ ॥

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ।
तच्चितः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥

यः इदं कल्य उत्थाय महापुरुष लक्षणं तत् चित्तः प्रयतः जप्त्वा ब्रह्मवेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥

य इदं - जो इस
महापुरुष लक्षणं - पुरुषोत्तमके लक्षणोंका
तत् चित्तः - उनमें चित्त लगाकर
प्रयतः - एकाग्र होकर
कल्य उत्थाय - प्रातःकाल उठकर
जप्त्वा - जप (पाठ) करेगा (वह)
गुहाशयं - हृदयमें रहने वाले
ब्रह्मवेद - ब्रह्मको जान लेगा ॥ २६ ॥

शौनक उवाच-

शुको यदाह भगवान् विष्णुराताय शृण्वते ।
सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥

शुकः यत् आह भगवान् विष्णुराताय शृण्वते सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥

शृण्वते - सुनने वाले
विष्णु राताय - परीक्षितसे
भगवान् शुकः - भगवान शुकदेवजीने
यत् मासि मासि - जो प्रत्येक महीनेमें
वसति सप्तकः - रहने वाले सात-सातके
सौरो - सूर्यके
नाना गणो - अनेक गणोंका
आह - वर्णन किया ॥ २७ ॥

तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥ २८ ॥

तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानां अधीश्वरैः ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यः आत्मनः हरेः ॥ २८ ॥

अधीश्वरैः	- अधीश्वरोंके	**नः श्रद्दधानानां**	- हम श्रद्धा करने वालोंको
संयुक्तानां	- साथ रहने वाले	**ब्रूहि**	- बतलाइये (क्योंकि)
तेषां नामानि	- उनके नाम एवं	**सूर्यः व्यूहं**	- सूर्यका व्यूह
कर्माणि	- कर्म	**हरेः आत्मनः**	- श्रीहरिका स्वरूप है ॥ २८ ॥

सूत उवाच-

अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ।
निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्तते ॥ २९ ॥

अनादि अविद्यया विष्णोः आत्मनः सर्व देहिनां निर्मितः लोकतन्त्रः अयं लोकेषु परिवर्तते ॥ २९ ॥

सर्व देहिनां	- समस्त प्राणियोंके	**निर्मितः**	- बना हुआ
आत्मनः विष्णोः	- आत्मा भगवान विष्णुके	**अयं लोकतन्त्रः**	- लोक व्यवहार (प्रवर्तक) यह (सूर्य मण्डल)
अनादि-	- अनादि अविद्या	**लोकेषु**	- लोकोंमें
अविद्यया	(अज्ञान) से	**परिवर्तते**	- घूमता रहता है ॥२९॥

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदिकृद्धरिः ।
सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मा आदि कृत् हरिः सर्ववेद क्रियामूलं ऋषिभिः बहुधा उदितः ॥ ३० ॥

हि लोकानां - क्योंकि लोकोंके
आत्मा आदिकृत् - शरीरादि निर्माता
सर्ववेद - सब वैदिक
क्रियामूलं - क्रियाओंके मूल
सूर्य हरिः - सूर्य नारायण
एक एव - एक ही हैं, पर
ऋषिभिः - ऋषियों द्वारा
बहुधा - अनेक रूपोंमें (उनका)
उदितः - वर्णन किया गया है
॥ ३० ॥

कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥

कालः देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यं आगमः द्रव्यं फलं इति ब्रह्मन् नवधा उक्तः अजया हरिः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
कालः देशः - समय, स्थान,
क्रिया कर्ता - क्रिया, उसे करने वाला,
करणं कार्यं - क्रियाके साधन (स्रुवादि), कर्म यज्ञादि
आगमः - विधि-मन्त्र,
द्रव्यं फलं - पदार्थ और (उसका) फल
इति नवधा - इस प्रकार नौ रूपोंमें
अजया - मायाके कारण ही
हरिः उक्तः - श्रीहरि वर्णित होते हैं
॥ ३१ ॥

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् कालरूपधृक् ।
लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥

मधु आदिषु द्वादशसु भगवान् कालरूप धृक् लोकतन्त्राय चरति पृथक् द्वादशभिः गणैः ॥ ३२ ॥

कालरूप धृक् - कालरूप धारी
भगवान् - भगवान (सूर्य)
मधु आदिषु - चैत्र आदि
द्वादशसु - बारह महीनोंमें
लोकतन्त्राय - लोक व्यवहार चलानेके लिए
पृथक् - भिन्न-भिन्न
द्वादशभिः गणैः - अपने बारह गणोंके साथ
चरति - विचरण करते हैं
॥३२॥

धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ।
पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥ ३३ ॥

धाता कृतस्थली हेतिः वासुकी रथकृत् मुने पुलस्त्यः तुम्बुरुः इति मधुमासं नयन्ति अमी ॥ ३३ ॥

मुने	- मुनि शौनक जी	पुलस्त्यः	- पुलस्त्य (ऋषि)
धाता	- धाता (नामक सूर्य)	तुम्बुरुः	- तुम्बुरु (गन्धर्व)
कृतस्थली	- कृतस्थली (अप्सरा)	इति	- इस प्रकार
हेतिः	- हेति (राक्षस)	अमी मधुमासं	- ये चैत्रमास (का कार्य)
वासुकी	- वासुकी (नाग)	नयन्ति	- बिताते हैं ॥ ३३ ॥
रथकृत्	- रथकृत (यक्ष)		

अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली ।
नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥

अर्यमा पुलहः अथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली नारदः कच्छनीरः च नयन्ति एते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥

अर्यमा	- अर्यमा (सूर्य)	नारदः	- नारद (गन्धर्व)
पुलहः	- पुलह (ऋषि)	च कच्छनीरः	- तथा कच्छनीर (नाग)
अथौजाः	- अथौजा (यक्ष)	एते स्म	- इतने ये
प्रहेतिः	- प्रहेति (राक्षस)	माधवं	- वैशाख मास
पुञ्जिकस्थली	- पुञ्जिक स्थली (अप्सरा)	नयन्ति	- व्यतीत करते हैं ॥३४॥

मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ।
रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ॥ ३५ ॥

मित्रः अत्रिः पौरुषेयः अथ तक्षकः मेनका हहाः रथस्वन इति हि एते शुक्रमासं नयन्ति अमी ॥ ३५ ॥

मित्रः - मित्र (सूर्य)
अत्रिः - अत्रि (ऋषि)
पौरुषेयः - पौरुषेय (राक्षस)
अथ तक्षकः - और तक्षक (नाग)
मेनका - मेनका (अप्सरा)
हहाः - हहा (गन्धर्व)
रथस्वन - रथस्वन (यक्ष)
इति हि एते - इस प्रकार ही ये
अमी शुक्रमासं - सब ज्येष्ठ मास
नयन्ति - व्यतीत करते हैं
॥ ३५ ॥

वसिष्ठो वरुणो रम्भा सह जन्यस्तथा हुहूः ।
शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ॥ ३६ ॥

वसिष्ठः वरुणः रम्भा सहजन्यः तथा हुहूः शुक्रः चित्रस्वनः च एव शुचिमासं नयन्ति अमी ॥ ३६ ॥

वरुणः - वरुण (सूर्य)
वसिष्ठः - वसिष्ठ (ऋषि)
रम्भा - रम्भा (अप्सरा)
सहजन्यः - सहजन्य (यक्ष)
तथा हुहूः - तथा हुहू (गन्धर्व)
शुक्रः च - शुक्र (नाग) और
चित्रस्वनः एव - चित्रस्वन (राक्षस) भी
शुचिमासं - आषाढ़ महीना
अमी नयन्ति - ये बिताते हैं ॥ ३६ ॥

इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथाङ्गिराः ।
प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥ ३७ ॥

इन्द्रः विश्वावसुः श्रोता एलापत्रः तथा अंगिराः प्रम्लोचा राक्षसः वर्यः नभः मासं नयन्ति अमी ॥ ३७ ॥

इन्द्रः - इन्द्र (सूर्य)
विश्वावसुः - विश्वावसु (गन्धर्व)
श्रोता - श्रोता (यक्ष)
एलापत्रः - एलापत्र (नाग)
तथा अंगिराः - तथा अंगिरा (ऋषि)
प्रम्लोचा - प्रम्लोचा (अप्सरा)
वर्यः राक्षसः - वर्य राक्षस
अमी नभः मासं - ये श्रावण मास
नयन्ति - व्यतीत करते हैं
॥ ३७ ॥

विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ।
अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ३८ ॥

विवस्वान् उग्रसेनः च व्याघ्र आसारणः भृगुः अनुम्लोचा शंखपालः नभस्य आख्यं नयन्ति अमी ॥ ३८ ॥

विवस्वान्	- विवस्वान् (सूर्य)	**अनुम्लोचा**	- अनुम्लोच (अप्सरा)
उग्रसेनः	- उग्रसेन (गन्धर्व)	**शंखपालः**	- शंखपाल नाग
च व्याघ्र	- तथा व्याघ्र (राक्षस)	**नभस्य आख्यं**	- भाद्र नामक मास
आसारणः	- आसारण (यक्ष)	**अमी नयन्ति**	- ये व्यतीत करते हैं ॥ ३८ ॥
भृगुः	- भृगु (ऋषि)		

पूषा धनञ्जयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ।
घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥

पूषा धनञ्जयः वातः सुषेणः सुरुचिः तथा घृताची गौतमः च इति तपः मासं नयन्ति अमी ॥ ३९ ॥

पूषा	- पूषा (सूर्य)	**तथा घृताची**	- एवं घृताची (अप्सरा)
धनञ्जयः	- धनंजय (नाग)	**च गौतमः**	- तथा गौतम (ऋषि)
वातः	- वात (राक्षस)	**इति अमी**	- इस प्रकार ये
सुषेणः	- सुषेण (गन्धर्व)	**तपः मासं**	- माघमास
सुरुचिः	- सुरुचि (यक्ष)	**नयन्ति**	- बिताते हैं ॥ ३९ ॥

क्रतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ।
विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥

क्रतुः वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित् तथा विश्व ऐरावतः च एव तपस्य आख्यं नयन्ति अमी ॥ ४० ॥

पर्जन्यः - पर्जन्य (सूर्य)
क्रतुः - क्रतु (यक्ष)
वर्चा - वर्चा (राक्षस)
भरद्वाजः - भरद्वाज (ऋषि)
तथा सेनजित् - और सेनजित् (अप्सरा)
विश्व - विश्व (गन्धर्व)
च ऐरावतः एव -तथा ऐरावत (नाग) भी
अमी-तपस्य आख्यं नयन्ति - ये फाल्गुन नामक मास व्यतीत करते हैं ।।४०।।

अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ।
विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयन्त्यमी ।। ४१ ।।

अथ अंशुः कश्यपः तार्क्ष्य ऋतसेनः तथा उर्वशी विद्युत्शत्रुः महाशंखः सहः मासं नयन्ति अमी ।। ४१ ।।

अथ सहः मासं - फिर मार्गशीर्ष मासको
अंशुः - अंशु (सूर्य)
कश्यपः - कश्यप (ऋषि)
तार्क्ष्य - तार्क्ष्य (यक्ष)
ऋत सेनः - ऋतसेन (गन्धर्व)
तथा उर्वशी - तथा उर्वशी (अप्सरा)
विद्युत्शत्रुः - विद्युतशत्रु (राक्षस)
महाशंखः - महाशंख (नाग)
अमी नयन्ति - ये बिताते हैं ।। ४१ ।।

भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पञ्चमः ।
कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ।। ४२ ।।

भगः स्फूर्जः अरिष्टनेमिः ऊर्ण आयुः च पञ्चमः कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्ति अमी ।। ४२ ।।

भगः - भग (सूर्य)
स्फूर्जः - स्फूर्ज (राक्षस)
अरिष्टनेमिः - अरिष्टनेमि (गन्धर्व)
ऊर्ण - ऊर्ण (यक्ष)
च पञ्चमः - तथा पांचवें
आयुः - आयु (ऋषि)
कर्कोटकः - कर्कोटक (नाग)
पूर्वचित्तिः - पूर्वचित्ति (अप्सरा)
अमी पुष्यमासं - ये पौषमास
नयन्ति - बिताते हैं ।। ४२ ।।

त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलश्च तिलोत्तमा ।
ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद् धृतराष्ट्र इषम्भराः ॥ ४३ ॥

त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलः च तिलोत्तमा ब्रह्मापेतो अथ शतजित् धृतराष्ट्र इषम्भराः ॥ ४३ ॥

त्वष्टा	- त्वष्टा (सूर्य)	**अथ ब्रह्मापेतो**	- एवं ब्रह्मापेत (राक्षस)
ऋचीकतनयः	- ऋचीक-नन्दनजमदग्नि (ऋषि)	**शतजित्**	- शतजित् (यक्ष)
		धृतराष्ट्र	- धृतराष्ट्र (गन्धर्व)
कम्बलः	- कम्बल (नाग)	**इषंभराः**	- आश्विनके कार्यकाल वाले हैं ॥ ४३ ॥
च तिलोत्तमा	- तथा तिलोत्तमा (अप्सरा)		

विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥ ४४ ॥

विष्णुः अश्वतरः रम्भा सूर्यवर्चाः च सत्यजित् विश्वामित्रः मखापेत ऊर्ज मासं नयन्ति अमी ॥ ४४ ॥

विष्णुः	- विष्णु (सूर्य)	**विश्वामित्रः**	- विश्वामित्र (ऋषि)
अश्वतरः	- अश्वतर (नाग)	**मखापेत**	- मखापेत (राक्षस)
रम्भा	- रम्भा (अप्सरा)	**अमी ऊर्जमासं**	- ये कार्तिकमास
सूर्यवर्चाः	- सूर्यवर्चा (गन्धर्व)	**नयन्ति**	- व्यतीत करते हैं ॥ ४४ ॥
च सत्यजित्	- तथा सत्यजित् (यक्ष)		

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ।
स्मरतां सन्ध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने ॥ ४५ ॥

एता भगवतः विष्णोः आदित्यस्य विभूतयः स्मरतां सन्ध्ययोः नृणां हरन्ति अंहः दिने दिने ॥ ४५ ॥

भगवतः विष्णोः - भगवान विष्णु रूपी
आदित्यस्य - सूर्यकी
एता विभूतयः - ये विभूतियां
दिने दिने - प्रत्येक दिन
सन्ध्ययोः - दोनों सन्ध्याओंके समय
स्मरतां नृणां - स्मरण करने वाले मनुष्योंका
अंहः हरन्ति - पाप हरण करती हैं ॥ ४५ ॥

द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ।
चरन् समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥

द्वादशः सु अपि मासेषु देवः असौ षट्भिः अस्य वै चरन् समन्तात् तनुते परत्र इह च सन् मतिम् ॥ ४६ ॥

असौ देवः - ये देव सूर्यनारायण
वै अस्य - निश्चय इन
षट्भिः - छः (गणों) के साथ
द्वादशः सु - बारहों
मासेषु अपि - महीनोंमें ही
समन्तात् चरन् - चारों ओर घूमते हुए
परत्र च इह - परलोक तथा इसलोकमें
सन्मतिं - सद्बुद्धिका
तनुते - विस्तार करते हैं ॥४६॥

सामग्यर्जुर्भिस्तल्लिङ्गैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम् ।
गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥

सामऋक् यजुर्भिः तत् लिङ्गैः ऋषयः संस्तुवन्ति अमुं गन्धर्वाः तं प्रगायन्ति नृत्यन्ति अप्सरसः अग्रतः ॥ ४७ ॥

सामऋक् - सामवेद, ऋग्वेद,
यजुर्भिः - यजुर्वेदके
तत् लिङ्गैः - उन सूर्य-सम्बन्धी (मन्त्रों) से
ऋषयः अमुं - ऋषि लोग इनकी
संस्तुवन्ति - स्तुति करते हैं,
गन्धर्वाः - गन्धर्व लोग
तं प्रगायन्ति - उनका (यश) गाते हैं,
अप्सरसः - अप्सरायें
अग्रतः नृत्यन्ति - (उनके) आगे नाचती हैं ॥ ४७ ॥

उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ।
चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यः रथयोजकाः चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

नागा रथं	- नाग रथको	**बलशालिनः**	- बलवान
उन्नह्यन्ति	- कसे रहते हैं,	**नैर्ऋता**	- राक्षस
ग्रामण्यः	- यक्ष	**पृष्ठे रथं**	- पीछेसे रथको
रथ योजकाः	- रथको सजाते हैं,	**चोदयन्ति**	- ढकेलते रहते हैं ॥४८॥

बालखिल्याः सहस्त्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥

बालखिल्याः सहस्त्राणि षष्टिः ब्रह्मर्षयः अमलाः पुरतः अभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिः विभुम् ॥ ४९ ॥

षष्टिः सहस्त्राणि	- साठ सहस्त्र	**विभुं**	- प्रभु (सूर्य) की
अमलाः	- निर्मल	**स्तुतिभिः-स्तुवन्ति**	- स्तोत्रोंसे स्तुति करते
बालखिल्याः	- बालखिल्य	**अभिमुखं**	- उनकी ओर मुख किये
ब्रह्मर्षयः	- ब्रह्मर्षिगण	**पुरतःयान्ति**	- आगे-आगे चलते हैं ॥ ४९ ॥

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः ।
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥

एवं हि अनादि निधनः भगवान् हरिः ईश्वरः कल्पे कल्पे स्वं आत्मानं व्यूह्य लोकान् अवति अजः ॥ ५० ॥

एवं हि	- इसी प्रकार	**कल्पे-कल्पे**	- प्रत्येक कल्पमें
अनादि निधनः	- अनादि-अनन्त	**स्वं आत्मानं**	- अपने स्वरूप (सूर्य) को
ईश्वरः भगवान्	- सर्व-समर्थ भगवान	**व्यूह्य**	- व्यूहयुक्त करके
अजः हरिः	- अजन्मा श्रीहरि	**लोकान्-अवति**	- लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान् वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

नमः धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ब्राह्मणेभ्यः नमःकृत्य धर्मान् वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

महते धर्माय - महान् (भागवत) धर्मको
नमः - नमस्कार,
वेधसे कृष्णाय - विश्वविधाता श्रीकृष्णको
नमः - नमस्कार,

ब्राह्मणेभ्यः - ब्राह्मणोंको
नमस्कृत्य - नमस्कार करके
सनातनान् - शाश्वत
धर्मान् - (भागवतके) धर्म (स्वरूप) का
वक्ष्ये - (संक्षिप्त) वर्णन करुँगा
॥ १ ॥

एतद् वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ।
भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

एतत् वः कथितं विप्रा विष्णोः चरितं अद्भुतं भवद्भिः यत् अहं पृष्टः नराणां पुरुष उचितम् ॥ २ ॥

विप्रा - ब्राह्मणो !
यत् अहं - जो मैं
वः पृष्टः - आप लोगों द्वारा पूछा गया था

नराणां - मनुष्योंके लिए
पुरुष उचितं - उचित पुरुषार्थ रूप
अद्भुतं - अद्भुत
विष्णोः चरितं - भगवान् विष्णुका चरित
एतत् कथितं - यह (मैंने) वर्णन किया
॥ २ ॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात् सर्वपापहरो हरिः ।
नारायणो हृषीकेशो भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३ ॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात् सर्वपाप हरः हरिः नारायणः हृषीकेशः भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३ ॥

अत्र	- इस (श्रीमद्भागवत) में	**हृषीकेशः**	- अन्तर्यामी
सर्वपापहरः	- सर्व पापहारी	**सात्वतां पतिः**	- भक्तोंके स्वामी
साक्षात् हरिः	- साक्षात् श्रीहरि	**भगवान्**	- भगवानका
नारायणः	- (परात्पर) नारायण	**संकीर्तितः**	- संकीर्तन हुआ है ॥३॥

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभव अप्यम् ज्ञानं च तत् उपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञान संयुतम् ॥ ४ ॥

अत्र	- इस (पुराण) में	**ब्रह्म**	- ब्रह्म
परम् गुह्यं	- परम रहस्यमय	**तत् उपाख्यानं**	- एवं उसका उदाहरणात्मक
जगतः प्रभव	- विश्वकी उत्पत्ति,		
अप्ययं	- प्रलयके कारण	**ज्ञानं विज्ञान संयुतं**	- ज्ञान विज्ञानके साथ
		च प्रोक्तं	- ही वर्णित हुआ है ॥ ४ ॥

भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ।
पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥

भक्तियोगः सम आख्यात वैराग्यं च तत् आश्रयं पारीक्षितं उपाख्यानं नारद आख्यानं एव च ॥ ५ ॥

भक्तियोगः - भक्तियोग
च तत् आश्रयं - तथा उसी (भक्ति) पर आश्रित
वैराग्यं - वैराग्यका
सम आख्यातः - भली प्रकार वर्णन हुआ है,
पारीक्षितं - परीक्षितकी
उपाख्यानं - कथा
च नारद - तथा नारदजीकी
आख्यानं एव - कथा भी है ॥ ५ ॥

प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात् परीक्षितः ।
शुकस्य ब्रह्मर्षभस्य संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥

प्रायोपवेशः राजर्षेः विप्रशापात् परीक्षितः शुकस्य ब्रह्म ऋषभस्य संवादः च परीक्षितः ॥ ६ ॥

विप्रशापात् - ब्राह्मणके शापसे
राजर्षेः - राजर्षि
परीक्षितः - परीक्षितका
प्रायोपवेशः - आमरण अनशन,
च ब्रह्म ऋषभस्य - तथा ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ
शुकस्य - शुकदेवजीका
परीक्षितः - परीक्षितके साथ
संवादः - संवाद ॥ ६ ॥

योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाजयोः ।
अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥

योग धारणया उत्क्रान्तिः संवादः नारद अजयोः अवतार अनुगीतं च सर्गः प्राधानिकः अग्रतः ॥ ७ ॥

योग धारणया - योगकी धारणासे
उत्क्रान्तिः - (शरीरसे) ऊपर निकल जाना,
नारद अजयोः - नारद एवं ब्रह्माजीका
संवादः - संवाद,
अवतार-अनुगीतं - अवतरोंका संक्षिप्त वर्णन
च अग्रतः - तथा सबसे पहिले
प्राधानिकः - प्रधान प्राकृतिक तत्त्वोंकी
सर्गः - सृष्टि ॥ ७ ॥

विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ।
पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥

विदुर उद्धव संवादः क्षत्तृमैत्रेययोः ततः पुराण संहिता प्रश्नः महापुरुष संस्थितिः ॥ ८ ॥

विदुर उद्धव	- विदुर एवं उद्धजीका	**पुराण संहिता**	- पुराण संहिता सम्बन्धी
ततः क्षत्तृ	- फिर विदुर तथा	**प्रश्नः**	- प्रश्न,
मैत्रेययोः	- मैत्रेयजीका	**महापुरुष**	- परम पुरुषकी
संवादः	- संवाद,	**संस्थितिः**	- प्रलयमें स्थिति ॥ ८ ॥

ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ।
ततो ब्रह्माण्डसम्भूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥

ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाः च ये ततः ब्रह्माण्ड सम्भूतिः वैराजः पुरुषः यतः ॥ ९ ॥

ततः प्राकृतिकः	- फिर प्राकृतिक	**ततः ब्रह्माण्ड**	- फिर ब्रह्माण्डकी
ये सप्त-	- जो सात प्रकृति-विकृति	**सम्भूतिः**	- उत्पत्ति
वैकृतिकाः	(महत्तत्त्व, अहंकार,	**यतः वैराजः**	- जिससे विराट् पुरुष
	पंचतन्मात्रा) हैं	**पुरुषः**	हुआ ॥ ९ ॥
सर्गः	- (उनकी) उत्पत्ति,		

कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ।
भुव उद्धरणेऽम्भोधेर्हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥

कालस्य स्थूल सूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः भुव उद्धरणे अम्भोधेः हिरण्याक्ष वधः यथा ॥ १० ॥

स्थूल सूक्ष्मस्य	- स्थूल और सूक्ष्म	**भुव उद्धरणे**	- पृथ्वीका उद्धार,
कालस्य गतिः	- कालका स्वरूप,	**यथा**	- (फिर) जैसे
पद्मसमुद्भवः	- लोकपद्मकी उत्पत्ति,	**हिरण्याक्ष वधः**	- हिरण्याक्षका वध
अम्भोधेः	- (प्रलय) समुद्रसे		हुआ ॥ १० ॥

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ।
अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायम्भुवो मनुः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्व तिर्यक् अवाक् सर्गः रुद्रसर्गः तथा एव च अर्धनारी नरस्य अथ यतः स्वायम्भुवः मनुः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्व	- ऊर्ध्व (ऊपरके लोकोंके देवताओं) की	**तथा एव**	- इसी प्रकार
तिर्यक्	- बीच (पृथ्वीके प्राणियों) की	**रुद्रसर्गः च**	- (एकादश) रुद्रोंकी उत्पत्ति भी,
अवाक्	- नीचे (रसतलादिके प्राणियों) की१	**अथ अर्ध नारीनरस्य**	- फिर (ब्रह्माजीके) उस अर्धनारी नर (रूप) का (वर्णन)
सर्गः	- उत्पत्ति,	**यतः स्वायम्भुवः मनुः**	- जिससे स्वायम्भुव मनु हुए ॥ ११ ॥

शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ।
सन्तानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥

शतरूपा च या स्त्रीणां आद्या प्रकृतिः उत्तमा सन्तानः धर्म पत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥

च उत्तमा-प्रकृतिः	- तथा उत्तम स्वभावा	**कर्दमस्य**	- कर्दमका (चरित),
स्त्रीणां आद्या	- स्त्रियोंमें सर्वप्रथमा	**धर्म पत्नीनां**	- धर्मकी पत्नियोंकी
शतरूपा	- शतरूपा (की उत्पत्ति),	**सन्तानः**	- सन्तानोंका (वर्णन) ॥ १२ ॥
प्रजापतेः	- प्रजापति		

---

१. ऊर्ध्व स्रोत (वृक्षादि) तिर्यक् स्रोत (पशु-पक्षी) अवाक् (अधः) स्रोत (मनुष्य-देवतादि) यह अर्थ भी है ।

अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ।
देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥

अवतारः भगवतः कपिलस्य महात्मनः देवहूत्याः च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥

महात्मनः	- महात्मा	**च धीमता**	- तथा परम बुद्धिमान
भगवतः	- भगवान	**कपिलेन**	- कपिलजीके साथ
कपिलस्य	- कपिलका	**देवहूत्याः**	- माता देवहूतिजी का
अवतारः	- अवतार	**संवादः च**	- संवाद भी ॥ १३ ॥

नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ।
ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥

नव ब्रह्म समुत्पत्तिः दक्षयज्ञ विनाशनं ध्रुवस्य चरितं पश्चात् पृथोः प्राचीन बर्हिषः ॥ १४ ॥

नव ब्रह्म	- (मरीचि आदि) नौ ब्रह्मर्षियोंकी	**पश्चात्**	- फिर पीछे
समुत्पत्तिः	- एक साथ उत्पत्ति,	**ध्रुवस्य पृथोः**	- ध्रुवका, पृथुका और
दक्षयज्ञ	- दक्षके यज्ञका	**प्राचीन बर्हिषः**	- प्राचीन बर्हिका
विनाशनं	- नाश किया जाना,	**चरितं**	- चरित ॥ १४ ॥

नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ।
नाभेस्ततोऽनु चरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥

नारदस्य च संवादः ततः प्रैयव्रतं द्विजाः नाभेः ततः अनुचरितं ऋषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥

द्विजाः	- विप्रो !	**ततः नाभेः**	- फिर नाभिका
नारदस्य च	- नारदजीका तथा	**ऋषभस्य**	- ऋषभदेवजीका
प्रैयव्रतं	- प्रियव्रतका	**च भरतस्य**	- तथा भरतका
संवादः	- संवाद	**अनुचरितं**	- चरित वर्णन है ॥१५॥

द्वीपवर्षसमुद्राणां गिरिनद्युपवर्णनम् ।
ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥

द्वीपवर्ष समुद्राणां गिरिनदि उपवर्णनं ज्योतिः चक्रस्य संस्थानं पाताल नरक स्थितिः ॥ १६ ॥

द्वीपवर्ष	- द्वीप, वर्ष,	**ज्योतिः चक्रस्य**	- ग्रह-नक्षत्र मण्डलकी
समुद्राणां	- समुद्रों,	**संस्थानं**	- स्थिति,
गिरिनदि	- पर्वतों, नदियोंका	**पाताल**	- पातालादि लोकों तथा
उपवर्णनं	- संक्षिप्त वर्णन है	**नरक स्थितिः**	- नरकोंकी स्थिति ॥१६॥

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च सन्ततिः ।
यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यः तत् पुत्रीणां च सन्ततिः यतः देव असुर नराः तिर्यक् नग खग आदयः ॥ १७ ॥

प्रचेतोभ्यः	- प्रचेताओंसे	**यतः देव-असुर**	- जिनसे देवता, असुर,
दक्षजन्म	- दक्षका जन्म	**नराः तिर्यक्**	- मनुष्य, पशु
च तत् पुत्रीणां	- तथा उनकी पुत्रियोंकी	**नग खग**	- पर्वत, पक्षी
सन्ततिः	- सन्तानोंका (वर्णन)	**आदयः**	- आदि हुए ॥ १७ ॥

त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ।
दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥

त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोः च दितेः द्विजाः दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥

द्विजाः	- विप्रो !	दैत्येश्वरस्य	- दैत्यराज हिरण्यकशिपु और
त्वाष्ट्रस्य	- वृत्रासुरकी	महात्मनः	- महात्मा
जन्म निधनं	- उत्पत्ति और मृत्यु,	प्रह्लादस्य	- प्रह्लादका
च दितेः	- तथा दितिके	चरितं	- चरित ॥ १८ ॥
पुत्रयोः	- दोनों पुत्रोंकी (मृत्यु)		

मन्वन्तरानुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् ।
मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥

मन्वन्तर अनुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणं मन्वन्तर अवतारा: च विष्णोः हयशिर आदयः ॥ १९ ॥

मन्वन्तर	- मन्वन्तरोंका	च मन्वन्तर	- तथा मन्वन्तरोंके
अनुकथनं	- संक्षिप्त वर्णन	विष्णोः	- भगवान विष्णुके
गजेन्द्रस्य	- (जिनमें) गजेन्द्रका	हयशिर	- हयशीर्ष१
विमोक्षणं	- (ग्राहसे) छुड़ाया जाना	आदयः	- आदि
		अवतारा:	- अवतार ॥ १९ ॥

कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च जगत्पतेः ।
क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥

कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च जगत्पतेः क्षीरोदमथनं तत् वत् अमृत अर्थे दिवौकसां ॥ २० ॥

च जगत्पतेः	- तथा जगदीश्वरका	तत् वत्	- इसी प्रकार
कौर्मं धान्वन्तरं	- कूर्मावतार, धन्वन्तरि अवतार,	दिवौकसां	- देवताओंका
		अमृत अर्थे	- अमृतके लिए
वामनं	- वामनावतार	क्षीरोद	- क्षीरसागरका
च मात्स्यं	- तथा मत्स्यावतार (वर्णित) हैं	मथनं	- मन्थन (करना) ॥२०॥

१. भगवानकी प्राप्त प्रतियां एवं ढाकाओंमें हयशीर्ष अवतारका यह वर्णन नहीं है जो गजेन्द्र मोक्षके बाद होना चाहिए ।

देवासुरमहायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ।
इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

देव असुर महायुद्धं राजवंश अनुकीर्तनं इक्ष्वाकु जन्म तत् वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

देव असुर	- देवता तथा असुरोंका	**इक्ष्वाकुजन्म**	- इक्ष्वाकुका जन्म,
महायुद्धं	- महायुद्ध,	**तत् वंशः**	- उनका वंश,
राजवंश	- राजाओंके वंशका	**महात्मनः**	- महात्मा
अनुकीर्तनं	- संक्षिप्त वर्णन,	**सुद्युम्नस्य**	- सुद्युम्नका (वर्णन) ॥ २१ ॥

इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ।
सूर्यवंशानुकथनं शाशादाद्या नृगादयः ॥ २२ ॥

इला उपाख्यानं अत्र उक्तं तारा उपाख्यानं एव च सूर्यवंश अनुकथनं शशाद आद्या नृग आदयः ॥ २२ ॥

अत्र	- इस प्रसंगमें	**सूर्यवंश**	- सूर्यवंशका
इला उपाख्यानं	- इलाका उपाख्यान	**अनुकथनं**	- संक्षिप्त वर्णन हुआ
च तारा-उपाख्यानं	- ताराका उपाख्यान	**शशाद आद्या**	- (जिसमें) शशाद आदि एवं
एव उक्तं	- भी कहा गया,	**नृग आदयः**	- नृग आदि हुए ॥२२॥

सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः ।
खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥

सौकन्यं च अथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥

अथ सौकन्यं	- फिर सुकन्या चरित,	**खट्वांगस्य**	- खट्वांगका,
च शर्यातेः	- तथा शर्यातिका,	**मान्धातुः**	- मान्धाताका
च धीमतः	- एवं बुद्धिमान	**च सौभरेः**	- और सौभरिका
ककुत्स्थस्य	- ककुत्स्थका,	**च सगरस्य**	- एवं सगरका (चरित) है ॥ २३ ॥

रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ।
निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च सम्भवः ॥ २४ ॥

रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्बिष अपहं निमेः अंग परित्यागः जनकानां च सम्भवः ॥ २४ ॥

किल्बिष अपहं	- पापहारी	**निमेः**	- निमिका
कोसलेन्द्रस्य	- कोसलेन्द्र	**अंग परित्यागः**	- शरीर-त्याग,
रामस्य चरितं	- श्रीरामका चरित,	**च जनकानां**	- तथा जनकवंशियोंकी
		सम्भवः	- उत्पत्ति ॥ २४ ॥

रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ।
ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च ॥ २५ ॥

रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्र करणं भुवः ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेः नहुषस्य च ॥ २५ ॥

भार्गवेन्द्रस्य	- भृगुवंश शिरोमणि	**सोमवंशस्य**	- चन्द्रवंशके
रामस्य	- परशुरामजीका	**ऐलस्य**	- इला-नन्दन पुरूरवाकी,
भुवः	- पृथ्वीको	**ययातेः**	- ययातिकी
निःक्षत्र करणं	- क्षत्रियहीन बनाना	**च नहुषस्य**	- तथा नहुषकी (कथा) है ॥ २५ ॥

दौष्यन्तेर्भरतस्यापि शन्तनोस्तत्सुतस्य च ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६ ॥

दौष्यन्तेः भरतस्य अपि शंतनोः तत् सुतस्य च ययातेः ज्येष्ठ पुत्रस्य यदोः वंशः अनुकीर्तितः ॥ २६ ॥

दौष्यन्तेः	- दुष्यन्तके पुत्र	**ययातेः**	- ययातिके,
भरतस्य अपि	- भरतका भी,	**ज्येष्ठ पुत्रस्य**	- बड़े पुत्र
शंतनोः	- शंतनुका,	**यदोः वंशः**	- यदुके वंशका
च तत् सुतस्य	- तथा उनके पुत्र भीष्मका,	**अनुकीर्तितः**	- संक्षिप्त वर्णन किया गया ॥ २६ ॥

यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ।
वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥ २७ ॥

यत्र अवतीर्णः भगवान् कृष्ण आख्यः जगदीश्वरः वसुदेव गृहे जन्म ततः वृद्धिः च गोकुले ॥ २७ ॥

यत्र	- जिस वंशमें	**वसुदेव**	- वसुदेवजीके
जगदीश्वरः	- जगदीश्वर	**गृहेजन्म**	- घर (पत्नीसे) जन्म लेना
कृष्ण आख्यः	- श्रीकृष्णनामसे	**ततः गोकुले**	- फिर गोकुलमें
अवतीर्णः	- अवतरित हुए,	**वृद्धिः च**	- (उनका) बढ़ना भी ॥ २७ ॥

तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ।
पूतनासुपयः पानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥

तस्य कर्माणि अपाराणि कीर्तितानि असुरद्विषः पूतना असु पयः पानं शकट उच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥

तस्य असुर-द्विषः	- उन असुर द्रोहीके	**पूतना**	- पूतनाका
		असु पयः पानं	- प्राणोंके साथ दूध पीना,
अपाराणि	- अपार	**शिशोः**	- शिशुका ही
कर्माणि	- कर्मोंका	**शकट-उच्चाटनं**	- छकड़ा उलट देना ॥ २८ ॥
कीर्तितानि	- वर्णन हुआ है,		

तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ।
धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥

तृणावर्तस्य निष्पेषः तथा एव बकवत्सयोः धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥

तृणावर्तस्य	- तृणावर्तको	**सह भ्रातुः**	- भाइयोंके साथ
निष्पेषः	- पीस डालना,	**धेनुकस्य च**	- धेनुकासुरका भी
तथा एव	- इसी प्रकार	**संक्षयः**	- विनाश ॥ २९ ॥
बकवत्सयोः	- बकासुर, वृत्सासुर,	**प्रलम्बस्य**	

गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ।
दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥

गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः दमनं कालियस्य अहेः महा अहेः नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥

परिसर्पतः	- चारों ओरसे बढ़ते आते	**कालियस्य अहेः**	- कालियनागका
दावाग्नेः	- दावाग्निसे	**दमनं**	- दमन करना,
गोपानां च	- गोपोंकी तो	**महा अहेः**	- अजगरसे
परित्राणं	- रक्षा करना	**नन्द मोक्षणं**	- नन्दजीको छुड़ाना ॥ ३० ॥

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ।
प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टः अच्युतः व्रतैः प्रसादः यज्ञपत्नीभ्यः विप्राणां च अनुतापनम् ॥ ३१ ॥

कन्यानां तु	- (व्रजकी) कन्याओंका तो	**यज्ञपत्नीभ्यः**	- यज्ञ-पत्नियोंपर
व्रतचर्या	- व्रत करना	**प्रसादः**	- कृपा करना
यत्र व्रतैः	- जिस व्रतसे	**च विप्राणां**	- तथा ब्राह्मणोंका
अच्युतः तुष्टः	- अच्युत सन्तुष्ट हुए,	**अनुतापनं**	- पश्चाताप करना ।।३१।।

गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ।
यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ।। ३२ ।।

गोवर्धनः उद्धारणं च शक्रस्य सुरभेः अथ यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ।। ३२ ।।

गोवर्धनः	- गोवर्धन पर्वतको	**कृष्णस्य**	- श्रीकृष्णका
उद्धारणं	- उठा लेना,	**यज्ञाभिषेकं**	- यज्ञाभिषेक,
अथ शक्रस्य	- फिर इन्द्रका	**रात्रिषु**	- रात्रियोंमें
च सुरभेः	- तथा कामधेनुका	**स्त्रीभिः क्रीडा**	- स्त्रियोंके साथ रासक्रीड़ा ।। ३२ ।।

शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ।
अक्रूरागमनं पश्चात् प्रस्थानं रामकृष्णयोः ।। ३३ ।।

शंख चूडस्य दुर्बुद्धेः वधः अरिष्टस्य केशिनः अक्रूर आगमनं पश्चात् प्रस्थानं रामकृष्णयोः ।। ३३ ।।

दुर्बुद्धेः	- दुर्मति	**पश्चात्**	- फिर
शंख-चूड़स्य	- शंखचूड़ यक्ष,	**अक्रूर आगमनं**	- अक्रूरका आना,
अरिष्टस्य	- अरिष्टासुर	**रामकृष्णयोः**	- बलराम तथा श्रीकृष्णका
केशिनः वधः	- एवं केशीको मारना,	**प्रस्थानं**	- प्रस्थान करना ।। ३३ ।।

व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ।
गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ।। ३४ ।।

व्रजस्त्रीणां विलापः च मथुरा लोकनं ततः गज मुष्टिक चाणूर कंस आदीनां च यः वधः ॥ ३४ ॥

व्रज स्त्रीणां च	- व्रजकी स्त्रियोंका तो	**गज मुष्टिक**	- (कुवलया पीड़) हाथी,
विलापः	- विलाप करना,		मुष्टिक,
ततः मथुरा	- फिर मथुराको	**चाणूर कंस**	- चाणूर, कंस
लोकनं	- देखना,	**आदीनां च**	- आदिकोंका भी
		यः वधः	- जो वध किया ॥ ३४ ॥

मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सान्दीपनेर्गुरोः ।
मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ।
कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ ३५ ॥

मृतस्य आनयनं सूनोः पुनः सांदीपनेः गुरोः मथुरायां निवसता यदु चक्रस्य यत् प्रियं कृतं उद्धव रामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ ३५ ॥

द्विजाः	- ब्राह्मणों !	**निवसता**	- रहते हुए
सांदीपनेः गुरोः	- सांदीपनि गुरुके	**यदुचक्रस्य**	- यादव लोगोंका
मृतस्य सूनोः	- मरे हुए पुत्रको	**यत् प्रियं**	- जो प्रिय
पुनः आनयनं	- फिर लौटा लाना,	**उद्धव रामाभ्यां**	- उद्धव तथा बलरामको
मथुरायां	- मथुरामें	**युतेन**	- साथ लेकर
		हरिणा	- श्रीहरिने किया ॥३५॥

जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ।
घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥

जरासन्ध सम आनीत सैन्यस्य बहुशः वधः घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥

जरासन्ध	- जरासन्ध द्वारा	**यवनेन्द्रस्य**	- यवनराज (कालयवन) को
सम आनीत	- साथ लायी	**घातनं**	- मरवा देना,
बहुशः	- अनेक बारकी	**कुशस्थल्या**	- द्वारिकापुरीको
सैन्यस्य वधः	- सेनाओंका वध करना,	**निवेशनं**	- बसा देना ॥ ३६ ॥

आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ।
रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥

आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुर आलयात् रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतः हरेः ॥ ३७ ॥

सुर आलयात्	- देवताओंके भवन (स्वर्ग) से	**युद्धे द्विषतः**	- युद्धमें शत्रुओंको
		प्रमथ्य	- मथ (रौंद) कर
पारिजातस्य	- कल्पवृक्ष तथा	**हरेः**	- श्रीहरिका
सुधर्मायाः	- सुधर्मा सभाको	**रुक्मिण्या**	- रुक्मिणीको
आदानं	- ले आना,	**हरणं**	- हरण करना ॥ ३७ ॥

हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ।
प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुज कृन्तनं प्राक्ज्योतिष पतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

युद्धे हरस्य	- युद्धमें शंकरजीको	**प्राक्ज्योतिष**	- प्राक् ज्योतिषपुरके
जृम्भणं	- जम्हाई लेता बनना,	**पतिं**	- स्वामी (भौमासुर) को
बाणस्य	- बाणासुरकी	**हत्वा**	- मारकर
भुजकृन्तनं	- भुजायें काटना,	**कन्यानां**	- कन्याओंका
		च यत् हरणं	- तो जो ले आना है ॥ ३८ ॥

चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानां दन्तवक्त्रस्य दुर्मतेः ।
शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥

चैद्य पौण्ड्रक शाल्वानां दन्तवक्त्रस्य दुर्मतेः शम्बरः द्विविदः पीठः मुरः पञ्चजन आदयः ॥ ३९ ॥

चैद्य पौण्ड्रक	- शिशुपाल, पौण्ड्रक,	**शम्बरः**	- शम्बरासुर,
शाल्वानां	- शाल्व,	**द्विविदः**	- वानर द्विविद,
दुर्मतेः	- दुर्बुद्धि	**पीठः मुरः**	- पीठ, मुर,
दन्तवक्त्रस्य	- दन्तवक्त्र,	**पञ्चजन**	- शंखासुर
		आदयः	- आदि ॥ ३९ ॥

माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ।
भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४० ॥

माहात्म्यं च वधः तेषां वाराणस्याः च दाहनं भार अवतरणं भूमेः निमित्ती कृत्य पाण्डवान् ॥ ४० ॥

तेषां माहात्म्यं	- इन सबकी महिमा	**पाण्डवान्**	- पाण्डवोंको
च वधः	- तथा वध,	**निमित्तीकृत्य**	- निमित्त बनाकर
च वाराणस्याः	- और वाराणसीका	**भूमेः**	- पृथ्वीका
दाहनं	- जलाया जाना,	**भार अवतरणं**	- भार उतारना ॥४०॥

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ।
उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥

विप्रशाप अपदेशेन संहारः स्वकुलस्य च उद्धवस्य च संवादः वासुदेवस्य च अद्भुतः ॥ ४१ ॥

विप्रशाप	- ब्राह्मणोंके शापके	**उद्धवस्य च**	- उद्धवका तथा
अपदेशेन	- बहानेसे	**वासुदेवस्य**	- वासुदेवका
स्वकुलस्य च	- अपने कुलका भी	**अद्‌भुतः**	- अद्‌भुत
संहारः	- संहार,	**संवादः**	- संवाद ॥ ४१ ॥

यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ।
ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥

यत्र आत्म विद्या हि अखिला प्रोक्ता धर्म विनिर्णयः ततः मर्त्य परित्याग आत्मयोग अनुभावतः ॥ ४२ ॥

यत्र-	- जिसमें सम्पूर्ण ही	**प्रोक्ता**	- कहा गया है,
अखिला हि		**ततः**	- फिर
आत्मविद्या	- अध्यात्म ज्ञान तथा	**आत्मयोग**	- अपने योगके
धर्म विनिर्णयः	- धर्मका ठीक निर्णय	**अनुभावतः**	- प्रभावसे
		मर्त्य परित्याग	- मनुष्य लोक त्याग देना ॥ ४२ ॥

युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुप्लवः ।
चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥

युग लक्षण वृत्तिः च कलौ नृणां उप्लवः चतुर्विधः च प्रलयः उत्पत्तिः त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥

युग लक्षण	- युगोंके लक्षण	**च चतुर्विधः**	- और चार प्रकारकी
च वृत्तिः	- तथा व्यवहार,	**प्रलयः तथा**	- प्रलय तथा
कलौ नृणां	- कलियुगके मनुष्योंकी	**त्रिविधा**	- तीन प्रकारकी
उप्लवः	- विपरीत स्थिति,	**उत्पत्तिः**	- उत्पत्ति ॥ ४३ ॥

देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ।
शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ।
महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ ४४ ॥

देहत्यागः च राजर्षेः विष्णुरातस्य धीमतः शाखा प्रणयनं ऋषेः मार्कण्डेयस्य सत् कथा महापुरुष विन्यासः सूर्यस्य जगत् आत्मनः ॥ ४४ ॥

धीमतः	- बुद्धिमान्	**मार्कण्डेयस्य**	- मार्कण्डेय जी की
राजर्षेः	- राजर्षि	**सत् कथा**	- श्रेष्ठ कथा,
विष्णुरातस्य	- परीक्षितका	**महापुरुष**	- विराट् पुरुषकी तथा
देहत्यागः	- शरीर-त्याग,	**जगत् आत्मनः**	- विश्वात्मा
च ऋषेः	- तथा ऋषियों द्वारा	**सूर्यस्य**	- सूर्यकी
शाखा प्रणयनं	- वेद शाखाओंका निर्माण,	**विन्यासः**	- विशेष स्थिति ॥४४॥

इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः ।
लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥

इति च उक्तं द्विज श्रेष्ठा यत् पृष्टः अहं इह अस्मि वः लीला अवतार कर्माणि कीर्तितानि इह सर्वशः ॥ ४५ ॥

द्विज श्रेष्ठा	- विप्रवरो !	**इह सर्वशः**	- इस (पुराण) में सभी
वः इह यत्	- आप लोगोंने यहां जो	**लीला अवतार**	- (भगवानके) लीला अवतारोंके
पृष्टः	- पूछा था		
इति च	- इस प्रकार	**कर्माणि**	- कर्मोंका
अहं उक्तं अस्मि	- मैंने कह दिया है,	**कीर्तितानि**	- वर्णन हुआ है ॥४५॥

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥

पतितः स्खलितः च आर्तः क्षुत्त्वा वा विवशः ब्रुवन् हरये नम इति उच्चैः मुच्यते सर्वपातकात् पुमान् न अर्हति यातनाम् ॥ ४६ ॥

पतितः	- गिरते हुए,	**उच्चैः**	- उच्च स्वरसे
स्खलितः	- फिसलते हुए	**हरये नम**	- हरये नमः
च आर्तः	- तथा पीड़ित होकर	**इति ब्रुवन्**	- यह बोलने पर
वा क्षुत्त्वा	- अथवा छींकते समय	**पुमान्**	- पुरुष
विवशः	- (किसी प्रकार) विवश होकर	**यातनां**	- नरकयोगके
		अर्हति न	- योग्य नहीं रहता ॥४६॥

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमवातिवातः ॥ ४७ ॥

संकीर्त्यमानः भगवान् अनन्तः श्रुत अनुभावः व्यसनं हि पुंसां प्रविश्य चित्तं विधुनोति अशेषं यथा तमः अर्कः अभ्रं इव अतिवातः ॥ ४७ ॥

भगवान्	- भगवान	**हि अशेषं**	- क्योंकि सम्पूर्ण
अनन्तः	- अनन्त (श्रीहरि)	**व्यसनं**	- दुःखोंको (ऐसे)
संकीर्त्यमानः	- (अपने नाम गुणादिका) कीर्तन करनेपर	**विधुनोति**	- नष्ट कर देते हैं
		यथा अर्कः	- जैसे सूर्य
श्रुत अनुभावः	- (या अपनी) महिमा श्रवण करनेपर	**तमः**	- अन्धकारको,
		अभ्रं	- या मेघको
पुंसां चित्तं	- (भक्त) पुरुषके हृदयमें	**अतिवातः इव**	- या मेघको आंधीके समान ॥ ४७ ॥
प्रविश्य	- प्रवेश करके		

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥

मृषा गिरः ता हि असती असत् कथा न कथ्यते यत् भगवान् अधः अक्षजः तत् एव सत्यं तत् उह एव मंगलं तत् एव पुण्यं भगवत् गुण उदयम् ॥४८॥

ता गिरः	- वह वाणी	**भगवत्**	- भगवानके
मृषा हि	- है झूठी क्योंकि	**गुण उदयं**	- गुणोंका वर्णन (जिसमें है)
असत् कथा	- असत् (संसार) की चर्चा	**तत् एव सत्यं**	- वही (वाणी) सत्य है
असती	- निरर्थक है,	**तत् उह एव**	- वह निश्चय ही
यत् भगवान्	- जिसमें भगवान	**मंगलं**	- मंगलकारिणी है
अधः अक्षजः	- इन्द्रियातीत (हृषीकेश) का	**तत् एव पुण्यं**	- वही पवित्र है ॥ ४८ ॥
कथ्यते न	- वर्णन नहीं है,		

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥

तत् एव रम्यं रुचिरं नवं नवं तत् एव शश्वत् मनसः महा उत्सवं तत् एव शोक अर्णव शोषणं नृणां यत् उत्तमश्लोक यशः अनुगीयते ॥ ४९ ॥

तत् एव	- वही (वाणी)	**तत् एवं नृणां**	- वही मनुष्योंके
रम्यं	- रमणीय	**शोक अर्णव**	- शोक-सिन्धुको
नवं नवं रुचिरं	- नित्य नूतन मनोहर	**शोषणं**	- सुखा देने वाली है
तत् एव	- वही	**यत् उत्तमश्लोक**	- जिसमें पवित्र कीर्ति
शश्वत्	- सदा	**यशः**	- (भगवान) का यश
मनसः महा-उत्सवं	- मनको परमानन्ददायी	**अनुगीयते**	- बार-बार वर्णन किया जाता है ॥ ४९ ॥

न तद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद् ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥

न तत् वचः चित्रपदं हरेः यशः जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् तत् ध्वाङ्क्ष तीर्थं न तु हंस सेवितं यत्र अच्युतः तत्र हि साधवः अमलाः ॥ ५० ॥

जगत् पवित्रं	- संसारको पवित्र करनेवाला	**ध्वाङ्क्ष तीर्थं**	- कौओंका तीर्थ है,
हरेः यशः	- श्रीहरिका सुयश	**तत् हंस**	- वह हंसोंसे
कर्हिचित्	- कभी भी	**सेवितं न तु**	- सेवित नहीं ही है,
प्रगृणीत	- उत्कर्षसे वर्णित	**हि यत्र**	- क्योंकि जहां
न तत् वचः	- नहीं हुआ वह वाणी	**अच्युतः**	- अच्युत हैं
चित्रपदं	- विचित्र पदों वाली होनेपर भी	**तत्र अमलाः**	- वहीं निर्मल
		साधवः	- साधुजन रहते हैं ॥५०॥

स वाग्विसर्गो जनताघसंप्लवो
यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥

स वाक् विसर्गः जनता अघ संप्लवः यस्मिन् प्रतिश्लोकं अबद्ध वति अपि नामानि अनन्तस्य यशः अंकितानि यत् शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥

यस्मिन्	- जिसमें	**जनता**	- लोगोंके
प्रतिश्लोकं	- प्रत्येक श्लोकमें	**अघ सम्प्लवः**	- पापोंकी प्रलय (नाश) कर देना है
अबद्धवति अपि	- अव्यवस्थित होनेपर भी		

अनन्तस्य	- भगवान अनन्तके	**यत् साधवः**	- क्योंकि सत्पुरुष
यशः अंकितानि	- यशके सूचक	**शृण्वन्ति**	- (उसे) सुनते,
नामानि	- नाम हैं	**गायन्ति**	- गाते,
स वाक्-विसर्गः	- उस वाणीको बोलना	**गृणन्ति**	- वर्णन करते हैं ॥५१॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

नैष्कर्म्यं अपि अच्युत भाव वर्जितं न शोभते ज्ञानं अलं निरञ्जनं कुतः पुनः शश्वत् अभद्रं ईश्वरे न हि अर्पितं कर्म यदपि अनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

अच्युत भाव	- भगवान अच्युतकी भक्तिसे	**पुनः शश्वत्-अभद्रं**	- फिर सदा अमंगल रूप
वर्जितं	- रहित	**यदपि अनुत्तमं**	- भले बहुत उत्तम हो,
नैष्कर्म्यं	- मोक्षदाता	**ईश्वरे अर्पितं**	- ईश्वरको समर्पित
निरञ्जनं	- निर्मल	**न हि कर्म**	- नहीं किये गये कर्मकी
ज्ञानं अपि	- ज्ञान भी	**कुतः**	- क्या चर्चा (वह कैसे शोभित होगा) ॥५२॥
अलं न शोभते	- भरपूर शोभा नहीं देता		

यशःश्रियामेव परिश्रमः परो
वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ।
अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयो-
र्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥

यशः श्रियां एव परिश्रमः परः वर्ण आश्रम आचार तपः श्रुत आदिषु अविस्मृतिः श्रीधर पादपद्मयोः गुण अनुवाद श्रवण आदिभिः हरेः ॥ ५३ ॥

वर्ण आश्रम	- वर्ण-आश्रमके	**हरेः गुण**	- (किन्तु) श्रीहरिके गुणोंका
आचार	- आचरोंका पालन,	**अनुवाद श्रवण**	- वर्णन, श्रवण
तपः श्रुतआदिषु	- तपस्या, वेदध्ययन आदिमें	**आदिभिः**	- आदिसे
		श्रीधर	- भगवान् लक्ष्मी निवासके
परिश्रमः	- परिश्रम करना	**पादपद्मयोः**	- चरण कमलोंकी
यशः श्रियां	- यश और धन	**अविस्मृतिः**	- विस्मृति नहीं होती
एव परः	- हीके परायण (देने वाले) हैं,		॥ ५३ ॥

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५४ ॥

अविस्मृतिः कृष्ण पदारविन्दयोः क्षिणोति अभद्राणि शमं तनोति च सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्म भक्तिं ज्ञानं च विज्ञान विराग युक्तम् ॥ ५४ ॥

कृष्ण	- श्रीकृष्णके	**सत्त्वस्य शुद्धिं**	- अन्तःकरणकी शुद्धि,
पदारविन्दयोः	- चरणारविन्दोंकी	**परमात्म भक्तिं**	- परमात्माकी भक्ति,
अविस्मृतिः	- विस्मृति न होना (अविचल)	**च विज्ञान**	- एवं विज्ञान,
		विरागयुक्तं	- वैराग्य युक्त
अभद्राणि	- अमंगलों (पापों) को	**ज्ञानं तनोति**	- ज्ञानका विस्तार करती है
क्षिणोति	- नष्ट कर देती है		॥ ५४ ॥
च शमं	- तथा शान्ति,		

यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा
यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ।
नारायणं देवमदेवमीश-
मजस्त्रभावा भजताविवेश्य ॥ ५५ ॥

यूयं द्विज अग्र्या बत भूरिभागा यत् शश्वत् आत्मनि अखिल आत्मभूतं नारायणं देवं अदेवं ईशं अजस्र भावा भजत आविवेश्य ॥ ५५ ॥

द्विज अग्र्या	- विप्रवरो !	**अखिल**	- सबके
बत यूयं	- अहो, आप लोग	**आत्मभूतं**	- आत्मस्वरूप
भूरिभागा	- बड़ भागी हैं	**देवं नारायणं**	- सर्वाराध्य नारायणमें
यत्	- क्योंकि	**आत्मनि आविवेश्य**	- चित्त प्रविष्ट करके
अदेवं ईशं	- जिनका कोई देवता (प्रकाशक एवं आराध्य) नहीं उन सर्वेश्वर	**शश्वत्**	- निरन्तर
		अजस्रभावा	- अखण्डभावसे
		भजत	- भजन करते हैं ।५५।

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं
श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ।
प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः
सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षि वक्त्रात् प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदसियृऋषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥

नृपतेः	- राजा	**शृण्वतां**	- सुनते हुए
परीक्षितः	- परीक्षितके	**परमर्षि-**	- परमर्षि शुकदेवजीके
प्रायोपवेशे	- आमरण अनशनके समय	**वक्त्रात्**	मुखसे
ऋषीणां सदसि	- ऋषियोंकी सभामें	**पुरा मे**	- पहिले मेरे
महतां च	- उन महात्माओंके भी	**श्रुतं आत्मतत्त्वं**	- सुने हुए आत्मतत्त्वको
		अहं च	- मुझे भी (आप लोगोंने)
		संस्मारित	- स्मरण करा दिया ।।५६।।

एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ।
माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥

एतत् वः कथितं विप्राः कथनीय उरुकर्मणः माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्व अशुभ विनाशनम् ॥ ५७ ॥

विप्राः	- ब्राह्मणों !	**उरुकर्मणः**	- अनन्त कर्मा
एतत्	- यह	**वासुदेवस्य**	- भगवान वासुदेवकी
सर्व अशुभ	- समस्त अशुभ (संकारों) को	**माहात्म्यं**	- महिमा
विनाशनं	- विनाश करने वाली	**वः कथितं**	- आप लोगोंसे कही
कथनीय	- वर्णन करने योग्य		॥ ५७ ॥

य एवं श्रावयेन्नित्यं यामक्षणमनन्यधीः ।
श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात् पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

य एवं श्रावयेत् नित्यं याम क्षणं अनन्यधीः श्रद्धावान् यः अनुशृणुयात् पुनाति आत्मानं एव सः ॥ ५८ ॥

य एवं	- जो इस प्रकार	**नित्यं श्रावयेत्**	- प्रतिदिन सुनाता है
श्रद्धावान्	- श्रद्धालु होकर	**यः अनुशृणुयात्**	- और जो बार-बार सुनता है
यामक्षणं	- एक प्रहर या एक क्षण भी	**सः आत्मानं एव**	- वह अपने को ही
अनन्यधीः	- एकाग्र बुद्धिसे	**पुनाति**	- पवित्र करता है ॥५८॥

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान् भवेत् ।
पठत्यनश्नन् प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥

द्वादश्यां एकादश्यां वा शृणुयात् आयुष्वान् भवेत् पठति अनश्नन् प्रयतः ततः भवति अपातकी ॥ ५९ ॥

द्वादश्यां	- द्वादशीको	**अनश्नन्**	- बिना कुछ खाये
वा एकादश्यां	- अथवा एकादशीको	**प्रयतः**	- एकाग्र होकर
शृणुयात्	- श्रवण करके	**पठति**	- जो पाठ करता है
आयुष्वान	- दीर्घायुवाला	**ततः अपातकी**	- फिर (वह) निष्पाप
भवेत्	- होजाता है,	**भवति**	- हो जाता है ॥ ५९ ॥

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ।
उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यत् आत्मवान् उपोष्य संहितां एतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥

पुष्करे - पुष्कर क्षेत्रमें,
मथुरायां - मथुरामें,
च द्वारवत्यां - तथा द्वारिकामें
यत् आत्मवान् - इन्द्रिय संयमपूर्वक
उपोष्य - उपवास करके
एतां संहितां - इस (भागवत) संहिताका
पठित्वा - पाठ करके
भयात् - (मनुष्य) सब भयोंसे
मुच्यते - छूट जाता है ॥ ६० ॥

देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ।
यच्छन्ति कामान् गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥

देवता मुनयः सिद्धाः पितरः मनवः नृपाः यच्छन्ति कामान् गृणतः शृण्वतः यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥

यस्य - जिस (भागवत) के
कीर्तनात् - कीर्तन करनेसे,
गृणतः - पाठ करनेसे,
शृण्वतः - श्रवण करनेसे
देवता मुनयः - देवता, मुनिगण,
सिद्धाः पितरः - सिद्ध, पितृगण,
मनवः नृपाः - मनु और राजा लोग
कामान् - अभिलाषायें
यच्छन्ति - प्रदान करते हैं ॥६१॥

ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते ।
मधुकुल्या घृतकुल्याः पयः कुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥

ऋचः यजूंषि सामानि द्विजः अधीत्य अनुविन्दते मधुकुल्या घृतकुल्याः पयः कुल्याः च तत् फलम् ॥ ६२ ॥

ऋचः	- ऋग्वेद,	**पयः कुल्याः**	- पयः कुल्या (मधु, घी एवं दूधकी नदियां परलोकमें)
यजूंषि	- यजुर्वेद	**विन्दते**	- प्राप्त करता है,
सामानि	- सामवेदका	**तत् फलं**	- वह फल (भागवतसे पाता है ।) ॥ ६२ ॥
अधीत्य द्विजः	- अध्ययन करके ब्राह्मण		
मधुकुल्या	- मधुकुल्या,		
घृतकुल्या	- घृतकुल्या,		

पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः ।
प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥

पुराण संहितां एतां अधीत्य प्रयतः द्विजः प्रोक्तं भगवता यत् तु तत् पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥

द्विजः	- ब्राह्मण	**यत् तु भगवता**	- जिसका तो भगवानने
एतां	- इस (भागवत)	**प्रोक्तं**	- वर्णन किया है,
पुराण संहितां	- पुराण संहिताका	**तत् परमं पदं**	- उस परमपदको
प्रयतः	- संयमपूर्वक	**व्रजेत्**	- जाता है ॥ ६३ ॥
अधीत्य	- अध्ययन करके		

विप्रोऽधीत्याप्नुयात् प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ।
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात् ॥ ६ ॥

विप्रः अधीत्य आप्नुयात् प्रज्ञां राजन्यः उदधि मेखलां वैश्यः निधि पतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत् पातकात् ॥ ६४ ॥

विप्रः अधीत्य	- ब्राह्मण (इसका) अध्ययन करके	**वैश्यः**	- वैश्य
प्रज्ञां	- निर्मल प्रतिभा,	**निधि पतित्वं**	- कुबेरका पद
राजन्यः	- क्षत्रिय	**आप्नुयात्**	- प्राप्त करता है और
उदधि मेखलां	- समुद्रसे घिरा भूमण्डल,	**शूद्रः**	- शूद्र
		पातकात्	- पापोंसे
		शुद्ध्येत्	- शुद्ध होजाता है ॥६४॥

कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो
हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥

कलिमल संहति कालनः अखिलेशः हरिः इतर अत्र न गीयते हि अभीक्ष्णं इह तु पुनः भगवान् अशेष मूर्तिः परिपठितः अनुपदं कथा प्रसंगैः ॥ ६५ ॥

कलिमल - कलियुगके दोषोंकी
संहति - राशिको
कालनः - नाश करनेवाले
अखिलेशः - सर्वेश्वर
हरिः - श्रीहरि
अत्र इतर - इस (भागवत) से भिन्न कहीं
हि अभीक्ष्णं - क्योंकि निरन्तर
न गीयते - नहीं वर्णित होते,
इह तु - यहां (इस पुराणमें) तो
अशेष मूर्तिः - सर्वस्वरूप
भगवान् - भगवान
कथा प्रसंगैः - कथा-प्रसंगों द्वारा
अनुपदं - प्रत्येक पदमें
पुनः-परिपठितः - बार-बार वर्णित हुए हैं ॥ ६५ ॥

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं
जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ।
द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यै
र्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥ ६६ ॥

तं अहं अजं अनन्तं आत्मतत्त्वं जगत् उदय स्थिति संयम आत्मशक्तिं द्युपतिभिः अज शक्र शंकराद्यैः दुरवसित स्तवं अच्युतं नतः अस्मि ॥ ६६ ॥

अजं	- अजन्मा,	**अज शक्र-शंकर आद्यैः**	- ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि
अनन्तं	- अनन्त,	**द्युपतिभिः**	- स्वर्गाधिपतियों द्वारा भी
आत्मतत्त्वं	- आत्मतत्त्व,	**स्तवं**	- (जिनकी) स्तुति
जगत्	- विश्वकी	**दुरवसित**	- ठीक नहीं होपाती
उदय स्थिति-संयम	- सृष्टि, स्थिति, प्रलयकी	**तं अच्युतं**	- उन अच्युतको
आत्म शक्तिं	- अपनी शक्तियों युक्त,	**अहं नतः-अस्मि**	- मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६६ ॥

उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्म-
न्युपरचितस्थिरजंगमालयाय ।
भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने
सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥

उपचित नव शक्तिभिः स्व आत्मनि उपरचित स्थिर जंगम आलयाय भगवत उपलब्धिमात्र धाम्ने सुर ऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥

नव शक्तिभिः	- (प्रकृति आदि) नव शक्तियों द्वारा	**उपरचित**	- निर्मित सा करके (स्वयं)
आत्मनि	- अपने भीतर	**उपलब्धिमात्र**	- अनुभवमात्र
स्थिर जंगम	- स्थावर-जंगम	**धाम्ने**	- स्वरूपवाले
आलयाय	- निवास (जगत)	**सुर ऋषभाय**	- देव श्रेष्ठ
उपचित	- कल्पित रूपसे	**सनातनाय**	- अविनाशी पुरुषको
		नमः	- नमस्कार ॥ ६७ ॥

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६८ ॥

स्वसुख निभृत चेताः तत् व्युदस्त अन्यभावः अपि अजित रुचिर लीला आकृष्ट सारः तदीयं व्यतनुत कृपया यः तत्त्वदीपं पुराणं तं अखिल वृजिनघ्नं व्यास सूनुं नतः अस्मि ॥ ६८ ॥

स्वसुख	- आत्मानन्दमें	**कृपया यः**	- फिर कृपापूर्वक जिन्होंने
निभृतचेताः	- निमग्न चित्त	**तत्त्वदीपं**	- तत्त्वके प्रकाशक
तत् अन्यभावः	- होनेसे अन्य (भेद) का भाव	**पुराणं**	- इस (भागवत) पुराणका
		व्यतनुत	- विस्तार किया
व्युदस्त	- निरस्त हो भाव जाने	**तं अखिल**	- उन समस्त
अपि	- पर भी	**वृजिनघ्नं**	- पाप-नाशक
अजित	- भगवान अजितकी	**व्याससूनुं**	- व्यास-नन्दन शुकदेवजीको
रुचिर लीला	- मनोहर लीलाओंसे	**नतः अस्मि**	- नमस्कार करता हूँ ॥ ६८ ॥
तदीयं	- उनका		
आकृष्ट सारः	- अन्तःकरण आकर्षित होगया		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

यं ब्रह्मा वरुण इन्द्र रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः वेदैः साङ्ग पदक्रम उपनिषदैः गायन्ति यं सामगाः ध्यान अवस्थित तत् गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः यस्य अन्तं न विदुः सुर असुर गणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

ब्रह्मा वरुण	- ब्रह्मा, वरुण,
इन्द्र रुद्र	- इन्द्र, रुद्र,
मरुतः	- मरुद्गण
दिव्यैः स्तवैः	- दिव्य स्तोत्रोंसे
यं स्तुन्वन्ति	- जिनकी स्तुति करते हैं,
सामगाः	- सामगान करने वाले (ऋषि)
साङ्गवेदैः	- वेदके अंगों,
पदक्रम	- पद, क्रम,
उपनिषदैः	- उपनिषदों द्वारा
यं गायन्ति	- जिनका गान करते हैं
योगिनः	- योगी लोग
ध्यान अवस्थित	- ध्यानमें स्थित
तत् गतेन-मनसा	उनमें लगे चित्तसे
यं ध्यायन्ति	- जिनका ध्यान करते हैं
सुर असुर गणा	- देवता तथा असुर लोग
यस्य अन्तं	- जिनकी महिमाका अन्त
न विदुः	- नहीं जानते
तस्मै देवाय नमः	- उन परमाराध्यको नमस्कार ॥ १ ॥

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ।

यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिभेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥

पृष्ठे भ्राम्यत् अमन्द मन्दर गिरि ग्रावाग्र कण्डूयनात् निद्रालोः कमठ आकृतेः भगवतः श्वास अनिलाः पान्तु वः यत् संस्कार कला अनुवर्तनवशात् वेला निभेन अम्भसां यात आयातं अतन्द्रितं जलनिधेः न अद्य अपि विश्राम्यति ॥ २ ॥

अमन्द	- बिना शिथिल हुए	**यत् संस्कार**	- जिसके अंशमात्र
मन्दर गिरि	- मन्दराचलके	**कला**	संस्कारका
पृष्ठे भ्राम्यत्	- पीठपर घूमनेसे	**अनुवर्तन**	- अनुकरण
ग्रावाग्र	- पीठके अगले भागके	**वशात्**	- करनेके कारण
कण्डूयनात्	- खुजलाये जानेसे	**वेला निभेन**	- तटके समीप तक
निद्रालोः	- ऊँघते हुए	**अम्भसां**	- जलके
कमठ आकृतेः	- कच्छप रूप धारी	**यात आयातं**	- जाने-आनेमें
भगवतः	- भगवानकी	**अतन्द्रितं**	- अविराम लगा
श्वासानिलाः	- (वह) श्वास वायु	**जलनिधेः**	- समुद्र
वः पान्तु	- आप सबकी रक्षा करे	**अद्य अपि**	- अब तक भी
		विश्राम्यति न	- विश्राम नहीं करता ॥२॥

पुराणसंख्यासम्भूतिमस्य वाच्यप्रयोजने ।
दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥

पुराण संख्या सम्भूतिं अस्य वाच्य प्रयोजने दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेः च निबोधत ॥ ३ ॥

पुराण संख्या	- पुराणोंकी (श्लोक) संख्या,	**दानं**	- (इसके) दानकी विधि
		दानस्य	- दानकी तथा
सम्भूतिं	- उनका जोड़	**पाठादेः च**	- पाठ करने मात्रकी
अस्य	- इस (भागवत)के	**माहात्म्यं**	- महिमा
वाच्य प्रयोजने	- पढ़नेका प्रयोजन,	**निबोधत**	- सुनिये ॥ ३ ॥

ब्राह्मं दशसहस्त्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च ।
श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ।। ४ ।।

ब्राह्मं दश सहस्राणि पाद्मं पञ्च अनषष्टि च श्री वैष्णवं त्रयः विंशति चतुः विंशति शैवकम् ।। ४ ।।

ब्राह्मं	- ब्रह्मपुराण	**श्री वैष्णवं**	- श्री विष्णु पुराण
दश सहस्राणि	- दस सहस्र श्लोकका है	**त्रयः विंशति**	- तेईस सहस्र श्लोकका
पाद्मं	- पद्मपुराण	**च शैवकं**	- तथा शिवपुराण
पञ्च अन	- पांचकम	**चतुर्विंशति**	- चौबीस सहस्र श्लोकों का
षष्टि	- साठ (पचपन हजार) का,		है ।। ४ ।।

दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः ।
मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुःशतम् ।। ५ ।।

दश अष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्च विंशतिः **मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुः शतम् ।। ५ ।।**

श्री भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**मार्कण्डं**	- मार्कण्डेय पुराण
दश अष्टौ	- अठारह सहस्र श्लोकका	**नव**	- नौ सहस्र श्लोकका
नारदं	- नारदीय पुराण	**च वाह्नं**	- तथा अग्नि पुराण
पञ्चविंशतिः	- पच्चीस सहस्र श्लोकका	**दशपञ्च**	- पन्द्रह सहस्र
		चतुः शतं	- चार सौ श्लोकोंका है ।। ५ ।।

चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ।
दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ।। ६ ।।

चतुर्दश भविष्यं स्यात् तथा पञ्च शतानि च दश अष्टौ ब्रह्म वैवर्तं लिंगं एकादश एव तु ।। ६ ।।

भविष्यं	- भविष्य पुराण	ब्रह्मवैवर्तं	- ब्रह्मवैवर्त पुराण
चतुर्दश	- चौदह सहस्र	दश अष्टौ	- अठारह सहस्र श्लोकका,
तथा च	- और	लिङ्ग तु	- लिंग पुराण तो
पञ्चशतानि	- पांच सौ श्लोकोंका,	एकादश एव	- ग्यारह सहस्र ही श्लोकोंका है ॥ ६ ॥

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्त्रकम् ।
स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥

चतुर्विंशति वाराहं एकाशीति सहस्रकं स्कान्दं शतं तथा च एकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥

वाराहं	- वाराह पुराण	सहस्रकं	- सहस्र
चतुर्विंशति	- चौबीस सहस्र श्लोकका	शतं	- सौ श्लोकों की है,
स्कान्दं	- स्कन्दपुराण	वामनं	- वामन पुराण
एक अशीति	- इक्यासी	दश कीर्तितं	- दस सहस्र श्लोकोंका कहा गया है ॥ ७ ॥

कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ।
एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥

कौर्मं सप्तदश आख्यातं मात्स्यं तत् तु चतुर्दश एक अनविंशत् सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादश एव तु ॥ ८ ॥

कौर्मं	- कूर्म पुराण	सौपर्णं	- गरुड़पुराण
सप्तदश-	- सत्रह हजार	एक अन-	- उन्नीस सहस्र श्लोकोंका
आख्यातं	श्लोकोंका प्रसिद्ध है,	विंशत्	
तत् मात्स्यं तु	- वह मत्स्यपुराण तो	ब्रह्माण्डं तु	- ब्रह्माण्ड पुराण तो
चतुर्दश	- चौदह सहस्र श्लोकोंका,	द्वादश एव	- बारह सहस्र श्लोकोंका ही है ॥ ८ ॥

एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ।
तत्राष्टादशसाहस्त्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥ ९ ॥

एवं पुराण संदोहः चतुःलक्ष उदाहृतः तत्र अष्टादश साहस्रं श्री भागवतं इष्यते ॥ ९ ॥

एवं पुराण	- इस प्रकार पुराणोंकी	**तत्र**	- उसमें
संदोहः	- निचोड़ (टोटल) श्लोक संख्या	**अष्टादश**	- अठारह
		साहस्रं	- सहस्र श्लोकोंका
चतुः लक्ष	- चार लाख	**श्रीभागवतं**	- श्रीमद्भागवत
उदाहृतः	- कही गयी है,	**इष्यते**	- कहा जा चुका है ॥९॥

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ।
स्थिताय भवभीताय कारुण्यात् सम्प्रकाशितम् ॥ १० ॥

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे स्थिताय भव भीताय कारुण्यात् सम्प्रकाशितम् ॥ १० ॥

इदं भगवता	- इस भागवतको	**भव भीताय**	- संसारसे भयभीत
पूर्वं	- पहिले	**ब्रह्मणे**	- ब्रह्माजीको (नारायण) ने
नाभिपंकजे	- अपने नाभिकमलपर	**सम्प्रकाशितं**	- प्रकाशित (प्रदान) किया ॥ १० ॥
स्थिताय	- बैठे हुए		

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥ ११ ॥

आदि मध्य अवसानेषु वैराग्य आख्यान संयुतं हरिलीला कथा व्रात अमृत आनन्दित सत् सुरम् ॥ ११ ॥

आदि मध्य - आरम्भ, मध्य तथा
अवसानेषु - अन्तमें
वैराग्य आख्यान- वैराग्यप्रद कथाओंसे
संयुतं - युक्त
सत् सुरं - संतों एवं देवताओंको
अमृत- - अमृतके समान
आनन्दित आनन्ददायी
हरिलीला - श्रीहरिकी लीला
कथा व्रात - कथाओंसे सुशोभित है ॥ ११ ॥

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२ ॥

सर्व वेदान्त सारं यत् ब्रह्म आत्म एकत्व लक्षणं वस्तु अद्वितीयं तत् निष्ठं कैवल्य एक प्रयोजनम् ॥ १२ ॥

सर्व वेदान्त - सब वेदान्तोंका
सारं यत् - सार जो
ब्रह्म आत्म - ब्रह्म और आत्माकी
एकत्व लक्षणं - एकता स्वरूप
अद्वितीयं वस्तु - अद्वितीय तत्त्व है
तत् निष्ठं - उसका प्रतिपादन करने वाला (यह ग्रन्थ) है
कैवल्य एक - (इसका) एकमात्र कैवल्य (मोक्ष)
प्रयोजनं - प्रयोजन है ॥ १२ ॥

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ।
ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंह समन्वितं ददाति यः भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

प्रौष्ठपद्यां - भाद्रपद मासकी
पौर्णमास्यां - पूर्णिमाको
हेमसिंह - स्वर्णके बने सिंहके
समन्वितं - साथ
यः भागवतं - जो भागवतका
ददाति - दान करता है
स परमां गतिं- वह परमपद
याति - पहुँचता है ॥ १३ ॥

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ।
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥ १४ ॥

राजन्ते तावत् अन्यानि पुराणानि सतां गणे यावत् न दृश्यते साक्षात् श्रीमद्भागवतं परम् ॥ १४ ॥

सतां गणे - सत्पुरुषोंके समूहमें
तावत् अन्यानि - तबतक दूसरे
पुराणानि - पुराण
राजन्ते - शोभित् होते हैं
यावत् परं - जब तक सर्वश्रेष्ठ
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
न दृश्यते - नहीं दीखता ॥ १४ ॥

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥

सर्व वेदान्त सारं हि श्रीभागवतं इष्यते तत् रस अमृत तृप्तस्य न अन्यत्र स्यात् रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥

हि सर्ववेदान्त - क्योंकि सम्पूर्ण वेदान्तका
सारं श्रीभागवतं - सार श्रीमद्भागवतमें
इष्यते - कहा गया है (अतः)
तत् रस अमृत - उसके रसरूप अमृतसे
तृप्तस्य - तृप्त हुए की
क्वचित् - कभी भी
अन्यत्र रतिः - और कहीं प्रीति नहीं
न स्यात् होती ॥ १५ ॥

निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥

निम्नगानां यथा गंगा देवानां अच्युतः यथा वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानां इदं तथा ॥ १६ ॥

निम्नगानां - नदियोंमें
यथा गंगा - जैसे गंगाजी,
देवानां यथा - देवताओंमें जैसे
अच्युतः - अच्युत,
वैष्णवानां - विष्णुभक्तोंमें
यथा शम्भुः - जैसे शंकरजी (सर्वश्रेष्ठ हैं)
पुराणानां - पुराणोंमें
तथा इदं - वैसे यह (सर्वश्रेष्ठ) है ॥ १६ ॥

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥

क्षेत्राणां च एव सर्वेषां यथा काशी हि अनुत्तमा तथा पुराण व्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥

द्विजाः - विप्रवरो !
हि सर्वेषां एव - क्योंकि जैसे सभी ही
क्षेत्राणां च - तीर्थोंमें ही
काशी अनुत्तमा - काशी सर्वोत्तम है,
तथा पुराण व्रातानां - वैसे ही पुराण समूहमें
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत (सर्वोत्तम) है ॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥

श्रीमद्भागवतं पुराणं अमलं यत् वैष्णवानां प्रियं यस्मिन् पारमहंस्यं एकं अमलं ज्ञानं परं गीयते तत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यं आविष्कृतं तत् शृण्वन् विपठन् विचारण परः भक्त्या विमुच्येत् नरः ॥ १८ ॥

यत् वैष्णवानां	- जो भगवद्भक्तोंका	विराग भक्ति	- वैराग्य, भक्तिसे
प्रियं	- प्रिय है (वह)	सहितं	- युक्त
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	नैष्कर्म्यं	- (मोक्ष) निष्कर्मावस्था को
पुराणं अमलं	- पुराण निर्मल है,	आविष्कृतं	- प्रकट किया गया है,
यस्मिन्	- जिसमें	तत् शृण्वन्	- अतः उसको सुनकर,
पारमहंस्यं	- (जीवन्मुक्त) परमहंसोंके	विपठन्	- विशेष अध्ययन एवं
एकं अमलं	- एकमात्र निर्मल	विचारण परः	- मनन परायण
परं ज्ञानं	- सर्वश्रेष्ठ ज्ञानका	नरः	- मनुष्य
गीयते	- वर्णन है,	भक्त्या	- भक्तिके द्वारा
तत्र ज्ञान	- उसमें ज्ञान,	विमुच्येत्	- मुक्त होजाता है ॥१८॥

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्रताय कारुण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

कस्मै येन विभासितः अयं अतुलः ज्ञानप्रदीपः पुरा तत् रुपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तत् रूपिणा योगीन्द्राय तत् आत्मनाथ भगवद् राताय कारुण्यतः तत् शुद्धं विमलं विशोकं अमृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

अयं अतुलः	- यह अतुलनीय	तत् योगीन्द्राय	- उस (व्यास) रूपसे योगीन्द्र शुकदेवजीको,
ज्ञान प्रदीपः	- ज्ञान रूपी दीपकसे	आत्मनाथ	- फिर जिनके वही स्वामी थे उन (शुकदेवजी) ने
पुरा येन	- पहिले जिन्होंने	कारुण्यतः	- करुणावश
कस्मै विभासितः	- ब्रह्माजीको प्रकाशित किया	भगवद् राताय	- विष्णुरात परीक्षितको दिया
तत् रूपेण च	- फिर उसी (ब्रह्मा) रूपसे ही	तत् शुद्धं	- उन परमशुद्ध,

मुनये नारदाय - मुनि (देवर्षि) नारदको,
तत् रूपिणा - फिर उसी (नारद) रूपसे
कृष्णाय - कृष्णद्वैपायन व्यासजीको
विमलं विशोकं - निर्मल, शोकहीन,
अमृतं - अमृत स्वरूप
परं सत्यं - परम सत्यका
धीमहि - हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥

नमः तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥

तस्मै साक्षिणे - उन सर्वसाक्षी
भगवते - भगवान
वासुदेवाय - वासुदेवको
नमः - नमस्कार
यः मुमुक्षवे - जिन्होंने मोक्षकी इच्छा वाले
कस्मै इदं - ब्रह्माजीको इस (पुराण) का
व्याचचक्षे - उपदेश किया ॥ २० ॥

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥

योगीन्द्राय नमः तस्मै शुकाय ब्रह्म रूपिणे संसारसर्प दष्टं यः विष्णुरातं अमूमुचत् ॥ २१ ॥

ब्रह्मरूपिणे - ब्रह्मस्वरूप
तस्मै योगीन्द्राय - उन योगीन्द्र
शुकाय नमः - शुकदेवजीको नमस्कार
यः संसार - जिन्होंने संसार रूपी
सर्पदष्टं सर्पसे डंसे गये
विष्णुरातं - परीक्षितको
अमूमुचत् - मुक्त कर दिया ॥२१॥

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोः तव जायते तथा कुरुष्व देवेश नाथः त्वं नः यतः प्रभो ॥ २२ ॥

देवेश प्रभो - देवेश्वर स्वामी !
यतः त्वं - क्योंकि आप
नः नाथः - हमारे स्वामी हैं,
यथा तव- - जैस आपके चरणोंमें
पादयोः
भवे भवे - जन्म-जन्ममें
भक्तिः जायते - भक्ति उत्पन्न होती रहे,
तथा कुरुष्व - वैसी (कृपा) कीजिए
॥ २२ ॥

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥

नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पाप प्रणाशनं प्रणामः दुःख शमनः तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥

यस्य - जिनका
नाम संकीर्तनं - नाम-संकीर्तन
सर्व पाप - समस्त पापोंका
प्रणाशनं - नष्ट करने वाला है
दुःख शमनः - (उन) दुःखोंके नाशक को
प्रणामः - हम प्रणाम करते हैं,
तं परं - उन परमपुरुष
हरिं नमामि - श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ इति द्वादशः स्कन्धः सम्पूर्णः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ माहात्म्य ॥

माहात्म्योंके सम्बन्धमें

तेन इयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः

(माहात्म्य ३-३-६२)

श्रीमद्भागवत श्रीहरिकी प्रत्यक्ष वाणी रूप मूर्ति है ।

पहिला माहात्म्य- श्रीमद्भागवत ग्रन्थको घरमें रखने तथा ग्रन्थकी पूजा, सम्मान-सत्कारका माहात्म्य है ।

यह कल्याणके भागवतांकके प्रारम्भमें कहा गया है ।

दूसरा माहात्म्य- अद्भुत है (यह श्रीमद्भागवतके पाठ, श्रवण आदिका माहात्म्य है ।

इसमें कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेशको भी भागवतके आश्रयसे ही अपनी श्रेष्ठतम शक्ति प्राप्त हुई)

गीताप्रेसकी प्रतिमें यह अन्त (बारहों स्कन्धके बाद) में दिया है ।

तीसरा माहात्म्य- समाजमें यही सबसे अधिक प्रचलित है, किन्तु मुख्य रूपसे यह श्रीमद्भागवतके सप्ताह-श्रवणका माहात्म्य है)

गीताप्रेसकी प्रतिमें यह प्रारम्भमें दिया गया है । प्रायः अन्य प्रकाशकोंकी प्रतियोंके प्रारम्भमें भी यही माहात्म्य है ।

इस प्रकार तीनों माहात्म्योंकी अपनी-अपनी विशेषता है ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

[1]

[श्रीभगवान द्वारा ब्रह्माजीको उपदिष्ट]

स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड मार्गशीर्ष,
माहात्म्य अ-१६

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच-

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोक विश्रुतम् ।
शृणुयात् श्रद्धया युक्तः मम सन्तोष कारकम् ॥ १ ॥

श्रीमद्भागवतं नामपुराणं लोक विश्रुतं शृणुयात् श्रद्धया युक्तः मम सन्तोष कारकम् ॥ १ ॥

मम सन्तोष - मुझे सन्तुष्ट	**नाम पुराणं** - नामक पुराण
कारकं - करने वाला	**श्रद्धया युक्तः** - श्रद्धा सहित
लोक विश्रुतं - लोक प्रसिद्ध	**शृणुयात्** - श्रवण करे ॥ १ ॥
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत	

नित्यं भागवतं यः तु पुराणं पठते नरः ।
प्रति अक्षरं भवेत् तस्य कपिला दानजं फलम् ॥ २ ॥

नित्यं भागवतं यः तु पुराणं पठते नरः प्रति अक्षरं भवेत् तस्य कपिला दानजं फलं ॥ २ ॥

यः नरः तु - जो मनुष्य तो	**तस्य प्रति-** - उसे प्रत्येक अक्षरके
नित्यं - प्रतिदिन	**अक्षरं** साथ
भागवतं पुराणं - श्रीभागवत पुराणका	**कपिला दानजं** - कपिला गौ के दानसे
पठेत् - पाठ करता है,	होने वाला
	फलं भवेत् - फल होता है ॥ २ ॥

श्लोक अर्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवत उद्भवम् ।
पठते शृणुयात् यः तु गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ३ ॥

श्लोक अर्धं श्लोक पादं वा नित्यं भागवत उद्भवम् पठते शृणुयात् यः तु गो सहस्र फलं लभेत ॥ ३ ॥

भागवत उद्भवं	- भागवतसे उत्पन्न (याद किया)	**पठते**	- पढ़ता है या
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक	**शृणुयात्**	- सुनता है,
वा श्लोक पादं	- अथवा चौथाई श्लोक	**गो सहस्र**	- सहस्र गोदानका
यः तु नित्यं	- जो तो प्रतिदिन	**फलं लभेत्**	- फल पाता है ॥ ३ ॥

यः पठेत् प्रयतः नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ।
अष्टादश पुराणानां फलं आप्नोति मानवः ॥ ४ ॥

यः पठेत् प्रयतः नित्यं श्लोकं भागवतं सुत अष्टादश पुराणानां फलं आप्नोति मानवः ॥ ४ ॥

सुत	- पुत्र !	**अष्टादश**	- अठारहों
यः प्रयतः नित्यं		**पुराणानां**	- पुराणोंके (पाठका)
भागवतं श्लोकं	- भागवतके श्लोकका	**फलं आप्नोति**	- फल पाता है ॥ ४ ॥
पठेत्	- पाठ करता है		
मानवः	- (वह) मनुष्य		

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
कलि बाह्याः नराः ते वै ये अर्चयन्ति सदा मम ॥ ५ ॥

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठान्ति वैष्णवाः कलि बाह्याः नराः ते वै ये अर्चयन्ति सदा मम ॥ ५ ॥

यत्र नित्यं	- जहां प्रतिदिन	**वै ते नराः**	- निश्चय वे मनुष्य
मम कथा	- मेरी कथा होती है,	**ये मम-अर्चयन्ति**	- जो मेरी पूजा करते हैं
वैष्णवाः	- वैष्णव (भक्त)	**कलि बाह्याः**	- कलियुगके (शासनसे) बाहर हैं ॥ ५ ॥
तत्र तिष्ठन्ति	- वहीं रहते हैं,		

वैष्णवानां तु शास्त्राणि ये अर्चयन्ति गृहे नराः ।
सर्वपाप विनिर्मुक्ता भवन्ति सुखन्दिताः ॥ ६ ॥

वैष्णवानां तु शास्त्राणि ये अर्चयन्ति गृहे नराः सर्वपाप विनिर्मुक्ता भवन्ति सुख वन्दिताः ॥

गृहे ये नराः	- अपने घरमें जो मनुष्य	**सर्व पाप**	- (वे) सब पापोंसे
वैष्णवानां	- वैष्णव	**विनिर्मुक्ता**	- छूटकर
शास्त्राणि तु	- शास्त्रोंका तो	**सुखन्दिताः**	- देव वन्दित
अर्चयन्ति	- पूजन करते हैं	**भवन्ति**	- होजाते हैं ॥ ६ ॥

ये अर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
आस्फोटयन्ति वलान्ति तेषां प्रीतः भवामि अहम् ॥ ७ ॥

ये अर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ आस्फोटयन्ति वलान्ति तेषा अहं प्रीतः भवामि ॥ ७ ॥

ये गृहे	- जो अपने घरमें	**वलान्ति**	- कूदते हैं,
नित्यं भागवतं	- प्रतिदिन भागवत	**तेषां अहं**	- उनपर मैं
शास्त्रं अर्चयन्ति	- शास्त्रकी पूजा करते हैं	**प्रीतः भवामि**	- प्रसन्न होता हूँ ॥ ७ ॥
कलौ-	- (वे) कलियुगको ताल		
आस्फोटयन्ति	ठोंकते		

यावत् दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे ।
तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पि मधु उदकम् ॥ ८ ॥

यावत् दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पि मधु उदकं ॥ ८ ॥

हे पुत्र	- हे पुत्र !	**पितरः**	- (उसके) पितर
यावत् दिनानि	- जितने दिन तक	**क्षीरं सर्पि**	- दूध, घी,
गृहे भागवतं-	- (जिसके) घरमें भागवत	**मधु उदकं**	- मीठा जल
शास्त्रं	शास्त्र (रहता है)	**पिबन्ति**	- पीते हैं ॥ ८ ॥
तावत् दिनानि	- उतने दिन तक		

यच्छन्ति वैष्णवे भक्तया शास्त्रं भागवतं हि ये ।
कल्पकोटि सहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ ९ ॥

यच्छन्ति वैष्णवे भक्तया शास्त्रं भागवतं ये हि ते कोटि सहस्त्राणि कल्प मम लोके वसन्ति ॥ ९ ॥

ये हि वैष्णवे	- जो लोग वैष्णवको	**ते कोटि**	- वे करोड़ों
भक्तया	- भक्तिपूर्वक	**सहस्राणि कल्प**	- हजारों कल्पों तक
भागवतं शास्त्रं	- भागवतशास्त्रका	**मम लोके-**	- मेरे लोकमें निवास
यच्छन्ति	- दान करते हैं	**वसन्ति**	करते हैं ॥ ९ ॥

ये अर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ।
प्रीणिताः तैः च विबुधा यावत् आभूत संप्लवम् ॥ १० ॥

ये अर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः तैः च आभूत संप्लवं यावत् विबुधा प्रीणिताः ॥ १० ॥

ये नराः	- जो मनुष्य	**तैः च**	- उन्होंने तो
गेहे सदा	- अपने घरमें प्रतिदिन	**आभूत संप्लवं**	- तत्त्वोंकी महाप्रलय
भागवतं शास्त्रं	- भागवत शास्त्रकी	**यावत्**	- तकके लिए
अर्चयन्ति	- पूजा करते हैं	**विबुधा प्रीणिताः**	- देवताओंको तृप्त कर दिया ॥ १० ॥

श्लोक अर्धं श्लोक पादं वा वरं वरं भागवतं गृहे ।
शतशः अथ सहस्रैः च किं अन्यैः शास्त्र संगृहैः ॥ ११ ॥

श्लोक अर्धं श्नोक पादं वा वरं वरं भागवतं गृहे शतशः अथ सहस्रैः च किं अन्यैः शास्त्र संगृहैः ॥ ११ ॥

गृहे	- अपने घरमें	**वरं**	- (रहना) श्रेष्ठ है,
भागवतं	- भागवतका	**अन्यैः शतशः**	- दूसरे सैकड़ों
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक	**अथ च सहस्रैः**	- अथवा तो सहस्रों
वा श्लोक पादं	- अथवा चौथाई श्लोक	**शास्त्र संग्रहैः किं**	- शास्त्रोंके संग्रहसे क्या लाभ ॥ ११ ॥

न यत्र तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ ।
न तस्य पुरावृत्तिः याम्य पाशात् कदाचन ॥ १२ ॥

न यत्र तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ न तस्य पुरावृत्तिः याम्य पाशात् कदाचन ॥ १२ ॥

कलौ यत्र गृहे - कलियुगमें जहां घरमें
भागवतं शास्त्रं - भागवत शास्त्र
न तिष्ठते - नहीं रहता है
तस्य कदाचन - उसका कभी भी
याम्य पाशात् - यमराजके फन्दोंसे
पुरावृत्तिः न - छुटकारा नहीं होता ॥ १२ ॥

कथं स वैष्णवः ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ।
गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचात् अधिकः हि सः ॥ १३ ॥

कथं स वैष्णवः ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचात् अधिकः हि सः ॥ १३ ॥

यस्य गृहे - जिसके घरमें
कलौ भागवतं- - कलियुगमें भागवत
शास्त्रं शास्त्र
न तिष्ठते - नहीं रहता
स वैष्णवः - वह वैष्णव
कथं ज्ञेयः - कैसे जाना जाय
हि सः - क्योंकि वह तो
श्वपचात् - चाण्डालसे भी
अधिकः - अधिक है ॥ १३ ॥

सर्वस्वेन अपि लोकेशः कर्तव्यः शास्त्र संग्रहः ।
वैष्णवः तु सदा भक्तया तुष्टि अर्थं मम पुत्रक ॥ १४ ॥

सर्वस्वेन अपि लोकेशः कर्तव्यः शास्त्रः संग्रहः वैष्णवः तु सदा भक्तया तुष्टि अर्थं मम पुत्रक ॥ १४ ॥

पुत्रक लोकेशः - प्यारे पुत्र लोकेश ब्रह्मा !
वैष्णवः तु - वैष्णवको तो
भक्तया - भक्तिपूर्वक
मम तुष्टि अर्थं- मुझे सन्तुष्ट करनेके लिए
सर्वस्वेन अपि - सर्वस्व लगाकर भी
शास्त्र संग्रहः - (भागवत) शास्त्रका संग्रह
कर्तव्यः - करना चाहिए ॥ १४ ॥

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
तत्र तत्र सदा एव अहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ १५ ॥

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ तत्र तत्र सदा एव अहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ १५ ॥

कलौ यत्र यत्र - कलियुगमें जहां-जहां
पुण्यं भागवत-शास्त्रं - पवित्र भागवत शास्त्र
भवेत् - होता है,
सदा एव तत्र - सदा ही वहां वहां
त्रिदशैः सह - देवताओंके साथ
अहं भवामि - मैं रहता हूँ ॥ १५ ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदी नद सरांसि च ।
यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयः ॥ १६ ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदी नद सरांसि च । यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयः ॥ १६ ॥

सर्वाणि तीर्थानि - सभी तीर्थ
नदी नद च - नदियां, नद तथा
सरांसि - सरोवर,
यज्ञाः सप्तपुरी - यज्ञ, सातों पुरियां,
सर्वे पुण्याः - सब पवित्र
शिलोच्चयः - पर्वत
तत्र नित्यं - वहां सदा रहते हैं
॥ १६ ॥

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशः धर्म जय अर्थिना ।
पाप क्षय अर्थं लोकेश मोक्ष अर्थं धर्म बुद्धिना ॥ १७ ॥

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशः धर्म जय अर्थिना पाप क्षय अर्थं लोकेश मोक्ष अर्थं धर्म बुद्धिना ॥ १७ ॥

लोकेश - लोकेश ब्रह्मा !
हि यशः धर्म - क्योंकि यश, धर्म
जय अर्थिना - विजय चाहनेवालोंको,
पाप क्षय अर्थं - पाप-नाशके लिए,
मोक्ष अर्थं - तथा मोक्षके लिए
धर्म बुद्धिना - धर्म समझकर भी
मम शास्त्रं - मेरे शास्त्र (भागवत) का
श्रोतव्यं - श्रवण करना चाहिए
॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं आयुः आरोग्य पुष्टिदम् ।
पठनात् श्रवणात् वा अपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं आयुः आरोग्य पुष्टिदम् पठनात् श्रवणात् वा अपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

आयुः आरोग्य - दीर्घायु, आरोग्य,
पुष्टिदं - पुष्टिदाता
पुण्यं श्रीमद्भागवतं - पवित्र श्रीमद्भागवतके
पठनात् - पाठ करनेसे
वा श्रवणात् - अथवा श्रवण करनेसे भी
अपि
सर्व पापैः - सब पापोंसे
प्रमुच्यते - (मनुष्य) सर्वथा छूट जाता है ॥ १८ ॥

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ।
सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ १९ ॥

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ १९ ॥

लोकेश - लोकेश ब्रह्मा !
परं श्रीमद्भागवतं - सर्वोत्तम श्रीमद्भागवतको
शृण्वन्ति न - (जो) सुनते नहीं (सुनकर भी जो)
हृष्यन्ति न - प्रसन्न नहीं होते
हि सत्यं सत्यं - क्योंकि (यह बात) परम सत्य है कि
तेषां सदा - उनका सर्वदाको
स्वामी यमः - स्वामी यमराज हैं ॥ १९ ॥

न गच्छन्ति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ।
एकादश्यां विशेषेण न अस्ति पाप अपरः ततः ॥ २० ॥

न गच्छन्ति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत एकादश्यां विशेषेण न अस्ति पाप अपरः ततः ॥ २० ॥

सुत - पुत्र !
यदा मर्त्यः - जब मनुष्य
भागवतं श्रोतुं - भागवत सुननेके लिए
विशेषेण - विशेष रूपसे
एकादश्यां - एकादशीको
न गच्छन्ति - नहीं जाते तो
ततः अपरः - उससे (बड़ा) दूसरा
पाप न अस्ति - पाप नहीं है ॥ २० ॥

श्लोकं भागवतं च अपि श्लोक अर्धं पादं एव वा ।
लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसामि अहम् ॥ २१ ॥

श्लोकं भागवतं च अपि श्लोक अर्धं पादं एव वा लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसामि अहम् ॥ २१ ॥

यस्य गृहे	- जिसके घरमें	**वा पादं एव**	- अथवा चौथाई (श्लोक) ही
भागवतं श्लोकं	- भागवतका एक श्लोक	**लिखितं तिष्ठते**	- लिखा हुआ रहता है
च अर्ध अपि	- या आधा (श्लोक) भी	**तस्य अहं-वसामि**	- उसके घर मैं निवास करता हूँ ॥२१॥

सर्व आश्रम अभिगमनं सर्व तीर्थ अवगाहनम् ।
न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ २२ ॥

सर्व आश्रम अभिगमनं सर्व तीर्थ अवगाहनम् न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ २२ ॥

नृणां पावनं	- मनुष्यको पवित्र करनेवाला	**अभिगमनं**	- यात्रा कर लेना एवं
यथा श्रीमद्भागवतं	- जैसा श्रीमद्भागवत है,	**सर्व तीर्थ**	- सब तीर्थोंमें
तथा सर्व आश्रम	- वैसा सब क्षेत्रोंकी	**अवगाहनं न**	- स्नान कर लेना नहीं है ॥ २२ ॥

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ।
गच्छामि तत्र तत्र अहं गौः यथा सुत वत्सला ॥ २३ ॥

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् गच्छामि तत्र तत्र अहं गौः यथा सुत वत्सला ॥ २३ ॥

चतुर्वक्त्र	- चतुरानन ब्रह्मा !	**तत्र तत्र अहं**	- वहां वहां मैं
यत्र यत्र	- जहां-जहां	**यथा सुत-वत्सला गौः**	- जैसे पुत्रवत्सला गाय होती है
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**गच्छामि**	- जाता हूँ ॥ २३ ॥
भवेत्	- होती है		

मत् कथा वाचकं नित्यं मत् कथा श्रवणे रतम् ।
मत् कथा प्रीत मनसः न अहं त्यक्षामि तं नरम् ॥ २४ ॥

मत् कथा वाचकं नित्यं मत् कथा श्रवणे रतम् मत् कथा प्रीत मनसः न अहं त्यक्षामि तं नरम् ॥ २४ ॥

नित्यं मत् कथा	- प्रतिदिन मेरी कथा	**प्रीतमनसः**	- चित्त प्रसन्न होता है
वाचकं	- पढ़ता है,	**तं नरं अहं**	- उस मनुष्यको मैं
मत् कथा	- मेरी कथा	**नत्यक्षामि**	- नहीं छोड़ूँगा ॥ २४ ॥
श्रवणेरतं	- सुननेमें लगा रहता है,		
मत् कथा	- मेरी कथासे (जिसका)		

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा न उत्तिष्ठते हि यः ।
सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा न उत्तिष्ठते हि यः सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ २५ ॥

पुत्रक	- प्रियपुत्र !	**न उत्तिष्ठते**	- नहीं उठता है
पुण्यं श्रीमद्भागवतं	- पवित्र श्रीमद्भागवतको	**तस्य सांवत्सरं**	- उसके एक वर्षमें किये
		पुण्यं विलयं	- पुण्य नष्ट होजाते हैं
दृष्टवा हि यः	- देखकर भी जो	**याति**	॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थान अभिवादनैः ।
सम्मानयेत् तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिः मम अतुला ॥ २६ ॥

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थान अभिवादनैः सम्मानयेत् तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिः मम अतुला ॥ २६ ॥

श्रीमद्भागवतं-दृष्ट्वा	- श्रीमद्भागवतको देखकर	**सम्मानयेत्**	- सम्मान करता है,
		तं दृष्ट्वा मम	- उसे देखकर मुझे
प्रत्युत्थान	- (जो) उठकर खड़े होने,	**अतुला प्रीतिः**	- अतुलनीय प्रसन्नता
अभिवादनैः	- प्रणाम करनेसे (उनका)	**भवेत्**	- होती है ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः ।
पदे पदे अश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति असंशयम् ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः पदे पदे अश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति असंशयम् ॥ २७ ॥

भागवतं	- भागवतको	**असंशयं**	- निःसन्देह (वह)
दूरात् दृष्ट्वा हि	- दूरसे देखकर ही	**पदे पदे**	- प्रत्येक पद पर
यः सम्मुखं	- जो उनके सामने	**अश्वमेधस्य**	- अश्वमेध यज्ञ करनेका
प्रक्रमेत	- जाता है	**फलं प्राप्नोति**	- फल पाता है ॥ २७ ॥

उत्थाय प्रणमेत् यः वै श्रीमद्भागवतं नरः ।
धन पुत्रान् तथा दारान् भक्तिं च प्रददामि अहम् ॥ २८ ॥

उत्थाय प्रणमेत् यः वै श्रीमद्भागवतं नरः धन पुत्रान् तथा दारान् भक्तिं च प्रददामि अहम् ॥ २८ ॥

यः नरः	- जो मनुष्य	**अहं धन पुत्रान्**	- मैं धन, पुत्र
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवतको	**तथा दारान्**	- तथा पत्नियां
उत्थाय प्रणमेत्	- उठकर प्रणाम करता है (उसे)	**भक्तिं च-**	- और भक्ति भी देता
		प्रददामि	हूँ ॥ २८ ॥

महाराज उपचारैः तु श्रीमद्भागवतं सुत ।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यः भवामि अहम् ॥ २९ ॥

महाराज उपचारैः तु श्रीमद्भागवतं सुत शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यः भवामि अहम् ॥ २९ ॥

सुत	- पुत्र !	**भक्त्या शृण्वन्ति**	- भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं
ये नराः	- जो मनुष्य	**अहं तेषां वश्यः**	- मैं उनके वशमें
महाराज उपचारैः	- महाराजोपचार विधिसे (पूजा करके)	**भवामि**	- होजाता हूँ ॥ २९ ॥
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवतका		

मम उत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् !
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥ ३० ॥

मम उत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥ ३० ॥

सुव्रत	- उत्तम व्रत वाले ब्रह्मा !	**परं-**	- सर्वश्रेष्ठ
मम सर्वेषु	- मेरे सभी	**श्रीमद्भागवतं**	श्रीमद्भागवतका
उत्सवेषु	- उत्सवोंमें	**मम प्रीत्यै च**	- मेरी प्रसन्नताके लिए ही
ये नरा भक्त्या	- जो मनुष्य भक्तिपूर्वक	**शृण्वन्ति**	- श्रवण करते हैं ॥३०॥

वस्त्र अलंकरणैः पुष्पैः धूपदीप उपहारकैः ।
वशीकृतः हि अहं तैः च सत् स्त्रिया सत् पतिः यथा ॥ ३१ ॥

वस्त्र अलंकरणैः पुष्पैः धूपदीप उपहारकैः वशीकृतः हि अहं तैः च सत् स्त्रिया सत् पतिः यथा ॥ ३१ ॥

वस्त्र अलंकरणैः	- वस्त्र, आभूषण	**हि तैः च अहं**	- क्योंकि उनके द्वारा तो मैं
पुष्पैः धूपदीप	- पुष्प, धूप, दीप	**यथा सत् पतिः**	- जैसे उत्तम पतिको
उपहारकैः	- उपहारोंसे (पूजा करते हैं)	**सत् स्त्रिया**	- सती स्त्री (वश कर लेती है)
		वशीकृतः	- वशमें कर लिया गया हूं ॥ ३१ ॥

समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

[2]

स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यास उवाच-

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे
कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे
नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥ १ ॥

श्रीसच्चित् आनन्दघन स्वरूपिणे कृष्णाय च अनन्त सुख अभिवर्षिणे विश्व उद्भवस्थान निरोध हेतवे नुमः वयं भक्ति रस आप्तये अनिशम् ॥ १ ॥

सत्	- सत्ता,	**हेतवे**	- कारण
चित्	- ज्ञान,	**श्रीकृष्णाय**	- श्रीकृष्णको
आनन्द	- आनन्दके	**भक्तिरस**	- भक्तिरूपी रसकी
घन स्वरूपिणे	- पुञ्जी भूत स्वरूप,	**आप्तये**	- प्राप्तिके लिये
अनन्त सुख	- अनन्त सुखोंकी	**वयं अनिशं**	- हम रात-दिन
अभिवर्षिणे	- वर्षा करनेवाले	**नुमः**	- नमस्कार करते हैं
च विश्व उद्भव	- तथा विश्वकी सृष्टि		॥ १ ॥
स्थान निरोध	- स्थिति, प्रलयके		

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन् ॥ २ ॥

नैमिषे सूतं आसीनं अभिवाद्य महामतिं कथा अमृत रस आस्वाद कुशला ऋषयः अब्रुवन् ॥ २ ॥

नैमिषे	- नैमिषारण्यमें	**कथा अमृत**	- कथारूपी अमृतके
महामतिं	- परमबुद्धिमान	**रस आस्वाद**	- रसका स्वाद लेनेमें
आसीनं सूतं	- बैठे सूतको	**कुशला ऋषयः**	- निपुण ऋषि लोग
अभिवाद्य	- प्रणाम करके	**अब्रुवन्**	- बोले ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः-

वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे ।
अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किं च चक्रतुः ॥ ३ ॥

वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किं च चक्रतुः ॥ ३ ॥

श्रीमाथुरे देशे - श्रीमथुराप्रदेशमें
वज्रं - वज्रनाभका
हस्तिनापुरे - एवं हस्तिनापुरमें
स्वपौत्रं - अपने पौत्र (परीक्षित) का
अभिषिच्य - राज्याभिषेक करके
राज्ञिगते - राजा युधिष्ठिरके (महाप्रस्थान) चले जानेपर
तौ कथं - उन दोनोंने कैसे
च किं - और क्या
चक्रतुः - किया ॥ ३ ॥

सूत उवाच-

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं च एव नर उत्तमं देवीं सरस्वतीं व्यासं ततः जयं उदीरयेत् ॥ ४ ॥

नारायणं - भगवान् नारायणको,
नर उत्तमं - पुरुषोंमें श्रेष्ठ
नरं एव - नरको भी,
देवीं सरस्वतीं - देवी सरस्वतीको,
च व्यासं - तथा भगवान व्यासको
नमः कृत्य - नमस्कार करके
ततः जयं तब जय ध्वनि (या इतिहास-पुराण)
उदीरयेत् - उच्चारण करे ॥ ४ ॥

महापथं गते राज्ञि परीक्षित् पृथिवीपतिः ।
जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया ॥ ५ ॥

महापथं गते राज्ञि परीक्षित् पृथिवी पतिः जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभ दिदृक्षया ॥ ५ ॥

विप्रा	- विप्रवरो !	**परीक्षित्**	- परीक्षित
राज्ञि	- महाराज युधिष्ठिरके	**वज्रनाभ**	- वज्रनाभको
महापथं गते	- महाप्रस्थान कर जानेपर	**दिदृक्षया**	- देखनेके लिए
पृथिवीपतिः	- (सम्पूर्ण) पृथ्वीके स्वामी (सम्राट)	**मथुरां जगाम**	- मथुरा गये ॥ ५ ॥

पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः ।
अभिगम्याभिवाद्याथ निनाय निजमन्दिरम् ॥ ६ ॥

पितृव्यं आगतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः अभिगम्य अभिवाद्य अथ निनाय निज मन्दिरम् ॥ ६ ॥

वज्रः	- वज्रनाभ	**अभिगम्य**	- उनके पास जाकर
पितृव्यं	- (अपने) चाचा (परीक्षित) को	**अभिवाद्य**	- प्रणाम करके
		अथ निज मन्दिरं	- फिर अपने भवन
आगतं ज्ञात्वा	- आया जानकर	**निनाय**	- ले आये ॥ ६ ॥

परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकगतमानसः ।
रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः ॥ ७ ॥

परिष्वज्य स तं वीरः कृष्ण एक गत मानसः रोहिणि आद्या हरेः पत्नी र्ववन्द आयतन आगतः ॥ ७ ॥

स कृष्ण एक	- वे एकमात्र श्रीकृष्णमें	**आयतन**	- भवनमें
गत मानसः	- चित्त लगाये	**आगतः**	- आकर
वीरः तं	- वीर (परीक्षित) ने	**हरेः पत्नी**	- श्रीकृष्णकी पत्नी
	उन (वज्रनाभ) का	**रोहिणी आद्या**	- रोहिणी आदिकी१
परिष्वज्य	- आलिंगन करके	**ववन्द**	- वन्दनाकी ॥ ७ ॥

ताभिः संमानितोऽत्यर्थं परीक्षित् पृथिवीपतिः ।
विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥ ८ ॥

ताभिः सम्मानितः अति अर्थं परीक्षित् पृथिवी पतिः विश्रान्तः सुखं आसीनः वज्रनाभं उवाच ह ॥ ८ ॥

पृथिवीपतिः	- सम्राट्	**विश्रान्तः**	- विश्राम करके
परीक्षित्	- परीक्षित्	**सुखं आसीनः**	- सुख-पूर्वक बैठकर
ताभिः	- उन सबके द्वारा	**वज्रनाभं**	- वज्रनाभसे
अति अर्थं	- बहुत अधिक	**उवाच ह**	- निश्चयपूर्वक बोले ॥८॥
सम्मानितः	- सम्मानित होकर		

परीक्षदुवाच-

तात त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहाः ।
उद्धृता भूरिदुःखौघादहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥

तात त्वत् पितृभिः नूनं अस्मत् पितृ पितामहाः उद्धृता भूरि दुःख ओघात् अहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥

---

१. श्रीकृष्णकी मुख्य पटरानियों ने तो प्रभासमें देहत्याग कर दिया था । सोलह सहस्र एक सौ रानियोंमें रोहिणी जी प्रमुख थीं । वे और कुछ दूसरी भी मथुरा आ सकी थीं ।

तात नूनं	- प्रियवत्स ! निश्चय
त्वत् पितृभिः	- तुम्हारे पितर (परदादा भगवान) के द्वारा
अस्मत्	- हमारे
पितामहाः	- पितामह लोग
भूरि दुःख	- बहुत बड़ी दुःखकी
ओघात् उद्धृता	- बाढ़से बचाये गये
अहं च	- और मैं भी
परिरक्षितः	- सब प्रकार रक्षा किया गया ॥ ९ ॥

न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः ।
त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुखं राज्येऽनुयुज्यताम् ॥ १० ॥

न पारयामि अहं तात साधु कृत्वा उपकारतः त्वां अतः प्रार्थयामि अंग सुखं राज्ये अनुयुज्यताम् ॥ १० ॥

अंग तात	- प्रिय वत्स !
उपकारतः	- (उन) उपकारोंसे
साधुकृत्वा	- (कोई) भला करके
अहं-पारयामि न	- मैं पार नहीं पा सकता,
अतः त्वां	- इसलिए तुमसे
प्रार्थयामि	- प्रार्थना करता हूँ,
सुखं राज्ये	- सुखपूर्वक राज्य करनेमें
अनुयुज्यतां	- बराबर लगे रहे ॥ १० ॥

कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा ।
मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥

कोश सैन्य आदिजा चिन्ता तथा अरि दमन आदिजा मनाक् अपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥

कोश सैन्य आदिजा	- धन-सेना आदिसे उत्पन्न होने वाली
तथा अरिदमन आदिजा	- तथा शत्रु-दमन आदिकी
चिन्ता ते	- चिन्ता तुमको
मनाक् अपि	- तनिक भी
न कार्या	- नहीं करनी चाहिए,
किन्तु मातरः	- किन्तु मातायें
सुसेव्याः	- भली प्रकार सेवाके योग्य हैं ॥ ११ ॥

निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्वाधिपरिवर्जनम् ।
श्रुत्वैतत् परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह ॥ १२ ॥

निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्व आधि परिवर्जनं श्रुत्वा एतत् परमप्रीतः वज्रः तं प्रति उवाच ह ॥ १२ ॥

सर्व आधि	- सब चिन्तायें	**एतत् श्रुत्वा**	- यह सुनकर
मयि निवेद्य	- मुझे सूचित करके	**परमप्रीतः**	- अत्यन्त प्रसन्न होकर
परिवर्जनं	- उनसे रहित	**वज्रः तं प्रति**	- वज्रनाभ उनसे
कर्तव्यं	- हो जाना चाहिए !	**उवाच ह**	- स्थिर स्वरमें बोले ॥१२॥

वज्रनाभ उवाच-

राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषते ।
त्वत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः ॥ १३ ॥

राजन् उचितं एतत् ते यत् अस्मासु प्रभाषते त्वत् पित्रः उपकृतः च अहं धनुर्विद्या प्रदानतः ॥ १३ ॥

राजन्	- राजन् !	**प्रदानतः**	- देनेके द्वारा
यत् अस्मासु	- जो (आप) हम लोगोंसे	**अहं च**	- मैं भी
प्रभाषते	- कह रहे हैं (वह)	**त्वत् पित्रः**	- आपके पिता (अभिमन्यु) का
एतत् ते	- यह आपके लिये		
उचितं	- उचित है (किन्तु)	**उपकृतः**	- उपकृत हूँ ॥ १३ ॥
धनुर्विद्या	- धनुर्विद्या		

तस्मान्नाल्पापि मे चिन्ता क्षात्रं दृढमुपेयुषः ।
किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद् विचार्यताम् ॥ १४ ॥

तस्मात् न अल्प अपि मे चिन्ता क्षात्रं दृढं उपेयुषः किन्तु एका परमा चिन्ता तत्र किञ्चित् विचार्यताम् ॥ १४ ॥

तस्मात् - इसलिए
दृढ़ं क्षात्रं - दृढ़ क्षत्रियधर्मका
उपेयुषः मे - आश्रय लेने वाले मुझे
अल्प अपि - तनिक भी
चिन्ता न - चिन्ता नहीं है,
किन्तु एका - किन्तु एक
परमा चिन्ता - बड़ी भारी चिन्ता है,
तत्र किञ्चित् - उसके विषयमें कुछ
विचार्यताम् - विचार कीजिए ॥१४॥

माथुरे त्वभिषिक्तोऽपि स्थितोऽहं निर्जने वने ।
क्व गता वै प्रजात्रत्या यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥

माथुरे तु अभिषिक्तः अपि स्थितः अहं निर्जने वने क्व गता वै प्रजा अत्रत्या यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥

अहं माथुरे तु - मैं मथुराके राज्यपर तो
अभिषिक्तः अपि - अभिषिक्त होनेपर भी
निर्जने वने - निर्जन वनमें
स्थितः - रहता हूँ
अत्रत्या प्रजा - यहां रहने वाली प्रजा
वै क्व गता - निश्चित रूपसे कहां चली गयी
यत्र राज्यं - जहां (जिस) पर राज्य करना
प्ररोचते - अच्छा लगता है ॥१५॥

सूत उवाच-

इत्युक्तो विष्णुरातस्तु नन्दादीनां पुरोहितम् ।
शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्रसन्देहनुत्तये ॥ १६ ॥

इति उक्तः विष्णुरातः तु नन्द आदीनां पुरोहितं शाण्डिल्यंआजुहाव आशु वज्र सन्देह नुत्तये ॥ १६ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहे जानेपर
विष्णुरातः तु - परीक्षित ने तो
वज्र सन्देह - वज्रनाभके सन्देहको
नुत्तये - दूर करनेके लिए
नन्द आदीनां - नन्द आदिके
पुरोहितं - पुरोहित
शाण्डिल्यं - महर्षि शाण्डिल्यको
आशु आजुहाव -शीघ्र बुलवाया ॥१६॥

यह उवाच गीताप्रेसकी प्रतिमें नहीं है ।

अथोटजं विहायाशु शाण्डिल्यः समुपागतः ।
पूजितो वज्रनाभेन निषसादासनोत्तमे ॥ १७ ॥

अथ उटजं विहाय आशु शाण्डिल्यः सम उपआगतः पूजितः वज्रनाभेन निषसाद आसन उत्तमे ॥ १७ ॥

अथ शाण्डिल्यः	- फिर शाण्डिल्य जी	**वज्रनाभेन**	- वज्रनाभ द्वारा
आशु उटजं	- शीघ्र (अपनी) कुटिया	**पूजितः**	- सत्कृत होकर
विहाय	- छोड़कर	**उत्तमे आसन**	- श्रेष्ठ आसनपर
सम उप-आगतः	- उनके समीप आये,	**निषसाद**	- बैठ गये ॥ १७ ॥

उपोद्घातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ ।
उवाच परमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥

उपोद्घातं विष्णुरातः चकार आशु ततः तु असौ उवाच परमप्रीतः तौः उभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥

विष्णुरातः	- परीक्षितने	**परमप्रीतः**	- अत्यन्त प्रसन्न होकर
आशु-उपोद्घातं	- शीघ्र (विचारणीय विषयका) प्रारम्भ किया	**तौः उभौ**	- उन दोनोंको
		परिसान्त्वयन्	- समझाते हुए
ततः तु असौ	- तब तो ये (महर्षि)	**उवाच**	- बोले ॥ १८ ॥

शाण्डिल्य उवाच-

शृणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजम् ।
व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते ॥ १९ ॥

शृणुतं दत्त चित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजं व्रजनं व्याप्तिः इति युक्तया व्यापनात् व्रज उच्यते ॥ १९ ॥

दत्त चित्तौ - मन लगाकर
मे व्रज भूमिजं - मुझसे व्रजभूमिका
रहस्यं शृणुतं - रहस्य सुनो,
व्रजनं व्याप्तिः - व्रजन् धातुका अर्थ व्याप्त होना है
इति युक्तया - इस युक्तिसे
व्यापनात् - व्यापक होनेसे (इसे)
व्रज उच्यते - व्रज कहा जाता है ॥ १९ ॥

गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते ।
सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम् ॥ २० ॥

गुण अतीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते सदानन्दं परं ज्योतिः मुक्तानां पदं अव्ययम् ॥ २० ॥

मुक्तानां - मुक्त पुरुषोंका
अव्ययं पदं - अविनाशी आश्रय
परं ज्योतिः - परम प्रकाशक
सदानन्दं - नित्य आनन्दमय
गुण अतीतं - त्रिगुणोंसे परे
व्यापकं परं ब्रह्म - व्यापक परं ब्रह्मही
व्रज उच्यते - व्रज कहा जाता है ॥ २० ॥

तस्मिन् नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः ।
आत्मारामश्चाप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते ॥ २१ ॥

तस्मिन् नन्द आत्मजः कृष्णः सदा आनन्द अंग विग्रहः आत्मारामः च आप्तकामः प्रेम अक्तैः अनुभूयते ॥ २१ ॥

तस्मिन् - उस (परमब्रह्म) में
सदा आनन्द - नित्य आनन्द (घन)
अंग विग्रहः - साकार स्वरूप
नन्दात्मजः - नन्दनन्दन
कृष्णः - श्रीकृष्ण
प्रेम अक्तैः - प्रेमासक्त भक्तों द्वारा
अनुभूयते - अनुभव किये जाते हैं ॥ २१ ॥

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥ २२ ॥

आत्मा तु राधिका तस्य तया एव रमणात् असौ आत्माराम तया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढ वेदिभिः ॥ २२ ॥

तस्य आत्मा तु	- उनकी आत्मा तो	**गूढ वेदिभिः**	- रहस्यज्ञ
राधिका	- श्रीराधा हैं	**प्राज्ञैः असौ**	- ज्ञानियों द्वारा ये
तया एव-	- उनके साथ ही	**आत्माराम तया**	- आत्मारामके रूपमें
रमणात्	रमण करनेसे	**प्रोच्यते**	- कहे जाते हैं ॥२२॥

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः ।
नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥ २३ ॥

कामाः तु वाञ्छिताः तस्य गावः गोपाः च गोपिकाः नित्याः सर्वे विहार आद्या आप्तकामः ततः तु अयम् ॥ २३ ॥

तस्य कामाः तु	- उन (श्रीकृष्ण) की कामनायें तो	**सर्वे विहार-**	- (इनकी साथकी)
		आद्या	सब क्रीड़ा आदि
वाञ्छिताः	- (उनकी) अभीष्ट	**नित्याः ततः तु**	- नित्य है, इसलिए तो
गावः गोपाः	- गायें, गोप	**अयं आप्तकामः**	- ये आप्तकाम हैं
च गोपिकाः	- तथा गोपियां हैं		॥ २३ ॥

रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते ।
प्रकृत्या खेलतस्तस्य लीलान्यैरनुभूयते ॥ २४ ॥

रहस्यं तु इदं एतस्य प्रकृतेः परं उच्यते प्रकृत्या खेलतः तस्य लीला अन्यैः अनुभूयते ॥ २४ ॥

एतस्य	- इन (श्रीकृष्ण) का	**तस्य प्रकृत्या**	- उनके प्रकृतिके साथ
इदं रहस्यं तु	- यह रहस्य तो	**खेलतः अन्यैः**	- क्रीड़ा करते समय दूसरी ही
प्रकृतेः परं	- प्रकृतिसे परे		
उच्यते	- कहा जाता है,	**लीला-**	- लीला अनुभवमें आती
		अनुभूयते	है ॥ २४ ॥

सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजःसत्त्वतमोगुणैः ।
लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ।। २५ ।।

सर्ग स्थिति अप्यया यत्र रजः सत्त्व तमः गुणैः लीला एवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ।। २५ ।।

यत्र	- जिस (लीला) में	**एवं तस्य-**	- इस प्रकार उनकी लीला
रजः सत्त्व	- रजोगुण, सत्त्वगुण,	**लीला**	
तमः गुणैः	- तमोगुण द्वारा	**द्विविधा**	- दो प्रकारकी
सर्ग स्थिति	- सृष्टि, स्थिति,	**वास्तवी**	- वास्तविक और
अप्यया	- प्रलय होती हैं	**व्यावहारिकी**	- व्यावहारिक है ।।२५।।

वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी ।
आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित् ।। २६ ।।

वास्तवी तत्त्व संवेद्या जीवानां व्यावहारिकी आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया न आद्यगा क्वचित् ।। २६ ।।

वास्तवी	- वास्तविक (लीला)	**आद्यां विना**	- पहिली (वास्तविक) के बिना
तत्त्व संवेद्या	- जो तत्त्वरूप हैं उनके ही जाननेकी है,	**द्वितीया न**	- दूसरी (व्यावहारिक लीला) नहीं हो सकती,
जीवानां	- जीवोंके लिए	**द्वितीया-**	- दूसरी (व्यावहारिक लीला)
व्यावहारिकी	- व्यावहारिक लीला है	**आद्यगा**	पहिलीमें पहुँचने वाली
		क्वचित् न	- कभी नहीं होती ।।२६।।

युवयोर्गोचरेयं तु तल्लीला व्यावहारिकी ।
यत्र भूरादयो लोका भुवि माथुरमण्डलम् ।। २७ ।।

युवयोः गोचरा इयं तु तत् लीला व्यावहारिकी यत्र भूः आदयः लोका भुवि माथुर मण्डलम् ।। २७ ।।

युवयोः गोचरा	- तुम लोगोंके देखनेमें आयी	**यत्र भूः-**	- जिसमें भूलोक आदि
इयं लीला तु	- यह लीला तो	**आदयः लोका**	और
व्यावहारिकी	- व्यावहारिकी थी,	**भुवि माथुर-**	- पृथ्वीपर मथुरा मंडल है
		मण्डलं	॥ २७ ॥

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् ।
भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥ २८ ॥

अत्र एव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितं भासते प्रेम पूर्णानां कदाचित् अपि सर्वतः ॥ २८ ॥

अत्र एव	- यहीं	**तत्त्वं-**	- तत्त्व प्रेमपूर्ण भक्तोंको
सा व्रजभूमिः	- वह व्रजभूमि है	**प्रेमपूर्णानां**	
यत्र सुगोपितं	- जहां अत्यन्त रहस्यमय	**कदाचित् अपि**	- कदाचित तो
		सर्वतः भासते	- सब कहीं प्रकाशित होने लगता है ॥२८॥

कदाचिद् द्वापरस्यान्ते रहोलीलाधिकारिणः ।
समवेता यदात्र स्युर्यथेदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥

कदाचित् द्वापरस्य अन्ते रहः लीला अधिकारिणः समवेता यदा अत्र स्युः यथा इदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥

कदाचित्	- किसी समय	**यदा अत्र**	- जब यहां (पृथ्वीपर)
द्वापरस्य अन्ते	- द्वापरयुगके अन्तमें	**समवेतास्युः**	- एकत्र होजाते हैं
रहः लीला	- एकान्त लीला (दर्शन) के	**यथा इदानीं**	- जैसे इस बार (हुये थे)
		तदा हरिः	- तब श्रीहरि ॥ २९ ॥
अधिकारिणः	- अधिकारी लोग		

स्वैः सहावतरेत् स्वेषु समावेशार्थमीप्सिताः ।
तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥

स्वैः सह अवतरेत् स्वेषु सम आवेश अर्थं ईप्सिताः तदा देव आदयः अपि अन्ये अवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥

स्वैः सह	- अपने निज जनोंके साथ	**तदा देव-**	- उस समय देवतादि
स्वेषु सम	- अपने भक्तोंके पूर्ण	**आदयः**	
ईप्सिताः	- अभीष्ट	**अन्ये अपि**	- दूसरे भी
आवेश अर्थं	- (लीला) प्रवेशके लिए	**समन्ततः**	- चारों ओर
अवतरेत्	- अवतार लेते हैं	**अवतरन्ति**	- अवतार लेते हैं ॥३०॥

सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् ।
तेनात्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥

सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिः अन्तर्हितः अभवत् तेन अत्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥

सर्वेषां वाञ्छितं	- सभीका अभीष्ट	**तेनात्र**	- इसलिए यहां
कृत्वा हरिः	- (पूर्ण) करके श्रीहरि	**न संशयः**	- निःसन्देह
अन्तर्हितः	- अन्तर्ध्यान	**त्रिविधा लोकाः**	- तीनों प्रकार (देव, दैत्य, मानव) लोक
अभवत्	- होगये,	**पूर्वं स्थिताः**	- पहिलेकी भांति होगये ॥ ३१ ॥

नित्यास्तल्लिप्सवश्चैव देवाद्याश्चेति भेदतः ।
देवाद्यास्तेषु कृष्णेन द्वारिकां प्रापिताः पुरा ॥ ३२ ॥

नित्याः तत् लिप्सवः च एव देव आद्याः च इति भेदतः देव आद्याः तेषु कृष्णेन द्वारिकां प्रापिताः पुरा ॥ ३२ ॥

नित्याः	- नित्य (परिकर)	**इति भेदतः**	-इस प्रकारके भेदमें
तत् लिप्सवः	- उस (नित्य परिकर) के होनेको लालायित,	**तेषु देव आद्याः**	-उनमेंसे देवतादि
		पुरा कृष्णेन	-पहिले ही श्रीकृष्ण द्वारा
च देव-	- तथा देवतादि भी	**द्वारिकां-**	-द्वारिका पहुँचा दिये
आद्याः एव		**प्रापिताः**	गये थे ॥ ३२ ॥

पुनर्मौसलमार्गेण स्वाधिकारेषु चापिताः ।
तल्लिप्सूंश्च सदा कृष्णः प्रेमानन्दैकरूपिणः ॥ ३३ ॥

पुनः मौसल मार्गेण स्व अधिकारेषु च आपिताः तत् लिप्सून् च सदा कृष्णः प्रेम आनन्द एक रूपिणः ॥ ३३ ॥

पुनः मौसल-	- फिर मूसलके मार्गसे,	**च तत्-**	- तथा उनको प्राप्त
मार्गेण		**लिप्सून्**	करनेको लालायितोंको
स्व अधिकारेषु	- उनको उनके अधिकारोंपर	**कृष्णः सदा**	- श्रीकृष्णने नित्य
		प्रेम आनन्द	- प्रेम आनन्द
च आपिताः	- ही पहुँचा दिया,	**एक रूपिणः**	- मात्र स्वरूप वाला ॥३३॥

विधाय स्वीयनित्येषु समावेशितवांस्तदा ।
नित्याः सर्वेऽप्ययोग्येषु दर्शनाभावतां गताः ॥ ३४ ॥

विधाय स्वीय नित्येषु सम आवेशितवान् तदा नित्याः सर्वे अपि अयोग्येषु दर्शन अभावतां गताः ॥ ३४ ॥

विधाय	- बनाकर	**सर्वे नित्याः-**	- सब नित्य
स्वीय नित्येषु	- अपने नित्य- (परिकरों) में	**अपि**	(परिकर) भी
		अयोग्येषु	- अनाधिकारियोंके लिए
तदा सम-	- उस समय पूर्णरूपसे	**दर्शन-**	- दर्शनाभाव (अदृश्य)
आवेशितवान्	प्रविष्टकर लिया	**अभावतां गताः**	होगये ॥ ३४ ॥

व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्नाधिकारिणः ।
पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥

व्यावहारिक लीला स्थाः तत्र यत् न अधिकारिणः पश्यन्ति अत्र आगताः तस्मात् निर्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥

तत्र यत् - उस (वास्तविक लीला दर्शन) के जो
अधिकारिणः न - अधिकारी नहीं हैं (वे)
व्यावहारिक - व्यावहारिक
लीला स्थाः - लीलामें स्थित लोग
अत्र आगताः - यहां आकर
पश्यन्ति तस्मात् - देखते हैं इसलिए
समन्ततः - चारों ओर
निर्जनत्वं - निर्जनपना है ॥३५॥

तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया ।
वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥ ३६ ॥

तस्मात् चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मत् आज्ञया वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिः ते भविष्यति ॥ ३६ ॥

वज्रनाभ - वज्रनाभ !
तस्मात् ते - इसलिए तुम्हें
चिन्ता न कार्या - चिन्ता नहीं करनी चाहिए,
मत् आज्ञया - मेरी आज्ञासे
बहून् ग्रामान् - बहुतसे गाँव
अत्र वासय - यहाँ बसाओ,
ते संसिद्धिः - तुम्हें पूरी सफलता
भविष्यति - प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥

कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ।
त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा ॥ ३७ ॥

कृष्णलीला अनुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूः इयं परा ॥ ३७ ॥

सर्वतः	- सब ओर	**ग्रामान् वासयता**	- गाँव बसाते हुए
कृष्ण लीला	- श्रीकृष्णकी लालाके	**त्वया इयं**	- तुम्हारे द्वारा यह
अनुसारेण	- अनुसार	**परा भूः-**	- परमात्म भूमि भली प्रकार
नामानिकृत्वा	- नाम रखकर	**संसेव्या**	सेवनीय है ॥ ३७ ॥

गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने ।
नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ॥ ३८ ॥

गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने नन्दिग्रामें बृहत्सानौ कार्या राज्यास्थितिस्त्वया ॥ ३८ ॥

गोवर्द्धने	- गोवर्द्धनमें	**बृहत्सानौ**	- बरसाना में
दीर्घपुरे	- दीर्घपुर (डीगमें)	**त्वया**	- तुमको
मथुरायां	- मथुरामें	**राज्यस्थितिः**	- सेनाकी छावनियां
महावने	- महावनमें	**कार्या**	- बनानी चाहिये ॥ ३८ ॥
नन्दिग्रामे	- नन्दग्राममें		

नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान् संसेवतस्तव ।
राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३९ ॥

नदि अद्रिद्रोणि कुण्ड आदि कुञ्जान् संसेवतः तव राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नाः त्वं च प्रीतः भविष्यसि ॥ ३९ ॥

नदि अद्रि	- नदी, पर्वत,	**सुसम्पन्नाः**	- अच्छी प्रकार समृद्ध
द्रोणि कुण्ड-	- तलहटी, कुण्ड आदि	**च त्वं प्रीतः**	- तथा तुम प्रसन्न
आदि	तथा	**भविष्यसि**	- हो जाओगे ॥ ३९ ॥
कुञ्जान् संसेवतः	- कुञ्जोंकी सेवा करते हुये		
तव राज्ये प्रजाः	- तुम्हारे राज्यकी प्रजा		

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः ।
तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ॥ ४० ॥

सच्चिदानन्द भूः एषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः तव कृष्ण स्थलानि अत्र स्फुरन्तु मत् अनुग्रहात् ॥ ४० ॥

सच्चिदानन्द	- सच्चिदानन्द रूपा	**मत् अनुग्रहात्**	- मेरी कृपासे
एषा भूः	- यह भूमि	**अत्र कृष्ण-**	- यहाँ की श्रीकृष्ण-लीला
त्वया प्रयत्नतः	- तुम्हारे द्वारा प्रयत्नपूर्वक	**स्थलानि**	भूमियां
सेव्या	- सेवनीय है	**तव स्फुरन्तु**	- तुम्हें स्फुरित (ज्ञात) हों ॥ ४० ॥

वज्र संसेवनादस्य उद्धवस्त्वां मिलिष्यति ।
ततो रहस्यमेतस्मात् प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥

वज्र संसेवनात् अस्य उद्धवः त्वां मिलिष्यति ततः रहस्यं एतस्मात् प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥

वज्र	- वज्रनाभ !	**ततः एतस्मात्**	- तब इनसे
अस्यः	- इस (भूमि) की भली	**समातृकः त्वं**	- माताओंके साथ तुम
संसेवनात्	प्रकार सेवा करनेसे	**रहस्यं**	- (यह) रहस्य
त्वां उद्धवः	- तुमको उद्धवजी	**प्राप्स्यसि**	- प्राप्त करोगे ॥४१॥
मिलिष्यति	- मिलेंगे,		

सूत उवाच-

एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः कृष्णमनुस्मरन् ।
विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥

एवं उक्त्वा तु शाण्डिल्यः गतः कृष्णं अनुस्मरन् विष्णुरातः अथ वज्रः च परां प्रीतिं अवापतुः ॥ ४२ ॥

एवं उक्त्वा	- ऐसा कहकर	**विष्णुरातः**	- परीक्षित
शाण्डिल्यः तु	- शाण्डिल्य जी तो	**अथ वज्रः च**	- तथा वज्रनाभ भी
कृष्णं अनुस्मरन्	- श्रीकृष्णका बार-बार स्मरण करते हुए	**परां प्रीतिं**	- परम प्रसन्नताको
		अवापतुः	- प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥
गतः	- चले गये,		

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः-

शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् ।
किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद् वद ॥ १ ॥

शाण्डिल्ये तौ सम आदिश्य परावृत्ते स्वं आश्रमं किं कथं चक्रतुः तौ तु राजानौ सूत तत् वद ॥ १ ॥

सूत - सूत जी !
तौ सम आदिश्य - उन दोनोंको भली प्रकार आदेश देकर
शाण्डिल्ये - महर्षि शाण्डिल्यके
स्व आश्रमं - अपने आश्रम
परावृत्ते - लौट जाने पर
तौ राजानौ - उन दोनों राजाओंने
किं कथं-चक्रतुः - क्या कैसे किया
तत् वद - वह बतलाइये ॥ १ ॥

सूत उवाच-

ततस्तु विष्णुरातेन श्रेणीमुख्याः सहस्रशः ।
इन्द्रप्रस्थात् समानाय्य मथुरास्थानमापिताः ॥ २ ॥

ततः तु विष्णुरातेन श्रेणी मुख्याः सहस्रशः इन्द्रप्रस्थात् सम आनाय्य मथुरास्थानं आपिताः ॥ २ ॥

ततः तु - इसके पश्चात् तो
विष्णुरातेन - परीक्षित द्वारा
सहस्रशः - सहस्रों
श्रेणी मुख्याः - वर्ग प्रमुख
इन्द्रप्रस्थात् - इन्द्रप्रस्थसे
सम आनाय्य - भली प्रकार बुलवाकर
मथुरा स्थानं - मथुरामें (उन्हें) स्थान
आपिताः - दिया ॥ २ ॥

माथुरान् ब्राह्मणांस्तत्र वानरांश्च पुरातनान् ।
विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान् स्वराट् ॥ ३ ॥

माथुरान् ब्राह्मणान् तत्र वानरान् च पुरातनान् विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान् स्वराट् ॥ ३ ॥

तत्र माथुरान्	- वहां माथुर	**तेषु माननीयत्वं**	- उनका सम्मान्य स्वरूप
ब्राह्मणान्	- ब्राह्मणोंको	**विज्ञाय**	- जानकर
च पुरातनान्	- तथा प्राचीन परम्पराके	**स्वराट्**	- सम्राट् (परीक्षित) ने
वानरान्	- वानरोंको	**स्थापितवान्**	- बसाया ॥ ३ ॥

वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्यायनुग्रहात् ।
गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥

वज्रः तु तत् सहायेन शाण्डिल्यस्य अपि अनुग्रहात् गोविन्द गोप गोपीनां लीला स्थानानि अनुक्रमात् ॥ ४ ॥

वज्रः तु	- वज्रनाभने भी	**अनुग्रहात्**	- कृपासे
तत् सहायेन	- उन (परीक्षित) की सहायतासे तथा	**अनुक्रमात्**	- क्रमशः
		गोविन्द गोप	- गोविन्द, गोप
शाण्डिल्यस्य-अपि	- महर्षि शाण्डिल्यकी भी	**गोपीनां**	- गोपियोंके
		लीला स्थानानि	- लीला-स्थानोंको ॥४॥

विज्ञायाभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद् बहून् ।
कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥

विज्ञाय अभिधया स्थाप्य ग्रामान् आवासयत् बहून् कुण्ड कूप आदि पूर्तेन शिव आदि स्थापनेन च ॥ ५ ॥

विज्ञाय - जानकर
अभिधया स्थाप्य - (उनके) नामोंसे स्थापना करके
कुण्ड कूप आदि - कुण्ड, कूप आदि
पूर्तेन - पूर्तकर्म करते हुए
च शिव आदि - तथा शिव आदि (देवताओं) की
स्थापनेन - स्थापना करते हुए
बहून् ग्रामान् - बहुतसे गाँव
आवासयत् - बसाये ॥ ५ ॥

गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपारोपणेन च ।
कृष्णैकभक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥

गोविन्द हरिदेव आदि स्वरूप आरोपणेन च कृष्ण एक भक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥

गोविन्द हरिदेव - गोविन्द, हरिदेव
आदि स्वरूप - आदि श्रीविग्रहोंकी
आरोपणेन - स्थापना द्वारा
स्वेराज्ये - अपने राज्यमें
कृष्ण एक- - श्रीकृष्णकी अनन्य
भक्तिं च भक्तिका ही
ततान मुमो- - विस्तार करके बहुत
द ह प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥

प्रजास्तु मुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः ।
परमानन्दसम्पन्ना राज्यं तस्यैव तुष्टुवुः ॥ ७ ॥

प्रजाः तु मुदिताः तस्य कृष्ण कीर्तन तत्पराः परम आनन्द सम्पन्ना राज्यं तस्य एव तुष्टुवुः ॥ ७ ॥

तस्य प्रजाः तु - उनकी प्रजा तो
परम आनन्द - परमानन्द
सम्पन्ना मुदिताः - प्राप्त प्रसन्न
कृष्ण कीर्तन- - श्रीकृष्ण-कीर्तन
तत्पराः परायणा
तस्य एव राज्यं - उन राजाकी ही
तुष्टुवुः - प्रशंसा करती थी ॥७॥

एकदा कृष्णपत्न्यस्तु श्रीकृष्णविरहातुराः ।
कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुर्गतमत्सराः ॥ ८ ॥

एकदा कृष्ण पत्न्यः तु श्रीकृष्ण विरह आतुराः कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुः गत मत्सराः ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण - श्रीकृष्णके	**मुदितां वीक्ष्य** - आनन्दिता देखकर
विरह आतुराः - वियोगमें व्याकुल	**गत मत्सराः** - डाह रहित होकर
कृष्णपत्न्यः तु - श्रीकृष्णकी पत्नियोंने तो	**पप्रच्छुः** - पूछा ॥ ८ ॥
एकदा कालिन्दीं - एक बार कालिन्दीजी (यमुना) को	

श्रीकृष्णपत्न्यः ऊचुः-

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने ।
वयं विरहदुःखार्तास्त्वं न कालिन्दि तद् वद ॥ ९ ॥

यथा वयं कृष्णपत्न्यः तथा त्वं अपि शोभने वयं विरह दुःख आर्ताः त्वं न कालिन्दि तत् वद ॥ ९ ॥

शोभने कालिन्दि - सुन्दरी, कल्याणी !	**वयं विरह-** - हम सब वियोगके
यथा वयं - जैसे हम सब	**दुःख** दुःखसे
कृष्णपत्न्यः - श्रीकृष्णकी पत्नियां हैं,	**आर्ताः** - व्याकुला हैं,
तथा त्वं अपि - वैसे ही तुम भी (हो, किन्तु)	**त्वं न तत्-** - पर तुम नहीं हो, इसका **वद** (कारण) बतलाओ ॥९॥

सूत उवाच-

तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् ।
सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा ॥ १० ॥

तत् श्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यं अब्रवीत् सापत्न्यं वीक्ष्य तत् तासां करुणापर मानसा ॥ १० ॥

यह उवाच गीताप्रेस की प्रतिमें नहीं है ।

तत् तासां	- वह उनका	**करुणापर-**	- दया-द्रवित चित्ता
सापत्न्यं वीक्ष्य	- सौत होनेका भाव देखकर	**मानसा**	
		सा कालिन्दी	- वे कालिन्दी जी
तत् श्रुत्वा	- (उनकी) वह बात सुनकर	**वाक्यं अब्रवीत्**	- सार्थक वचन बोलीं ॥ १० ॥

कालिन्द्युवाच-

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवं आत्मा अस्ति राधिका तस्या दास्य प्रभावेण विरहः अस्मान् न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

आत्मारामस्य	- आत्माराम	**तस्या**	- उनकी ही
कृष्णस्य ध्रुवं	- श्रीकृष्णकी निश्चित ही	**दास्य प्रभावेण**	- दासी पनेके प्रभावसे
आत्मा-	- आत्मा श्रीराधा हैं,	**विरहः अस्मान्**	- वियोग हम लोगोंको
राधिका अस्ति		**न संस्पृशेत्**	- पीड़ा नहीं देता ॥११॥

तस्या एवांशविस्तारः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः ।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥ १२ ॥

तस्या एव अंश विस्तारः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः नित्य सम्भोग एव अस्ति तस्याः साम्मुख्य योगतः ॥ १२ ॥

सर्वाः श्रीकृष्णं	- सब श्रीकृष्णकी	**तस्याः साम्मुख्य**	- उन (श्रीराधा) की प्रधानताके
नायिकाः	- नायिकायें (प्रेयसियां)	**योगतः**	- योगसे
तस्या एव	- उन (श्रीराधा) के ही	**नित्य सम्भोग**	- नित्य सम्भोग
अंश विस्ताराः	- अंशोंकी विस्तारस्वरूपा हैं,	**एव अस्ति**	- ही (प्राप्त) है ॥१२॥

स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका ।
श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसंगाच्चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥

स एव सा स सा एव अस्ति वंशी तत् प्रेम रूपिका श्रीकृष्ण नखचन्द्रालि संगात् चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥

स एव सा	- वे (श्रीकृष्ण) ही वह (श्रीराधा) हैं,	**प्रेम रूपिका**	- प्रेम स्वरूपिणी हैं,
सा स एव-	- (श्रीराधा) ही वह	**श्रीकृष्ण नख-**	- श्रीकृष्णके (चरण)
अस्ति	(श्रीकृष्ण) हैं,	**चन्द्रालि**	नखके
वंशी तत्	- वंशी उनकी	**संगात्**	- (चन्द्रिका रूपमें) साथ होनेसे
		चन्द्रावली-	- चन्द्रावली कही गयी हैं
		स्मृता	॥ १३ ॥

रूपान्तरमगृह्णाना तयोः सेवातिलालसा ।
रुक्मिण्यादिसमावेशो मयात्रैव विलोकितः ॥ १४ ॥

रूपान्तरं अगृह्णाना तयोः सेवा अति लालसा रुक्मिणी आदि समावेशः मया अत्र एव विलोकितः ॥ १४ ॥

तयोः सेवा	- उन (चन्द्रावली) की सेवामें	**अगृह्णाना**	- ग्रहण कर लिया है,
अति लालसा	- अत्यन्त लालसा होनेसे (उन्होंने)	**रक्मिणी आदि**	- रुक्मिणी आदिका
रूप अन्तरं	- दूसरा (सखी) रूप	**समावेशः**	- भली प्रकार निवास
		मया अत्र एव	- मैंने यहीं
		विलोकितः	- देखा है ॥ १४ ॥

युष्माकमपि कृष्णेन विरहो नैव सर्वतः ।
किन्तु एवं न जानीथ तस्माद् व्याकुलतामिताः ॥ १५ ॥

युष्माकं अपि कृष्णेन विरहः न एव सर्वतः किन्तु एवं न जानीथ तस्मात् व्याकुलतां इताः ॥ १५ ॥

युष्माकं अपि - तुम लोगोंका भी
कृष्णेन विरहः - श्रीकृष्णसे वियोग
सर्वतः न एव - सब ओरसे नहीं ही है,
किन्तु एवं - किन्तु (तुम लोग) इस प्रकार
न जानीथ - नहीं जानती हो
तस्मात् - इसलिए
व्याकुलतां- - व्याकुलताको प्राप्त हो
इताः ॥ १५ ॥

एवमेवात्र गोपीनामक्रूरावसरे पुरा ।
विरहाभास एवासीदुद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥

एवं एव अत्र गोपीनां अक्रूर अवसरे पुरा विरह आभास एव आसीत् उद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥

एवं एव अत्र - इसी प्रकार यहां (व्रजमें)
पुराअक्रूर - पहिले अक्रूर (यहांसे जाने) के
अवसरे - अवसर पर
गोपीनां - गोपियोंको
विरह- आभास एव - विरह की प्रतीतिमात्र
आसीत् - थी (फिर)
उद्धवेन - उद्धवने (उसकी)
समाहितः - शान्ति कर दी ॥१६॥

तेनैव भवतीनां चेद् भवेदत्र समागमः ।
तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहारमपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥

तेन एव भवतीनां चेत् भवेत् अत्र समागमः तर्हि नित्यं स्व कान्तेन विहारं अपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥

चेत् भवतीनां - यदि आप लोगोंका
अत्र तेन एव - यहां उन (उद्धवजी) से ही
समागमः भवेत् - मिलना होजाय
तर्हि स्वकान्तेन - तब अपने प्रियतमके साथ
नित्यं विहारं अपि - नित्य विहार भी
लप्स्यथ - प्राप्त कर लेंगी ॥१६॥

सूत उवाच-

एवमुक्तास्तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन् ।
उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसंगमलालसाः ॥ १८ ॥

एवं उक्ताः तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनः अब्रुवन् उद्धव आलोकनेन आत्म प्रेष्ठ संगम लालसाः ॥ १८ ॥

एवं उक्ताः तु - इस प्रकार कहे जानेपर तो
ताः पत्न्यः - वे श्रीकृष्ण-पत्नियां
उद्धव-आलोकनेन - उद्धवजीके दर्शनसे
प्रेष्ठ संगम -प्रियतमको मिलनकी
लालसाः प्रसन्नां -लालसा से प्रसन्न होकर
पुनः अब्रुवन् -फिर बोलीं ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः-

धन्यासि सखि कान्तेन यस्या नैवास्ति विच्युतिः ।
यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम ॥ १९ ॥

धन्या असि सखि कान्तेन यस्या न एव अस्ति विच्युतिः यतः ते स्वार्थ संसिद्धिः तस्या दास्यः बभूव इम ॥ १९ ॥

सखि धन्या-असि - सखी ! तुम धन्य हो,
यस्या कान्तेन - जिसका प्रियतमसे
विच्युतिः न-एव अस्ति - वियोग नहीं ही है,
यतः ते स्वार्थ संसिद्धिः - जिससे तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होता है,
तस्या दास्यः - उसी की दासियां
इम बभूव - ये हम सब होना चाहती हैं ॥ १९ ॥

परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम् ।
तथा वदस्व कालिन्दि तल्लाभोऽपि यथा भवेत् ॥ २० ॥

परन्तु उद्धव लाभे स्यात् अस्मत् सर्व अर्थ साधनं तथा वदस्व कालिन्दि तत् लाभः अपि यथा भवेत् ॥ २० ॥

परन्तु	- परन्तु	**कालिन्दि**	-कालिन्दी !
उद्धव लाभे	- उद्धवजीके मिलनेसे	**तथा वदस्व**	-वह (उपाय) बतलाओ
अस्मत्-	- हम लोगोंका सब	**यथा तत् लाभः**	-जिससे उनसे मिलना
सर्व अर्थ	प्रयोजन	**अपि भवेत्**	-भी हो जया ॥ २० ॥
साधनं स्यात्	- सम्पन्न होगा,		

सूत उवाच-

एवमुक्ता तु कालिन्दी प्रत्युवाचाथ तास्तथा ।
स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडशरूपिणीः ॥ २१ ॥

एवं उक्ता तु कालिन्दी प्रति उवाच अथ ताः तथा स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडश रूपिणीः ॥ २१ ॥

एवं उक्ता तु	- ऐसा कहे जानेपर तो	**षोडश कलाः**	- सोलहों कलाओंका
कालिन्दी	- कालिन्दी	**स्मरन्ती**	- स्मरण करते हुए
कृष्णचन्द्रस्य	- श्रीकृष्णचन्द्रकी	**अथ ताः प्रति**	- फिर उन सबसे
रूपिणीः	- मूर्तिमती	**तथा उवाच**	- वह (उपाय) बतलाते बोलीं ॥ २१ ॥

कालिन्द्युवाच-

साधनभूमिर्बदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता ।
तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयँल्लोकान् ॥ २२ ॥

साधन भूमिः बदरीव्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता तत्र आस्ते स तु साक्षात् तत् वयुनं ग्राहयन् लोकान् ॥ २२ ॥

यह उवाच गीताप्रेस की प्रतिमें नहीं है ।

कृष्णेन व्रजता	- श्रीकृष्णने (स्वधाम) जाते समय	**स तु**	- वे (उद्धव) तो
मन्त्रिणे	- मन्त्री (उद्धव) को	**तत् वयुनं**	- उन (श्रीकृष्ण) का ज्ञान
साधन भूमिः	- साधना स्थली	**लोकान् ग्राहयन्**	-लोगोंको सिखलाते हुए
बदरी प्रोक्ता	- बदरीनाथ (जाने) को कहा था,	**तत्र साक्षात्**	- वहां साक्षात् हैं
		आस्ते	॥ २२ ॥

फलभूमिर्व्रजभूमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम् ।
फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः ॥ २३ ॥

फल भूमिः व्रजभूमिः दत्ता तस्मै पुरा एव सरहस्यं फलं इह तिरोहितं सत् तत् इह इदानीं स उद्धवः अलक्ष्यः ॥ २३ ॥

फल भूमिः	- फलभूमि	**इह फलं**	- यहां फल (रूप श्रीकृष्ण) के
व्रजभूमिः	- व्रजभूमि	**तिरोहितं**	- अदृश्य होनेपर
तस्मै पुरा एव	- उन (उद्धव) को पहिले ही	**तत् इदानीं**	- अतः इस समय
		स उद्धवः	- वे उद्धव जी भी
स रहस्यं	- रहस्यके साथ	**अलक्ष्यः**	- अदृश्य हैं ॥ २३ ॥
दत्तं	- दे दी थी,		

गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः ।
तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम् ॥ २४ ॥

गोवर्द्धन गिरि निकटे सखी स्थले तत् रजः कामः तत्रत्य अंकुर वल्ली रूपेण आस्ते स उद्धवः नूनम् ॥ २४ ॥

गोवर्द्धन - गोवर्धन
गिरि निकटे - पर्वतके समीप
सखी स्थले - सखियोंकी (क्रीड़ा) भूमिमें
तत् रजः कामः - उन (सखियों) की (चरण) रज पानेकी इच्छासे
तत्रत्य वल्ली - वहांकी लताओंके
अंकुर रूपेण - अंकुरके रूपमें
नूनं स - निश्चय वे
उद्धवः आस्ते - उद्धव जी स्थित हैं ॥ २४ ॥

आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् ।
तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरः परिसरे सवज्राभिः ॥ २५ ॥

आत्म उत्सव रूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतं तस्मात् तत्र स्थित्वा कुसुमसरः परिसरे स वज्राभिः ॥ २५ ॥

हरिणा तस्मै - श्रीहरिने उनको
नियतं - निश्चित रूपसे
आत्म उत्सव-रूपत्वं - अपना उत्सव स्वरूप
समर्पितं - दे दिया है
तस्मात् तत्र - इसलिए वहां
कुसुमसरः - कुसुम सरोवरके
परिसरे - समीप ही
स वज्राभिः - वज्रनाभके साथ
स्थित्वा - रहकर ॥ २५ ॥

वीणावेणुमृदङ्गैः कीर्तनकाव्यादिसरससङ्गीतैः ।
उत्सव आरब्धव्यो हरिरतलोकान् समानाय्य ॥ २६ ॥

वीणा वेणु मृदंगैः कीर्तन काव्य आदि सरस संगीतैः उत्सव आरब्धव्यः हरिरत लोकान् सम आनाय्य ॥ २६ ॥

वीणा वेणु - वीणा, वंशी,
मृदंगैः - मृदंग (वादन) के साथ
हरिरत लोकान् - श्रीहरिमें लगे (भक्त) लोगोंको
सम आनाय्य - चारों ओरसे बुलवाकर
कीर्तन काव्य - कीर्तन, काव्य
आदिसरस - आदि रसमय
संगीतैः - संगीत द्वारा
उत्सव - उत्सव
आरब्धव्यः - प्रारम्भ करना चाहिए ॥ २६ ॥

तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते ।
यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ।। २७ ।।

तत्र उद्धव अवलोकः भविता नियतं महोत्सवे वितते यौष्माकीणां अभिमत सिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ।। २७ ।।

तत्र महोत्सवे	- वहां महोत्सवका	**सवितानां**	- उस महायज्ञमें
वितते नियतं	- विस्तार होनेसे निश्चित रूपसे	**यौष्माकीणां**	- तुम लोगोंको
		स अभिमत-	- अभीष्ट सिद्धि
उद्धव अवलोकः	- उद्धवजीका दर्शन	**सिद्धिं**	
भविता	- होगा,	**सविता एव**	- प्राप्त होगी ही ।।२७।।

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः कालिन्दीमभिवन्द्य तत् ।
कथयामासुरागत्य वज्रं प्रति परीक्षितम् ।। २८ ।।

इति श्रुत्वा प्रसन्नाः ताः कालिन्दीं अभिवन्द्य तत् कथयामासुः आगत्य वज्रं प्रति परीक्षितम् ।। २८ ।।

इति श्रुत्वा	- इस प्रकार सुनकर	**आगत्य**	- (भवन) आकर
प्रसन्नाः	- प्रसन्न होकर	**ताः तत्**	- उन्होंने वह
कालिन्दीं	- कालिन्दीको	**वज्रं परीक्षितं**	- वज्रनाभ और परीक्षित
अभिवन्द्य	- प्रणाम करके	**प्रति कथयामासुः**	- से कहा ।। २८ ।।

विष्णुरातस्तु तच्छ्रुत्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा ।
तत्रैवागत्य तत् सर्वं कारयामास सत्वरम् ।। २९ ।।

विष्णुरातः तु तत् श्रुत्वा प्रसन्नः तत् युतः तदा तत्र एव आगत्य तत् सर्वं कारयामास सत्वरम् ।। २९ ।।

विष्णुरातः तु - परीक्षित ने भी
तत् श्रुत्वा - वह बात सुनकर
तदा प्रसन्नः - उस समय प्रसन्न होकर
सत्वरं - शीघ्र
तत् युतः - उनके साथ
तत्र एव - वहीं (कुसुम सरोवरके
आगत्य पास) आकर
तत् सर्वं - वह सब (कीर्तनादि)
कारयामास - करवाया ॥ २९ ॥

गोवर्द्धनाददूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले ।
प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसंकीर्तनोत्सवः ॥ ३० ॥

गोवर्द्धनात् अदूरेण वृन्दारण्ये सखी स्थले प्रवृत्तः कुसुम अम्भोधौ कृष्ण संकीर्तन उत्सवः ॥ ३० ॥

गोवर्द्धनात् - गोवर्धन पर्वतके
अदूरेण - समीप ही
वृन्दारण्ये - वृन्दावनमें
सखी स्थले - सखियोंके (क्रीड़ा) स्थानमें
कुसुम अम्भोधौ - कुसुम सरोवरपर
कृष्ण संकीर्तन - श्रीकृष्ण-संकीर्तनरूप
उत्सवः प्रवृत्तः - उत्सव होने लगा
॥ ३० ॥

वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया ।
साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन् ॥ ३१ ॥

वृषभानुसुता कान्त विहारे कीर्तन श्रिया साक्षात् इव सम आवृत्ते सर्वे अनन्य दृशः अभवन् ॥ ३१ ॥

वृषभानुसुता - श्रीवृषभानु-नन्दिनीके
कान्त विहारे - प्रियतमके विहार स्थानमें
कीर्तन श्रिया - कीर्तनकी शोभासे
साक्षात् इव - साक्षात् (श्रीकृष्ण) के समान
सम आवृत्ते - सब ओर छा जानेसे
सर्वे- - सब कुछ और न देखने
अनन्यदृशः वाले (तन्मय)
अभवन् - होगये ॥ ३१ ॥

ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात् ।
आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥ ३२ ॥

ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृण गुल्म लता च यात् आजगामउद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बर आवृतः ॥ ३२ ॥

ततः सर्वेषु - फिर सबके
पश्यत्सु - देखते हुए
तृण गुल्म - घास, झाड़ियों,
लता च यात् - लताओंके झुरमुटसे
स्रग्वी श्यामः - वनमालाधारी, श्यामवर्ण,
पीताम्बर- - पीताम्बर लपेटे
आवृतः
उद्धवः आजगाम- उद्धव जी चले आये
॥ ३२ ॥

गुञ्जामालाधरो गायन् वल्लवीवल्लभं मुहुः ।
तदागमनतो रेजे भृशं संकीर्तनोत्सवः ॥ ३३ ॥

गुञ्जामालाधरः गायन् वल्लवी वल्लभं मुहुः तत् आगमनतः रेजे भृशं संकीर्तन उत्सवः ॥ ३३ ॥

गुञ्जामालाधरः - गुञ्जाओंकी माला पहिने
वल्लवी वल्लभं - गोपी बल्लभका
मुहुः गायन् - बार-बार गान
करते हुए
तत् आगमनतः -उन (उद्धव) के आगमनसे
संकीर्तन उत्सवः - संकीर्तन-उत्सव
भृशं रेजे -बहुत सुशोभित हुआ
॥ ३३ ॥

चन्द्रिकागमतो यद्वत् स्फाटिकाट्टालभूमणिः ।
अथ सर्वे सुखाम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः ॥ ३४ ॥

चन्द्रिका आगमनतः यद्वत् स्फाटिक अट्टाल भू मणिः अथ सर्वे सुख अम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः ॥ ३४ ॥

यद्वत् - जैसे
स्फाटिक मणिः - स्फटिक मणिकी
अट्टाल भू - अटारीकी भूमि
चन्द्रिका - चाँदनी
आगमनतः - आनेसे
(शोभित होती है)
अथ सर्वे - फिर तो सब लोग
सुख अम्भोधौ - आनन्द-समुद्रमें
मग्नाः सर्वं - डूबकर सब कुछ
विसस्मरुः - भूल गये ॥ ३४ ॥

क्षणेनागतविज्ञाना दृष्ट्वा श्रीकृष्णरूपिणम् ।
उद्धवं पूजयाञ्चक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः ॥ ३५ ॥

क्षणेन आगत विज्ञाना दृष्ट्वा श्रीकृष्ण रूपिणं उद्धवं पूजयान् चक्रुः प्रतिलब्ध मनोरथाः ॥ ३५ ॥

क्षणेन	- एक क्षणमें	**श्रीकृष्ण रूपिणं**	- श्रीकृष्णके समान रूपवाले
आगत विज्ञाना	- विशेष चेतना आनेपर	**उद्धवं दृष्ट्वा**	- उद्धवजीको देखकर
मनोरथाः	- अपनी अभिलाषा	**पूजयान् चक्रुः**	- (उनकी) पूजा करने लगे ॥ ३५ ॥
प्रतिलब्ध	- प्राप्त किये (वे लोग)		

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथोद्धवस्तु तान् दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान् ।
सत्कृत्याथ परिष्वज्य परीक्षितमुवाच ह ॥ १ ॥

अथ उद्धवः तु तान् दृष्ट्वा कृष्ण कीर्तन तत् परान् सत्कृत्या अथ परिष्वज्य परीक्षितं उवाच ह ॥ १ ॥

अथ उद्धवः तु	- फिर उद्धवजी तो	**सत्कृत्या**	- सत्कार पाकर
तान्	- उनको	**अथ परिष्वज्य**	- फिर आलिंगन करके
कृष्णकीर्तन	- श्रीकृष्णके कीर्तनमें	**परीक्षितं**	- परीक्षितसे
तत् परान् दृष्ट्वा	- तत्पर देखकर	**उवाच ह**	- निश्चयपूर्वक बोले ॥१॥

उद्धव उवाच-

धन्योऽसि राजन् कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा ।
यस्त्वं निमग्नचित्तोऽसि कृष्णसंकीर्तनोत्सवे ॥ २ ॥

धन्यः असि राजन् कृष्ण एक भक्त्या पूर्णः असि नित्यदा यः त्वं निमग्न चित्तः असि कृष्ण संकीर्तन उत्सवे ॥ २ ॥

राजन्	- राजन् !	**यः त्वं**	- जो तुम
धन्यः असि	- (तुम) धन्य हो,	**कृष्ण संकीर्तन**	- श्रीकृष्ण-संकीर्तन
कृष्ण एक-	- श्रीकृष्णकी अनन्य	**उत्सवे**	- उत्सवमें
भक्त्या	भक्तिसे	**निमग्न चित्तः-**	- निमग्न चित्तहो
नित्यदा-	- सदा पूर्ण हो,	**असि**	॥ २ ॥
पूर्णः असि			

कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता ।
तवोचितमिदं तात कृष्णदत्तांगवैभव ॥ ३ ॥

कृष्ण पत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता तव उचितं इदं तात कृष्ण दत्त अंग वैभव ॥ ३ ॥

दिष्ट्या - सौभाग्यकी बात है कि
कृष्णपत्नीषु - श्रीकृष्णकी पत्नियोंसे
च वज्रे - तथा वज्रनाभसे
प्रीतिः प्रवर्तिता - प्रेम करते हो,
कृष्णदत्त - श्रीकृष्णके दिये
अंग वैभव- - शरीर वैभव वाले
तव तुम्हारे लिए
तात इदं- - तात ! यह उचित ही
उचितं है ॥ ३ ॥

द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः ।
येषां व्रजनिवासाय पार्थमादिष्टवान् प्रभुः ॥ ४ ॥

द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः येषां व्रजनिवासाय पार्थं आदिष्टवान् प्रभुः ॥ ४ ॥

सर्वेषु - सब
द्वारकास्थेषु - द्वारिका वासियोंमें
एते धन्या - ये धन्य हैं
प्रभुः येषां - सर्व-समर्थ (श्रीकृष्ण) ने जिनको
व्रज निवासाय - व्रजमें बसानेके लिए
पार्थं आदिष्टवान् - अर्जुनको आदेश दिया था ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यप्रभयान्वितः ।
तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन् रोचते सदा ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णस्य मनः चन्द्रः राधा अस्य प्रभया अन्वितः तत् विहार वनं गोभिः मण्डयन् रोचते सदा ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णस्य - श्रीकृष्णका
मनः चन्द्रः राधा - मनरूपी चन्द्रमा श्रीराधा हैं,
तत् विहारवनं - उनका विहार-वन
अस्य प्रभया - उन (श्रीराधा) की
अन्वितः कान्ति
गोभिः मण्डयन् - किरणोंसे भूषित
सदा रोचते - सदा रुचिकर रहता है ॥ ५ ॥

कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः ।
चित्सहस्रप्रभाभिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता ॥ ६ ॥

कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णः तस्य षोडश याः कलाः चित् सहस्र प्रभा भिन्ना अत्र आस्ते तत् स्वरूपता ॥ ६ ॥

कृष्ण चन्द्रः - श्रीकृष्णरूपी चन्द्र
सदा पूर्णः - सदापूर्ण रहते हैं,
तस्य याः - उनकी जो
षोडशकलाः - सोलह कलायें हैं (वे)
चित् सहस्र - चिन्मय (जीवरूप) सहस्रों
प्रभा भिन्ना - रश्मियोंके रूपमें पृथक हुई हैं
अत्र तत् - यहां उनकी
स्वरूपता - साकारता है (यहां वे
आस्ते मूर्तिमान गोपीरूपा हैं) ॥ ६ ॥

एवं वज्रस्तु राजेन्द्र प्रपन्नभयभञ्जकः ।
श्रीकृष्णदक्षिणे पादे स्थानमेतस्य वर्तते ॥ ७ ॥

एवं वज्रः तु राजेन्द्र प्रपन्न भय भञ्जकः श्रीकृष्ण दक्षिणे पादे स्थानं एतस्य वर्तते ॥ ७ ॥

राजेन्द्र - राजेन्द्र !
एवं वज्रः तु - इसी प्रकार (वज्र रूपमें) वज्रनाभ
प्रपन्न - शरणागत
भय भञ्जकः - भय-नाशक हैं,
एतस्य स्थानं - इनका स्थान
श्रीकृष्ण-दक्षिणे पादे - श्रीकृष्णके दाहिने चरणमें
वर्तते - स्थित है ॥ ७ ॥

अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायातिभाविताः ।
तद्बलेनात्मविस्मृत्या सीदन्त्येते न संशयः ॥ ८ ॥

अवतारे अत्र कृष्णेन योगमाया अति भाविताः तत् बलेन आत्म विस्मृत्या सीदन्ति एते न संशयः ॥ ८ ॥

अत्र अवतारे - यहां अवतार लेनेपर
कृष्णेन - श्रीकृष्ण द्वारा
योगमाया - योगमायासे
अति भाविताः - अत्यन्त प्रभावित किये जानेसे
एते आत्म - ये सब अपनेको भूल
विस्मृत्या जानेसे
सीदन्ति - कष्ट पा रहे हैं
न संशयः - (इसमें) सन्देह नहीं ॥८॥

ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित् ।
तत्प्रकाशस्तु जीवानां मायया पिहितः सदा ॥ ९ ॥

ऋते कृष्ण प्रकाशं तु स्व आत्मबोधः न कस्यचित् तत् प्रकाशः तु जीवानां मायया पिहितः सदा ॥ ९ ॥

कृष्ण प्रकाशं - श्रीकृष्णके प्रकाश (दर्शन) के
ऋते तु- - बिना तो किसीको भी
कस्यचित्
स्व- - अपने स्वरूपका
आत्मबोधः न ज्ञान नहीं होता,
जीवानां तु - जीवोंके लिए तो
तत् प्रकाशः - वह श्रीकृष्णका प्रकाश
सदा (साक्षात्कार) सदा
मायया पिहितः - मायासे ढका रहता है ॥ ९ ॥

अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः ।
उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशो भवेत्तदा ॥ १० ॥

अष्टाविंशे द्वापर अन्ते स्वयं एव यदा हरिः उत्सारयेत् निजां मायां तत् प्रकाशः तदा भवेत् ॥ १० ॥

अष्टाविंशे	- अट्ठाइसवें	**स्वयं उत्सारयेत्**	- स्वयं उठा लेते हैं,
द्वापर अन्ते	- द्वापरयुगके अन्तमें	**तदा तत्**	- तब उनका प्रकाश
यदा हरिः	- जब श्रीहरि	**प्रकाशः**	(साक्षात्कार)
निजां मायां	- अपनी मायाको	**भवेत्**	- होता है ॥ १० ॥

स तु कालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं शृणु ।
अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥ ११॥

स तु कालः व्यतिक्रान्तः तेन इदं अपरं शृणु अन्यदा तत् प्रकाशः तु श्रीमद्भागवतात् भवेत् ॥ ११ ॥

स कालः तु	- वह समय तो	**अन्यदा**	- दूसरा (उपाय) है
व्यतिक्रान्तः	- व्यतीत होगया	**तत् प्रकाशः तु**	- उन (श्रीकृष्ण) का
तेन इदं अपरं	- इसलिए यह दूसरा		प्रकाश तो
	(उपाय)	**श्रीमद्भागवतात्**	- श्रीमद्भागवतसे
शृणु	- सुनो !	**भवेत्**	- होता है ॥ ११ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा ।
कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैः यदा कीर्त्यते श्रूयते च अपि श्रीकृष्णः तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥

यत्र यदा	- जहां जब	**च श्रूयते अपि**	- तथा श्रवण भी
भागवतैः	- भगवद्भक्तों द्वारा		(होता है)
श्रीमद्भागवतं-	- श्रीमद्भागवत शास्त्रका	**श्रीकृष्णः तत्र**	- श्रीकृष्ण वहां
शास्त्रं		**निश्चितं**	- निश्चित रूपसे (रहते हैं)
कीर्त्यते	- कीर्तन (कथा)		॥ १२ ॥

श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ।
तत्रापि भगवान् कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते ॥ १३ ॥

श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्धं एव च तत्र अपि भगवान् कृष्णः वल्लवीभिः विराजते ॥ १३ ॥

यत्र-श्रीमद्भागवतं	- जहां श्रीमद्भागवतका	**तत्र अपि**	- वहां भी
श्लोकं च	- एक श्लोक या	**भगवान् कृष्णः**	- भगवान् श्रीकृष्ण
श्लोकार्धं एव	- आधा श्लोक भी (होता है)	**वल्लवीभिः-विराजते**	- गोपियोंके साथ विराजमान रहते हैं ॥ १३ ॥

भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः ।
श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः ॥ १४ ॥

भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः श्रुतं पाप पराधीनैः आत्मघातः तु तैः कृतः ॥ १४ ॥

भारते	- भारतवर्षमें	**भागवतं न श्रुतं**	- श्रीमद्भागवत नहीं सुना
मानवं जन्म	- मनुष्य जन्म	**तैः तु**	- उन्होंने (जैसे)
प्राप्य	- पाकर	**आत्मघातः-कृतः**	- आत्महत्या कर ली ॥ १४ ॥
यैः पाप-पराधीनैः	- जिन पापके पराधीनोंने		

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितम् ।
पितुर्मातुश्च भार्यायाः कुलपङ्क्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितं पितुः मातुः च भार्यायाः कुल पंक्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥

यैः नित्यं	- जिन्होंने सदा	**पितुः मातुः**	- पिता-माता
श्रीमद्भागवतं-शास्त्रं	- श्रीमद्भागवत शास्त्रका	**च भार्यायाः**	- तथा पत्नीके
परिसेवितं	- भली प्रकार सेवन किया (उन्होंने)	**कुल पंक्तिः**	- कुलोंकी पंक्तिका
		सुतारिता	- उत्तम उद्धार कर दिया ॥ १५ ॥

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद् भवेत् ।। १६ ।।

विद्या प्रकाशः विप्राणां राज्ञां शत्रुजयः विशां धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवतात् भवेत् ।। १६ ।।

श्रीमद्भागवतात् - श्रीमद्भागवतसे
विप्राणां - ब्राह्मणोंको
विद्या प्रकाशः - विद्याका प्रकाश,
राज्ञां शत्रुजयः - राजाओंकी शत्रुपर विजय,
विशां धनं - वैश्योंको धन,
च शूद्राणां - तथा शूद्रोंको
स्वास्थ्यं भवेत् - (उत्तम) स्वास्थ्य (प्राप्त) होता है ।। १६ ।।

योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम् ।
अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान् ।। १७ ।।

योषितां अपरेषां च सर्व वाञ्छित पूरणं अतः भागवतं नित्यं कः न सेवेत भाग्यवान् ।। १७ ।।

योषितां च - स्त्रियोंका तथा
अपरेषां सर्व - दूसरोंका सब
वाञ्छित पूरणं - अभीष्ट पूरा करने वाला है,
अतः कः भाग्यवान् - अतः कौन भाग्यवान
भागवतं - भागवतका
सेवेत न - सेवन नहीं करेगा ।।१७।।

अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् ।
प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्भवस्तत्र जायते ।। १८ ।।

अनेक जन्म संसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् प्रकाशः भगवद्भक्तेः उद्भवः तत्र जायते ।। १८ ।।

अनेक जन्म	- अनेक जन्मोंमें	**तत्र भगवद्भक्तेः**	- (क्योंकि) उससे
संसिद्धः	- सिद्ध (प्रायः) होजानेपर		भगवद्भक्ति रूपी
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**प्रकाशः उद्भवः**	- प्रकाशकी उत्पत्ति
लभेत्	- पाता है,	**जायते**	- होती है ॥ १८ ॥

सांख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा ।
बृहस्पतिर्दत्तवान् मे तेनाहं कृष्णवल्लभः ॥ १९ ॥

सांख्यायन प्रसाद आप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा बृहस्पतिः दत्तवान् मे तेन अहं कृष्ण वल्लभः ॥ १९ ॥

सांख्यायन	- महर्षि सांख्यायनकी	**बृहस्पतिः**	- देवगुरु वृहस्पतिने
प्रसाद आप्तं	- कृपासे प्राप्त	**मे दत्तवान्**	- मुझे दिया,
पुरा-	- पहिले श्रीमद्भागवतको	**तेन अहं**	- उससे मैं
श्रीमद्भागवतं		**कृष्ण वल्लभः**	- श्रीकृष्णका प्रिय
			होगया ॥ १९ ॥

आख्यायिकां च तेनोक्तां विष्णुरात निबोध ताम् ।
ज्ञायते सम्प्रदायोऽपि यत्र भागवतश्रुतेः ॥ २० ॥

आख्यायिकां च तेन उक्तां विष्णुरात निबोध तां ज्ञायते सम्प्रदायः अपि यत्र भागवत श्रुतेः ॥ २० ॥

विष्णुरात	- परीक्षित !	**यत्र भागवत**	- जिसमें भागवत सुननेका
तेन उक्तां	- उनके द्वारा कही हुई	**श्रुतेः**	
आख्यायिकां च	- आख्यायिका भी है	**सम्प्रदायः अपि**	- सम्प्रदाय (परम्परा) भी
तां निबोध	- उसे सुनो,	**ज्ञायते**	- जानी जाती है ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच-

ईक्षाञ्चक्रे यदा कृष्णो मायापुरुषरूपधृक् ।
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चापि रजः सत्त्वतमोगुणैः ॥ २१ ॥

ईक्षान् चक्रे यदा कृष्णः माया पुरुष रूप धृक् ब्रह्मा, विष्णुः शिवः च अपि रजः सत्त्व तमः गुणैः ॥ २१ ॥

यदा कृष्णः - जब श्रीकृष्णने	**रजः ब्रह्मा** - रजोगुणसे ब्रह्मा
पुरुषरूप धृक् - पुरुषरूप धारण करके	**सत्त्व विष्णुः** - सत्त्वगुणसे विष्णु
माया ईक्षान्- - मायाको देखा तब	**च तमः गुणैः** - तथा तमोगुणसे
चक्रे	**शिवः अपि** - शिव भी ॥ २१ ॥

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत् ।
उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥

पुरुषाः त्रय उत्तस्थुः अधिकारान् तदा आदिशत् उत्पत्तौ पालने च एव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥

तदा त्रय- - तब तीनों (ये) पुरुष	**उत्पत्तौ पालने** - सृष्टि, पालन,
पुरुषाः	**च संहारे एव** - तथा प्रलयके भी
उत्तस्थुः - (उस मायासे) प्रकट होगये,	**अधिकारान्** - अधिकार
तदा तान् - तब उनको	**आदिशत्** - बतलाये ॥ २२ ॥
प्रक्रमेण - क्रमानुसार	

ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत् ।

ब्रह्मा तु नाभि कमलात् उत्पन्नः व्यजिज्ञपत् ।

नाभिकमलात् - नाभिकमलसे	**तं व्यजिज्ञपत्** - उनको सूचित किया
उत्पन्नः ब्रह्मा - उत्पन्न ब्रह्माजीने	

ब्रह्मोवाच-

नारायणादिपुरुष परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

नारायण आदि पुरुष परमात्मन् नमः अस्तु ते ॥ २३ ॥

आदिपुरुष - आदिपुरुष	**नारायण** - नारायण !
परमात्मन् - परमात्मा	**ते नमः अस्तु** - आपको नमस्कार हो ॥ २३ ॥

त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान् मां रजोगुणः ।
त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो ॥ २४ ॥

त्वया सर्गे नियुक्तः अस्मि पापीयान् मां रजोगुणः त्वत् स्मृतौ न एव बाधेत तथा एव कृपया प्रभो ॥ २४ ॥

प्रभो	- स्वामी !	**रजोगुणः**	- रजोगुण
त्वया सर्गे	- आपके द्वारा सृष्टि करनेमें	**त्वत् स्मृतौ**	- आपका स्मरण करनेमें
		न एव बाधेत	- नहीं ही बाधा दे
नियुक्तः अस्मि	- नियुक्त हुआ हूं,	**तथा एव-**	- ऐसी ही कृपा
मां पापीयान्	- मुझे पाप-प्रवृत्ति वाला	**कृपया**	कीजिए ॥ २४ ॥

बृहस्पतिरुवाच-

यदा तु भगवांस्तस्मै श्रीमद्भागवतं पुरा ।
उपदिश्याब्रवीद् ब्रह्मन् सेवस्वैनत् स्वसिद्धये ॥ २५ ॥

यदा तु भगवान् तस्मै श्रीमद्भागवतं पुरा उपदिश्य अब्रवीत् ब्रह्मन् सेवस्व ऐनत् स्वसिद्धये ॥ २५ ॥

यदा तु तस्मै	- जब तो उनको	**उपदिश्य**	- उपदेश करके
भगवान्	- भगवानने	**अब्रवीत् ब्रह्मन्**	- कहा- 'ब्रह्मन् !
पुरा- श्रीमद्भागवतं	- पहिले श्रीमद्भागवतका	**स्वसिद्धये**	- अपनी (इच्छा) पूर्तिके लिए
		ऐनत् सेवस्व	- इसका सेवन कीजिए ॥ २५ ॥

ब्रह्मा तु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम् ।
सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा तु परमप्रीतः तेन कृष्ण आप्तये अनिशं सप्त आवरण भङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा तु - ब्रह्माजी तो
परमप्रीतः - अत्यन्त प्रसन्न होकर
अनिशं - अहर्निश
कृष्ण आप्तये - श्रीकृष्णकी प्राप्ति तथा
सप्त आवरण - सात (मायादि) आवरणोंको
भङ्गाय - भंग करनेके लिए
सप्ताहं - (भागवत) सप्ताह
समवर्तयत् - भली प्रकार करने लगे ॥ २६ ॥

श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः ।
सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनः पुनः ॥ २७ ॥

श्रीभागवत सप्ताह सेवन आप्त मनोरथः सृष्टिं वितनुते नित्यं स सप्ताहः पुनः पुनः ॥ २७ ॥

श्रीभागवत - श्रीमद्भागवतके
सप्ताहसेवन - सप्ताह विधि सेवनसे
आप्त मनोरथः - (उनके) मनोरथ प्राप्त होगये,
स सप्ताहः - सप्ताह करते हुए वे
नित्यं पुनः-पुनः - सदा बार-बार
सृष्टिं वितनुते - सृष्टि-विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥

विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये ।
प्रजानां पालने पुंसा यदनेनापि कल्पितः ॥ २८ ॥

विष्णुः अपि अर्थयामास पुमांसं स्व अर्थ सिद्धये प्रजानां पालने पुंसा यत् अनेन अपिकल्पितः ॥ २८ ॥

यत् पुंसा - क्योंकि परमपुरुषने
अनेन अपि - इनको भी
प्रजानां पालने - प्रजाके पालनमें
कल्पितः - नियुक्त किया था (अतः)
विष्णुः अपि - विष्णु ने भी
स्व अर्थ सिद्धये - अपनी प्रयोजन सिद्धिके लिए
पुमांसं - परम पुरुषसे
अर्थयामास - प्रार्थनाकी ॥ २८ ॥

विष्णुरुवाच-

प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथोचितम् ।
प्रवृत्त्या च निवृत्त्या च कर्मज्ञानप्रयोजनात् ॥ २९ ॥

प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथा उचितं प्रवृत्त्या च निवृत्त्या च कर्म ज्ञान प्रयोजनात् ॥ २९ ॥

देव	- देव !	**निवृत्त्या**	- निवृत्तिके द्वारा
कर्म प्रयोजनात्	- कर्मके प्रयोजनसे	**यथा उचितं**	- जैसे उचित होगा वैसे
प्रवृत्त्या	- प्रवृत्तिके द्वारा	**प्रजानां**	- प्रजाका
च ज्ञान	- तथा ज्ञानके लिए	**पालनं करिष्यामि**	-पालन करूँगा ॥२९॥

यदा यदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति ।
धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा ॥ ३० ॥

यदा यदा एव कालेन धर्म ग्लानिः भविष्यति धर्मं संस्थापयिष्यामि हि अवतारैः तदा तदा ॥ ३० ॥

कालेन	- कालके प्रभावसे	**तदा तदा**	- तब तब
यदा यदा	- जब-जब	**अवतारैः**	- अवतारोंके द्वारा
धर्म ग्लानिः	- धर्मकी दुर्बलता	**धर्मं**	- धर्मकी
हि भविष्यति	- क्योंकि हो जायगी,	**संस्थापयिष्यामि**	- ठीक स्थापना करुँगा ॥ ३० ॥

भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम् ।
मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा ॥ ३१ ॥

भोग अर्थिभ्यः तु यज्ञ आदि फलं दास्यामि निश्चितं मोक्ष अर्थिभ्यः विरक्तेभ्यः मुक्तिं पञ्च विधां तथा ॥ ३१ ॥

भोग-	- भोग चाहने वालोंका	**विरक्तेभ्यः**	- (भोगोंसे) विरक्त
अर्थिभ्यः तु	जो	**मोक्ष अर्थिभ्यः**	- मोक्ष चाहने वालोंको
यज्ञ आदि-	- (उनके) यज्ञ आदिका	**पञ्चविधां**	- पांच प्रकारकी (सालोंका,
निश्चितं	निश्चित		सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि,
फलं	- फल तथा		सायुज्य)
		मुक्तिं दास्यामि	- मुक्ति दूंगा ॥ ३१ ॥

येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान् कथं पालयाम्यहम् ।
आत्मानं च श्रियं चापि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥

ये अपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान् कथं पालयामि अहं आत्मानं च श्रियं च अपि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥

ये मोक्षं अपि	- जो मोक्ष भी	**च आत्मानं**	- तथा अपना
न वाञ्छन्ति	- नहीं चाहते	**च श्रियं अपि**	- और लक्ष्मीजी का भी
तान् कथं	- उनका कैसे	**कथं पालयामि**	- कैसे पालन करूँ
पालयामि	- पालन करूँ	**वद**	- (यह) बतलाइय ॥३२॥

वृहस्पतिरुवाच-१

तस्मा अपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत् ।
उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये ॥ ३३ ॥

तस्मा अपि पुमान् आद्यः श्रीभागवतं आदिशत् उवाच च पठस्व ऐनत् तव सर्व अर्थ सिद्धये ॥ ३३ ॥

तस्मा अपि	- उनको भी	**तव सर्व**	- तुम अपने सब
पुमान् आद्यः	- आदि पुरुष (नारायण) ने	**अर्थ सिद्धये**	- प्रयोजनकी सिद्धिके लिए
श्रीभागवतं	- श्रीमद्भागवतका	**ऐनत् पठस्व**	- इसको पढ़ो (पाठ करो)
आदिशत्	- उपदेश किया,		॥ ३३ ॥
च उवाच	- तथा बोले		

यह उवाच गीताप्रेस की प्रतिमें नहीं है ।

ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा परमार्थकपालने ।
समर्थोऽभूच्छ्रिया मासि मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥

ततः विष्णुः प्रसन्न आत्मा परमार्थक पालने समर्थः अभूत् श्रिया मासि मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥

ततः विष्णुः	- इससे विष्णु भगवान	**भागवतं स्मरन्**	- भागवतका चिन्तन करते हुए
प्रसन्न आत्मा	- प्रसन्न चित्त होगये,	**परमार्थक पालने**	- परमार्थके पालनमें
मासिमासि श्रिया	- महीने महीने (के क्रमसे) लक्ष्मीके साथ	**समर्थः अभूत्**	- समर्थ होगये ॥ ३४ ॥

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता ।
तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीः च श्रवणे रता तदा भागवत श्रावः मासेन एव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

यदा स्वयं-विष्णुः	- जब स्वयं विष्णु भगवान	**तदा मासेन-एव**	- तब एक महीनेके क्रमसे ही
वक्ता च	- वक्ता होते हैं और	**पुनः पुनः**	- बार-बार
लक्ष्मीः श्रवणे-रता	- लक्ष्मीजी श्रवण करने लगती हैं	**भागवत श्रावः**	- भागवतका श्रवण होता है ॥ ३५ ॥

यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः ।
मासद्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते ॥ ३६ ॥

यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुः च श्रवणे रतः मास द्वयं रस आस्वादः तदा अतीव सुशोभते ॥ ३६ ॥

यदा स्वयं	- जब स्वयं	**तदा मास द्वयं**	- तब दो महीने तक
लक्ष्मीः वक्त्री	- लक्ष्मीजी बोलने वाली होती हैं	**अतीव रस-आस्वादः**	- अत्यधिक रसास्वादन
च विष्णुः-	- तथा भगवान विष्णु	**सुशोभते**	- सुशोभित होता है
श्रवणे रतः	श्रवण करने लगते हैं		॥ ३६ ॥

अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा ।
तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥

अधिकारे स्थितः विष्णुः लक्ष्मीः निश्चिन्त मानसा तेन भागवत आस्वादः तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥

विष्णुः	- भगवान विष्णु	**तेन भागवत**	- इसलिए भागवतका
अधिकारे स्थितः	- अधिकार के पदपर स्थित हैं (परन्तु)	**आस्वादतस्या**	- रसास्वादन उनको
लक्ष्मीः	- लक्ष्मीजी	**भूरि प्रकाशते**	- अधिक प्रगट होता है
निश्चिन्त मानसाः	- निश्चिन्त चित्त हैं,		॥ ३७ ॥

अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा ।
पुमांसं प्रार्थयामास स्वसामर्थ्यविवृद्धये ॥ ३८ ॥

अथ रुद्रः अपि तं देवं संहार अधिकृतः पुरा पुमांसं प्रार्थयामास स्व सामर्थ्य विवृद्धये ॥ ३८ ॥

पुरा संहार	- पहिले संहारके लिए	**विवृद्धये**	- बढ़ानेके लिए
अधिकृतः	- अधिकार प्राप्त	**तं देवं पुमांसं**	- उन देव परमपुरुषसे
अथ रुद्रः अपि	- फिर रुद्र ने भी	**प्रार्थयामास**	- प्रार्थनाकी ॥ ३८ ॥
स्व सामर्थ्य	- अपनी शक्ति		

रुद्र उवाच-

नित्ये नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा ।
शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो ॥ ३९ ॥

नित्ये नैमित्तिके च एव संहारे प्राकृते तथा शक्तयः मम विद्यन्ते देव देव मम प्रभो ॥ ३९ ॥

मम प्रभो	- मेरे स्वामी !	**च प्राकृते-संहारे**	- तथा प्राकृतिक प्रलयकी
देव देव	- देवाधिदेव !	**तथा मम**	- ठीक ठीक मेरी
नित्ये नैमित्तिके	- नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय,	**शक्तयः विद्यन्ते**	- शक्तियाँ हैं ॥ ३९ ॥

आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते ।
महद्दुःखं ममैतत्तु तेन त्वां प्रार्थयाम्यहम् ॥ ४० ॥

आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिः न विद्यते महत् दुःखं मम एतत् तु तेन त्वां प्रार्थयामि अहम् ॥ ४० ॥

तु आत्यन्तिके	- किन्तु आत्यन्तिक	**मम एतत्**	- मुझे यह
संहारे	- प्रलय (मोक्ष) में	**महत् दुःखं**	- महान दुःख है,
मम शक्तिः	- मुझमें शक्ति	**तेन त्वां**	- इसलिए आपसे
न विद्यते	- नहीं है,	**अहं प्रार्थयामि**	- मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ४० ॥

बृहस्पतिरुवाच-

श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ ।
स तु संसेवनादस्य जिग्ये चापि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणः ददौ स तु संसेवनात् अस्य जिग्ये च अपि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥

तस्मा अपि	- उनको भी	**स तु अस्य**	- उन्होंने तो इस (भागवत) के
नारायणः	- श्री नारायणने	**सं सेवनात्**	- निरन्तर सेवनसे
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**तमोगुणं अपि**	- तमोगुणको भी
ददौ	- प्रदान किया	**जिज्ञे च**	- जीत ही लिया ॥४१॥

कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः ।
लये त्वात्यन्तिके तेनावाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥

कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः लये तु आत्यन्तिके तेन अवाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥

तेन वर्षमात्रतः	- उन्होंने एक वर्षके क्रमसे	**आत्यन्तिके**	- आत्यन्तिक
भागवती कथा	- भागवतकी कथाका	**लये तु**	- प्रलय (मोक्ष) की भी
सेविता	- सेवन किया	**शक्तिं अवाप**	- शक्ति प्राप्त कर ली ॥ ४२ ॥
तेन सदाशिवः	- उससे सदाशिवने		

उद्धव उवाच-

श्रीभागवतमाहात्म्य इमामाख्यायिकां गुरोः ।
श्रुत्वा भागवतं लब्ध्वा मुमुदेऽहं प्रणम्य तम् ॥ ४३ ॥

श्रीभागवत माहात्म्य इमां आख्यायिकां गुरोः श्रुत्वा भागवतं लब्ध्वा मुमुदे अहं प्रणम्य तम् ॥ ४३ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतके	**भागवतं लब्ध्वा**	- भागवत प्राप्त करके
माहात्म्य	- माहात्म्यकी	**तं प्रणम्य**	- उनको प्रणाम करके
इमां आख्यायिकां	- यह आख्यायिका	**अहं मुमुदे**	- मैं आनन्दित हुआ ॥ ४३ ॥
गुरोः श्रुत्वा	- गुरुदेव (वृहस्पति) से सुनकर और		

ततस्तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मासमात्रतः ।
श्रीमद्भागवतास्वादो मया सम्यङ्निषेवितः ॥ ४४ ॥

ततः तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मास मात्रतः श्रीमद्भागवत आस्वादः मया सम्यक् निषेवितः ॥ ४४ ॥

ततः तु - तब से ही	**श्रीमद्भागवत** - श्रीमद्भागवतका
वैष्णवीं रीतिं - वैष्णव-पद्धति	**आस्वादः सम्यक्** - रस भली प्रकार
गृहीत्वा - ग्रहण करके	**निषेवितः** - सेवन किया ॥४४॥
मया मासमात्रतः - मैंने एक महीनेके क्रमसे	

तावतैव बभूवाहं कृष्णस्य दयितः सखा ।
कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे ॥ ४५ ॥

तावत् एव बभूव अहं कृष्णस्य दयितः सखा कृष्णेन अथ नियुक्तः अहं व्रजे स्वप्रेयसी गणे ॥ ४५ ॥

तावत् एव - तब से ही	**अथ कृष्णेन** - फिर श्रीकृष्ण द्वारा
अहं कृष्णस्य - मैं श्रीकृष्णका	**स्वप्रेयसी गणे** - अपनी प्रेमिका वर्ग (गोपियों) के पास
दयितः सखा - प्रिय सखा	**व्रजे अहं-** - व्रज (जाने) को मैं
बभूव एव - हो ही गया,	**नियुक्तः** नियुक्त हुआ ॥ ४५ ॥

विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा ।
श्रीभागवतसन्देशो मन्मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

विरह आर्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्य विहारिणा श्रीभागवत सन्देशः मत् मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

विरह आर्त्तासु - वियोग व्याकुला
गोपीषु - गोपियोंको
स्वयं नित्य - स्वयं नित्य
विहारिणा - विहार करने वाले (श्रीकृष्ण) ने
मत् मुखेन - मेरे मुखसे
श्रीभागवत - श्रीभागवतका
सन्देशः प्रयोजितः - सन्देश दिया
॥ ४६ ॥

तं यथामति लब्ध्वा ता आसन् विरहवर्जिताः ।
नाज्ञासिषं रहस्यं तच्चमत्कारस्तु लोकितः ॥ ४७ ॥

तं यथा मति लब्ध्वा ता आसन् विरह वर्जिताः न अज्ञासिषं रहस्यं तत् चमत्कारः तु लोकितः ॥ ४७ ॥

तं यथा मति - उस (सन्देश) को बुद्धिके अनुसार
लब्ध्वा ता - प्राप्त करके वे (गोपियां)
विरह वर्जिताः - वियोग रहिता
आसन् - होगयीं,
तत् रहस्यं - इसका रहस्य (मैं)
न अज्ञासिषं - नहीं जान सका
तु चमत्कारः - किन्तु (भागवतका) चमत्कार
लोकितः - प्रत्यक्ष देखा ॥ ४७ ॥

स्ववासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे ।
श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यं स्वयं ददौ ॥ ४८ ॥

स्वः वासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्मा आद्येषु गतेषु मे श्रीमद्भागवते कृष्णः तत् रहस्यं स्वयं ददौ ॥ ४८ ॥

ब्रह्मा आद्येषु - ब्रह्मा आदिके
कृष्णं च - श्रीकृष्णसे
स्वः वासं प्रार्थ्य - स्वधाम निवासकी प्रार्थना करके
गतेषु - चले जानेपर
कृष्णः स्वयं - श्रीकृष्णने स्वयं
तत्-श्रीमद्भागवते - वह श्रीमद्भागवतका
रहस्यं मे ददौ - रहस्य मुझे दिया
॥ ४८ ॥

पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद् दृढम् ।
तेनात्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥ ४९ ॥

पुरतः अश्वत्थ मूलस्य चकार मयि तत् दृढं तेन अत्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥ ४९ ॥

अश्वत्थ	- पीपलकी	**तेन बदरीं**	- उसी (के प्रभाव) से
मूलस्य पुरतः	- जड़के आगे (बैठे हुए)	**गतः**	बदरीनाथ जाकर भी
तत् मयि दृढं	- उसे मुझमें दृढ़	**अत्र व्रज-**	- यहां व्रजकी लताओंमें
चकार	- किया	**वल्लीषु**	
		वसामि	- निवास करता हूँ ॥४९॥

तस्मान्नारदकुण्डेऽत्र तिष्ठामि स्वेच्छया सदा ।
कृष्णप्रकाशो भक्तानां श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥ ५० ॥

तस्मात् नारद कुण्डे अत्र तिष्ठामि स्व इच्छया सदा कृष्ण प्रकाशः भक्तानां श्रीमद्भागवतात् भवेत् ॥ ५० ॥

तस्मात् अत्र	- इसलिए यहां	**भक्तानां**	- भक्तोंको
नारद कुण्डे	- नारद कुण्डके समीप	**कृष्ण प्रकाशः**	- श्रीकृष्णका प्रकाश (साक्षात्कार)
स्व इच्छया	- अपनी इच्छासे	**श्रीमद्भागवतात्**	- श्रीमद्भागवतसे
सदा तिष्ठामि	- सदा रहता हूँ,	**भवेत्**	- होता है ॥ ५० ॥

तदेषामपि कार्यार्थं श्रीमद्भागवतं त्वहम् ।
प्रवक्ष्यामि सहायोऽत्र त्वयैवानुष्ठितो भवेत् ॥ ५१ ॥

तत् एषां अपि कार्य अर्थं श्रीमद्भागवतं तु अहं प्रवक्ष्यामि सहायः अत्र त्वया एव अनुष्ठितः भवेत् ॥ ५१ ॥

तत् एषां अपि	- अतः इन लोगोंका भी	**प्रवक्ष्यामि**	- प्रवचन करूँगा,
कार्य अर्थं	- काम बनानेके लिए	**अत्र त्वया एव**	- इसमें तुमको ही
अहं तु	- मैं तो	**सहायः-**	- सहायता (की व्यवस्था)
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवतका	**अनुष्ठितः**	करनी
		भवेत्	- चाहिए ॥ ५१ ॥

सूत उवाच-

विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत् ।

विष्णुरातः तु श्रुत्वा तत् उद्धवं प्रणतः अब्रवीत् ।

तत् श्रुत्वा तु	- उसे सुनकर तो	**प्रणतः**	- प्रणाम करके
विष्णुरातः	- परीक्षितने	**उद्धवं अब्रवीत्**	- उद्धवजीसे कहा ।

परीक्षिदुवाच-

हरिदास त्वया कार्यं श्रीभागवतकीर्तनम् ॥ ५२ ॥

हरिदास त्वया कार्यं श्रीभागवत कीर्तनम् ॥ ५२ ॥

हरिदास	- हरिदास उद्धव जी !	**श्रीभागवत**	- श्रीभागवतका
त्वया	- आपको	**कीर्तनं कार्यं**	- कीर्तन (प्रवचन) करना चाहिए ॥ ५२ ॥

आज्ञाप्योऽहं यथा कार्यः सहायोऽत्र मया तथा ।

आज्ञाप्यः अहं यथा कार्यः सहायः अत्र मया तथा ।

यथा मया	- जैसे मेरे द्वारा	**अहं**	- मुझे भी
अत्र सहायः	- इस काममें सहायता	**आज्ञाप्यः**	- आज्ञा देनी चाहिए ।
कार्यः तथा	- करनी हो वैसी		

सूत उवाच-

श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीतमानसः ॥ ५३ ॥

श्रुत्वा एतत् उद्धवः वाक्यं उवाच प्रीतमानसः ॥ ५३ ॥

एतत् श्रुत्वा - यह सुनकर	**उद्धवः** - उद्धव जी
प्रीत मानसः - प्रसन्नचित्त	**वाक्यं उवाच** - (प्रयोजनकी) बात बोले ॥ ५३ ॥

उद्धव उवाच-

श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान् कलिः ।
करिष्यति परं विघ्नं सत्कार्ये समुपस्थिते ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान् कलिः करिष्यति परं विघ्नं सत् कार्ये सम उपस्थिते ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्णेन - श्रीकृष्णके	**सम उपस्थिते** - आरम्भ किये जानेपर
भूतले परित्यक्ते - पृथ्वीतल छोड़ देनेपर	**बलवान् कलिः** - बलवान कलियुग
सत् कार्ये - उत्तम कार्यके	**परं विघ्नं** - बहुत बड़े विघ्न
	करिष्यति - करेगा ॥ ५४ ॥

तस्माद् दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर ।
अहं तु मासमात्रेण वैष्णवीं रीतिमास्थितः ॥ ५५ ॥

तस्मात् दिग्विजयं याहि कलि निग्रहं आचर अहं तु मास मात्रेण वैष्णवीं रीतिं आस्थितः ॥ ५५ ॥

तस्मात् - इसलिए	**अहं तु** - मैं तो
दिग्विजयं याहि - दिग्विजय करने जाओ,	**वैष्णवीं रीतिं** - वैष्णवोंकी पद्धतिका
कलि निग्रहं - कलियुगका नियन्त्रण	**आस्थितः** - अवलम्बन करके
आचर - करो,	**मासमात्रेण** - एक महीनेमें ही ॥५५॥

श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य त्वत्सहायतः ।
एतान् सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥

श्रीमद्भागवत आस्वादं प्रचार्य त्वत् सहायतः एतान् सम्प्रापयिष्यामि नित्य धाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥

त्वत् सहायतः - तुम्हारी सहायतासे
श्रीमद्भागवत - श्रीमद्भागवत
आस्वादं प्रचार्य - रसका प्रचार करके
एतान् मधुद्विषः- इनको मधुसूदनके
नित्य धाम्नि - नित्य धाममें
सम्प्रापयिष्यामि - ठीक-ठीक पहुँचा दूँगा ॥ ५६ ॥

सूत उवाच-

श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयाऽऽतुरः ।
तदा विज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम् ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा एवं तत् वचः राजा मुदितः चिन्तया आतुरः तदा विज्ञापयामास स्व अभिप्रायं तं उद्धवम् ॥ ५७ ॥

एवं तत् वचः - इस प्रकार उनकी बात
श्रुत्वा राजा - सुनकर राजा परीक्षित
मुदितः - प्रसन्न हुए तथा
चिन्तया आतुरः - चिन्तासे व्याकुल होकर
तदा तं उद्धवं - उन उद्धवजीसे
स्व अभिप्रायं - अपना अभिप्राय
विज्ञापयामास - सूचित किया ॥ ५७ ॥

परीक्षिदुवाच-

कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः ।
श्रीभ्रागवतसम्प्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥ ५८ ॥

कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः श्रीभागवत सम्प्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥ ५८ ॥

तात - तात !
वचसि स्थितः - आपकी आज्ञामें स्थित होकर
कलिं तु - कलियुगका तो
निग्रहीष्यामि - नियन्त्रण करूँगा (पर)
श्रीभागवत - श्रीमद्भागवतकी
सम्प्राप्तिः - ठीक प्राप्ति
मम कथं - मुझे कैसे
भविष्यति - होगी ॥ ५८ ॥

अहं तु समनुग्राह्यस्तव पादतले श्रितः ।

अहं तु सम अनुग्राह्यः तव पादतले श्रितः ।

तव पादतले - आपके चरण-तलवोंका
श्रितः अहं च - आश्रित मैं भी
सम अनुग्राह्यः - पूर्ण अनुग्रहके योग्य हूँ

सूत उवाच-

श्रुत्वैतद् वचनं भूयोऽप्युद्धवस्तमुवाच ह ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा एतत् वचनं भूयः अपि उद्धवः तं उवाच ह ॥ ५९ ॥

एतत् वचनं - यह बात
श्रुत्वा तं - सुनकर उनसे
उद्धवः भूयः - उद्धवने फिरसे
उवाच ह - निश्चित रूपसे कहा ॥ ५९ ॥

उद्धव उवाच-

राजंश्चिन्ता तु ते कापि नैव कार्या कथञ्चन ।
तवैव भगवच्छास्त्रे यतो मुख्याधिकारिता ॥ ६० ॥

राजन् चिन्ता तु ते कापि न एव कार्या कथञ्चन तव एव भगवत् शास्त्रे यतः मुख्य अधिकारिता ॥ ६० ॥

राजन् - राजन् !
ते तु कापि - तुमको तो कोई भी
चिन्ता कथञ्चन - चिन्ता किसी प्रकार
न एव कार्या - नहीं ही करनी चाहिए
यतः तव एव - क्योंकि तुम्हारा ही
भगवत् शास्त्रे - भागवत शास्त्रमें
मुख्य अधिकारिता - मुख्य अधिकार है ॥ ६० ॥

एतावत्कालपर्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः ।
वार्तामपि न जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः ॥ ६१ ॥

एतावत् कालपर्यन्तं प्रायः भागवत श्रुतेः वार्तां अपि न जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः ॥ ६१ ॥

एतावत्	- इतने	**भागवत श्रुतेः**	- भागवत रूपी श्रुतिकी
कालपर्यन्तं	- समयतक	**वार्तां अपि**	- चर्चा भी
कर्मतत्पराः	- कर्मपरायण	**न जानन्ति**	- नहीं जानते ॥ ६१ ॥
मनुष्याः	- मनुष्य लोग		

त्वत्प्रसादेन बहवो मनुष्याः भारताजिरे ।
श्रीमद्भागवतप्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

त्वत् प्रसादेन बहवः मनुष्याः भारत अजिरे श्रीमद्भागवत प्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

भारत अजिरे	- भारतवर्षके आंगनमें	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवत
त्वत् प्रसादेन	- तुम्हारी कृपासे	**प्राप्तौ शाश्वतं**	- प्राप्ति द्वारा नित्य
बहवः मनुष्याः	- बहुतसे मनुष्य	**सुखं प्राप्स्यन्ति**	- सुख प्राप्त करेंगे ॥ ६२ ॥

नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः ।
श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयम् ॥ ६३ ॥

नन्दनन्दन रूपः तु श्रीशुकः भगवान् ऋषिः श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यति असंशयम् ॥ ६३ ॥

असंशयं	- निस्सन्देह	**रूपः तु**	- स्वरूप ही हैं (वे)
भगवान्	- भगवान्	**तुभ्यं**	- तुमको
ऋषिः श्रीशुकः	- ऋषि श्रीशुकदेवजी	**श्रीमद्भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
नन्दनन्दन	- नन्दनन्दनके	**श्रावयिष्यति**	- श्रवण करावेंगे ॥६३॥

तेन प्राप्स्यसि राजंस्त्वं नित्यं धाम व्रजेशितुः ।
श्रीभागवतसञ्चारस्ततो भुवि भविष्यति ॥ ६४ ॥

तेन प्राप्स्यसि राजन् त्वं नित्यं धाम व्रज ईशितुः श्रीमद्भागवत सञ्चारः ततः भुवि भविष्यति ॥ ६४ ॥

राजन् त्वं - राजन् ! तुम
तेन व्रज ईशितुः - उससे व्रजेश्वरका
नित्यं धाम - नित्य धाम
प्राप्स्यसि - प्राप्त करोगे,
ततः भुवि - उसी (तुम्हारे श्रवण) से पृथ्वीपर
श्रीमद्भागवत - श्रीमद्भागवतका
सञ्चारः - प्रचलन
भविष्यति - होगा ॥ ६४ ॥

तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र कलिनिग्रहमाचर ।

तस्मात् त्वं गच्छ राजेन्द्र कलि निग्रहं आचर ।

राजेन्द्र - महाराज !
तस्मात् त्वं - इसलिए तुम
गच्छ कलि - जाओ, कलियुगका
निग्रहं आचर - नियन्त्रण करो ।

सूत उवाच-

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य गतो राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥

इति उक्तः तं परिक्रम्य गतः राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहे जानेपर
तं परिक्रम्य - उनकी परिक्रमा करके
दिशां जये - दिग्विजय करने
राजा गतः - राजा परीक्षित चले गये ॥ ६५ ॥

वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च ।
तत्रैव मातृभिः साकं तस्थौ भागवताशया ॥ ६६ ॥

वज्रः तु निज राज्य ईशं प्रतिबाहुं विधाय च तत्र एव मातृभिः साकं तस्थौ भागवत आशया ॥ ६६ ॥

वज्रः तु	- वज्रनाभ तो	**सः मातृभिः**	- वे माताओंके साथ
निज राज्य ईशं	- अपने राज्यका स्वामी	**साकं**	
प्रतिबाहुं विधाय	- (अपने पुत्र) प्रतिबाहुको बनाकर	**भागवत-आशया**	- भागवत (श्रवण) के विचार से
		तत्र एव तस्थौ	- वहीं ठहर गये ॥६६॥

अथ वृन्दावने मासं गोवर्धनसमीपतः ।
श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥

अथ वृन्दावने मासं गोवर्धन समीपतः श्रीमद्भागवत आस्वादः तु उद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥

अथ वृन्दावने	- फिर वृन्दावनमें	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवतका
गोवर्धन समीपतः	- गोवर्धनके समीप१	**आस्वादः**	- रसास्वादन
उद्धवेन	- उद्धवजी द्वारा	**प्रवर्तितः**	- कराया गया ॥ ६७ ॥

तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी ।
प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥

तस्मिन् आस्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्द रूपिणी प्रचकाशे हरेः लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥

तस्मिन्	- उस स्थान पर	**रूपिणी**	- स्वरूपा
आस्वाद्यमाने	- (भागवतका) रसास्वादन करते समय	**हरेः लीला**	- श्रीहरिकी लीला
		च कृष्ण एव	- तथा श्रीकृष्ण भी
तु सच्चिदानन्द	- तो सच्चिदानन्द	**सर्वतः-प्रचकाशे**	- सब ओर पूर्ण प्रत्यक्ष होगये ॥ ६८ ॥

---

१. **पहले यमुनाजी का प्रवाह गोवर्धन, नन्दगाँव, बरसाना के समीप था । यमुनाकी धाराके हटते जाने से वृन्दावन वर्तमान स्थान तक आ गया ।**

आत्मानं च तदन्तःस्थं सर्वेऽपि ददृशुस्तदा ।
वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे ॥ ६९ ॥

आत्मानं च तत् अन्तःस्थं सर्वे अपि ददृशुः तदा वज्रः तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपाद सरोरुहे ॥ ६९ ॥

तदा सर्वे अपि	- उस समय सबने ही	**वज्रः तु**	- वज्रनाभने तो
आत्मानं च	- अपनेको भी	**दक्षिणे कृष्ण**	- श्रीकृष्णके दाहिने
तत् अन्तःस्थं	- उस (लीला) के भीतर ही	**पाद सरोरुहे**	- चरण कमलमें
		दृष्ट्वा	- देखकर ॥ ६९ ॥
ददृशुः	- देखा,		

स्वात्मानं कृष्णवैधुर्यान्मुक्तस्तद्भुव्यशोभत ।
ताश्च तन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि ॥ ७० ॥

स्व आत्मानं कृष्ण वैधुर्यात् मुक्तः तत् भुवि अशोभत ताः च तत् मातरः कृष्णे रास रात्रि प्रकाशिनि ॥ ७० ॥

स्व आत्मानं	- अपने आपको	**अशोभत**	- शोभित होने लगे,
कृष्ण वैधुर्यात्	- श्रीकृष्णके वियोगसे	**च ताः-**	- तथा वे उनकी मातायें
मुक्तः	- छूटकर	**तत् मातरः**	
तत् भुवि	- उसी (दिव्य लीला) भूमिमें	**कृष्णे रास**	- श्रीकृष्णकी रासलीलाकी
		रात्रि-	- रात्रियोंको प्रकाशित
		प्रकाशिनि	करने वाली ॥ ७० ॥

चन्द्रे कलाप्रभारूपमात्मानं वीक्ष्य विस्मिताः ।
स्वप्रेष्ठविरहव्याधिविमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥

चन्द्रे कला प्रभा रूपं आत्मानं वीक्ष्य विस्मिताः स्वप्रेष्ठ विरह व्याधि विमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥

चन्द्रे कला - चन्द्रमाकी कलाकी
प्रभारूपं - प्रभाके रूपमें
आत्मानं वीक्ष्य - अपनेको देखकर
विस्मिताः - चकित होगयीं
स्व प्रेष्ठ विरह - अपने प्रियतमके वियोगकी
व्याधि विमुक्ताः - व्याधिसे छूटकर
स्वपदं ययुः - अपने (नित्य) धाम चली गयीं ॥ ७१ ॥

येऽन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीलान्तरं गताः ।
व्यावहारिकलोकेभ्यः सद्योऽदर्शनमागताः ॥ ७२ ॥

ये अन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीला अन्तरं गताः व्यावहारिक लोकेभ्यः सद्यः अदर्शनं आगताः ॥ ७२ ॥

तत्र ये अन्ये च - वहाँ जो दूसरे भी थे
ते सर्वे - वे सब
नित्य लीला - नित्यलीलाके
अन्तरं गताः - भीतर पहुँच गये (अतः)
व्यावहारिक - व्यावहारिक
लोकेभ्यः सद्यः - लीलामें से तत्काल
अदर्शनं - अदृश्य
आगताः - होगये ॥ ७२ ॥

गोवर्धननिकुञ्जेषु गोषु वृन्दावनादिषु ।
नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः ॥ ७३ ॥

गोवर्धन निकुञ्जेषु गोषु वृन्दावन आदिषु नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेम तत्परैः ॥ ७३ ॥

गोवर्धन - गोवर्धन पर्वतके
निकुञ्जेषु - निकुञ्जोंमें
गोषु - गायोंमें,
वृन्दावन आदिषु - वृन्दावन आदिमें
नित्यं कृष्णेन - सदा श्रीकृष्णके साथ
मोदन्ते - आनन्द करते हैं तथा
प्रेम तत्परैः - प्रेम-परायणों (भक्तों) द्वारा
दृश्यन्ते - देखे जाते हैं ॥७३॥१

---

१. गीताप्रेसकी प्रतिमें इसके आगे 'सूत उवाच' है । किन्तु श्लोक ६५ के उत्तरार्धसे 'सूत उवाच' ही चल रहा है, अतः यहां फिर उसे देने का कोई औचित्य नहीं है ।

सूत उवाच-

य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चापि कीर्तयेत् ।
तस्य वै भगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्च जायते ॥ ७४ ॥

य एतां भगवत् प्राप्तिं शृणुयात् च अपि कीर्तयेत् तस्य वै भगवत् प्राप्तिः दुःख हानिः च जायते ॥ ७४ ॥

य एतां	- जो इन लोगोंका	**वै तस्य**	- निश्चय उसको
भगवत् प्राप्तिं	- भगवानको प्राप्त करना	**भगवत् प्राप्तिः**	- भगवानकी प्राप्ति
शृणुयात्	- सुनता है	**च दुःख हानिः**	- तथा दुःखोंका नाश
च कीर्तयेत् अपि	- तथा (उसका) वर्णन भी करता है	**जायते**	- होता है ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे परीक्षिदुद्धवसंवादे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः-

साधु सूत चिरं जीव चिरमेवं प्रशाधि नः ।
श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥

साधु सूत चिरं जीव चिरं एवं प्रशाधि नः श्रीभागवत माहात्म्यं अपूर्वं त्वत् मुखात् श्रुतम् ॥ १ ॥

सूत साधु	- सूत ! तुम सत्यपुरुष हो,	**त्वत् मुखात्**	- तुम्हारे मुखसे
चिरञ्जीव	- दीर्घायु होओ,	**श्रीभागवत**	- श्रीमद्भागवतका
एवं चिरं	- इसी प्रकार बहुत समय तक	**अपूर्वं माहात्म्यं**	- अपूर्व माहात्म्य
		श्रुतं	- (हमने) सुना ॥ १ ॥
नः प्रशाधि	- हमें समझाते रहो,		

तत्स्वरूपं प्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद ।
तद्वक्तुर्लक्षणं सूत श्रोतुश्चापि वदाधुना ॥ २ ॥

तत् स्वरूपं प्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद तत् वक्तुः लक्षणं सूत श्रोतुः च अपि वद अधुना ॥ २ ॥

सूत अधुना	- सूत जी ! इस समय	**वद**	- बतलाओ,
तत् स्वरूपं	- उस (भागवत) का स्वरूप	**तत् वक्तुः**	- उसके वक्ता
च प्रमाणं	- तथा प्रमाण (विस्तार)	**च श्रोतुः अपि**	- और श्रोताका भी
च श्रवणे विधिं	- एवं सुननेकी विधि	**लक्षणं वद**	- लक्षण बतलाओ ॥२॥

सूत उवाच-

श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भगवतः सदा ।
स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवतस्य अथ श्रीमद्भगवतः सदा स्वरूपं एकं एव अस्ति सच्चिदानन्द लक्षणम् ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवतस्य	- श्रीमद्भागवतका	**सच्चिदानन्दन**	- सच्चिदानन्द
अथ-	- और श्रीमान्	**लक्षणं अस्ति**	- रूप है ॥ ३ ॥
श्रीमद्भगवतः	भगवानका		
स्वरूपं सदा एकं एव	- स्वरूप सदा एक ही		

श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्यप्रकाशकम् ।
समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण आसक्त भक्तानां तत् माधुर्य प्रकाशकं सम उज्जृम्भति यत् वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण आसक्त	- श्रीकृष्णमें आसक्त	**हि यत् वाक्यं**	- क्योंकि जो वाक्य है
भक्तानां	- भक्तोंके लिए	**तत् भागवतं**	- उसे भागवत
तत् माधुर्य	- उन (श्रीकृष्ण) की मधुरताको	**विद्धि**	- समझो ॥ ४ ॥[1]
प्रकाशकं	- प्रकट करने वाला		

ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः ।
मायामर्दनदक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥

ज्ञान-विज्ञान भक्ति अंग चतुष्टय परं वचः माया मर्दन दक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥

---

१. भगवत् प्रीति प्रेरकं वाक्यं भागवतं यह परिभाषा सम्पूर्ण भगवच्चरित एवं भक्ति साहित्यके लिए व्यापक है ।

ज्ञान विज्ञान - ज्ञान, विज्ञान
भक्ति अंग - भक्ति और उसके अंग वैराग्य
चतुष्टय - इन चारोंकी
परं वचः - परायण जो वाणी
माया मर्दन - माया मिटानेमें
दक्षं च - निपुण भी हो
तत् च - उसे भी
भागवतं विद्धि - भागवत समझो ॥५॥

प्रमाणं तस्य को वेद ह्यनन्तस्याक्षरात्मनः ।
ब्रह्मणे हरिणा तद्दिक् चतुःश्लोक्या प्रदर्शित ॥ ६ ॥

प्रमाणं तस्य कः वेद हि अनन्तस्य अक्षर आत्मनः ब्रह्मणे हरिणा तत् दिक् चतुः श्लोक्या प्रदर्शितः ॥ ६ ॥

हि अक्षर-आत्मनः - क्योंकि अविनाशी स्वरूप है
तस्य अनन्तस्य - उस (भागवत) के अनन्त
प्रमाणं कः वेद - प्रमाण (विस्तार) को कौन जान सकता है
हरिणा ब्रह्मणे - श्रीहरिने ब्रह्माको
तत् दिक् - उनके दिग्दर्शन मात्रके लिए
चतुःश्लोक्या - चतुःश्लोकीको
प्रदर्शितः - दिखलाया था ॥ ६ ॥

तदानन्त्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः ।
त एव सन्ति भो विप्रा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७ ॥

तदा अनन्त अवगाहेन स्व ईप्सित वहन क्षमाः त एव सन्ति भो विप्रा ब्रह्म विष्णु शिव आदयः ॥ ७ ॥

भो विप्रा - हे विप्रवरो !
तदा अनन्त - तब से अनन्त
अवगाहेन - डुबकी लगाकर
स्व ईप्सित - अपना अभीष्ट
वहन क्षमाः - प्राप्त कर लेनेमें समर्थ
त एव ब्रह्म - वही ब्रह्मा,
विष्णु शिव - विष्णु, शिव
आदयः सन्ति - आदि हैं ॥ ७ ॥

मितबुद्ध्यादिवृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च ।
परीक्षिच्छुकसंवादो योऽसौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥

मित बुद्धि आदि वृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च परीक्षित शुक संवादः यः असौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥

मित बुद्धि	- सीमित बुद्धि	**यः असौ**	- जो यह
आदि वृत्तीनां	- आदि वृत्तियों वाले	**परीक्षित शुक**	- परीक्षित एवं शुकदेवजीका
मनुष्याणां	- मनुष्योंकी	**संवादः**	- संवाद
हिताय च	- भलाईके लिए ही	**व्यासेन-कीर्तितः**	- व्यासजी द्वारा वर्णित है ॥ ८ ॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः ।
कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः ॥ ९ ॥

ग्रन्थः अष्टादश साहस्रः यः असौ भागवत अभिधः कलिग्राह गृहीतानां स एव परम आश्रयः ॥ ९ ॥

यः असौ	- जो यह	**कलि ग्राह**	- कलियुग रूपी मगरसे
भागवत अभिधः	- भागवत नामक	**गृहीतानां**	- पकड़े गये लोगोंके लिए
अष्टादश	- अठारह	**स एव**	- वही
साहस्रः ग्रन्थः	- सहस्र (श्लोकों) का ग्रन्थ है,	**परम आश्रयः**	- उत्तम शरण है ॥ ९ ॥

श्रोतारोऽथ निरूप्यन्ते श्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः ।
प्रवरा अवराश्चेति श्रोतारो द्विविधा मताः ॥ १० ॥

श्रोतारः अथ निरूप्यन्ते श्रीमत् विष्णु कथा आश्रयाः प्रवरा अवराः च इति श्रोतारः द्विविधा मताः ॥ १० ॥

अथ श्रीमत् - अब श्रीमान्	मताः द्विविधा -मेरे मतसे दो प्रकारके
विष्णु कथा - श्रीहरिकी कथाका	प्रवरा च अवराः-श्रेष्ठ और कनिष्ठ
आश्रयाः श्रोतारः - आश्रय लेने वाले श्रोताओंका	इति श्रोतारः -इस प्रकार श्रोता होते हैं ॥ १० ॥
निरूप्यन्ते - निरूपण (वर्णन) किया जाता है	

प्रवराश्चातको हंसः शुको मीनादयस्तथा ।
अवरा वृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

प्रवराः चातकः हंसः शुकः मीन आदयः तथा अवरा वृक भूरुण्ड वृष उष्ट्र, आद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

प्रवराः - श्रेष्ठ	अवरा वृक - कनिष्ठ भेड़िये,
चातकः हंसः - चातक, हंस	भूरुण्ड - भूरुण्ड
शुकः मीन - शुक, मछली	वृष उष्ट्र आद्याः - बैल, ऊँट आदि
आदयः तथा - आदि हैं; तथा	प्रकीर्तिताः - कहे गये हैं ॥ ११ ॥

अखिलोपेक्षया यस्तु कृष्णशास्त्रश्रुतौ व्रती ।
स चातको यथाम्भोदमुक्ते पाथसि चातकः ॥ १२ ॥

अखिल उपेक्षया यः तु कृष्णशास्त्र श्रुतौ व्रती स चातकः यथा अम्भोद मुक्ते पाथसि चातकः ॥ १२ ॥

यः तु - जो तो	स चातकः - वह चातक है
अखिल उपेक्षया - और सबकी उपेक्षापूर्वक	यथा- - जैसे समुद्रको त्यागकर
कृष्णशास्त्र - श्रीकृष्ण-सम्बन्धी शास्त्रको ही	अम्भोद मुक्ते चातकः पाथसि- चातक मेघ (जल) का
श्रुतौव्रती - सुननेका नियम रखने वाला है	(व्रती है) ॥ १२ ॥

हंसः स्यात् सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात् ।
दुग्धेनैक्यं गतात्तोयाद् यथा हंसोऽमलं पयः ॥ १३ ॥

हंसः स्यात् सारं आदत्ते यः श्रोता विविधात् श्रुतात् दुग्धेन ऐक्यं गतात् तोयात् यथा हंसः अमलं पयः ॥ १३ ॥

यः श्रोता	- जो श्रोता	**यथा हंसः**	- जैसे हंस
विविधात्	- अनेक प्रकारके	**दुग्धेन**	- दूधसे
श्रुतात्	श्रवणमें से	**ऐक्यं-**	- एक हुए जलमेंसे
सारं आदत्ते	- सार ग्रहण कर	**गतात् तोयात्**	
	लेता है	**अमलं पयः**	- निर्मल दूध (ग्रहण कर
हंसः स्यात्	- (वह) हंस है		लेता है) ॥ १३ ॥

शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतॄंश्च हर्षयन् ।
सुपाठितः शुको यद्वच्छिक्षकं पार्श्वगानपि ॥ १४ ॥

शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतॄन् च हर्षयन् सुपाठितः शुकः यद्वत् शिक्षकं पार्श्वगान् अपि ॥ १४ ॥

यद्वत्	- जिस प्रकार	**शुकः**	- शुक (श्रोता)
सुपाठितः शुकः	- अच्छी प्रकार पढ़ाया	**व्यासं च-**	- व्यास तथा (दूसरे)
	हुआ तोता	**श्रोतॄन्**	श्रोताओंको
शिक्षकं	- (अपने) शिक्षक एवं	**हर्षयन्**	- प्रसन्न करता हुआ
पार्श्वगान् अपि	- समीपस्थोंको भी	**सुष्ठु मितं-**	- सुन्दर थोड़ेमें
	(प्रसन्न करता है)	**वक्ति**	(श्रवणका सार) बोलता
			है ॥ १४ ॥

शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन् रसम् ।
श्रोता स्निग्धो भवेन्मीनो मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥

शब्दं न अनिमिषः जातु करोति आस्वादयन् रसं श्रोता स्निग्धः भवेत् मीनः मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥

जातु शब्दं	- कभी कोई शब्द	स्निग्धः श्रोता	- प्रेमपूर्ण श्रोता
न करोति	- नहीं करता,	मीनः भवेत्	- मछली होता (कहलाता) है
अनिमिषः	- निर्निमेष	यथा क्षीरनिधौ	- जैसे क्षीरसागरकी
रसं आस्वादयन्	- रसास्वादन करने वाला	मीनः	- मछलियां होती हैं ॥ १५ ॥

यस्तुदन् रसिकाञ्छ्रोतॄन् विरौत्यज्ञो वृको हि सः ।
वेणुस्वनरसासक्तान् वृकोऽरण्ये मृगान् यथा ॥ १६ ॥

यः तुदन् रसिकान् श्रोतॄन् विरौति अज्ञः वृकः हि सः वेणुस्वन रस आसक्तान् वृकः अरण्ये मृगान् यथा ॥ १६ ॥

यथा अरण्ये	- जैसे वनमें	हि अज्ञः	- क्योंकि अज्ञानी होनेसे
वेणुस्वन	- वंशी ध्वनिके	रसिकान्	- रस लेने वाले
रस आसक्तान्	- रसमें आसक्त	श्रोतॄन् तुदन्	- श्रोताओंके कष्ट देता हुआ
मृगान् वृकः	- हिरणोंको भेड़िया (डरा देता है वैसे)	विरौति	- (बीचमें) चिल्ला उठता है
		सः वृकः	- वह (श्रोता) भेड़िया है ॥ १६ ॥

भूरुण्डः शिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वा न स्वयमाचरेत् ।
यथा हिमवतः शृंगे भूरुण्डाख्यो विहंगमः ॥ १७ ॥

भूरुण्डः शिक्षयेत् अन्यान् श्रुत्वा न स्वयं आचरेत् यथा हिमवतः शृंगे भूरुण्ड आख्यः विहंगमः ॥ १७ ॥

भूरुण्डः - भूरुण्ड (श्रोता)
श्रुत्वा अन्यान् - सुनकर दूसरोंको
शिक्षयेत् - सिखलाता है
स्वयं न- - पर स्वयं आचरण
आचरेत् नहीं करता
यथा हिमवतः - जैसे हिमालयके
शृंगे शिखरोंपर
भूरुण्ड आख्यः - भूरुण्ड नामक१
विहंगमः - पक्षी होता है ॥ १७ ॥

सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः ।
स्वादुद्राक्षां खलिं चापि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥

सर्वं श्रुतं उपादत्ते सार असार अन्धधीः वृषः स्वादु द्राक्षां खलिं च अपि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥

यथा वृषः - जैसे बैल
स्वादु द्राक्षां - स्वादिष्ट दाख (मुनक्का)
च खलिं अपि - तथा खलीमें भी
निर्विशेषं - कोई विशेषता नहीं रखता (ऐसे ही)
सार असार - सारवान तथा सारहीन (के सम्बन्धमें)
अन्धधीः - अन्धी (विवेकहीन) बुद्धि जो
सर्वं श्रुतं - सब श्रवण किये को
उपादत्ते - ग्रहण कर लेता है,
वृषः - वह बैल (श्रोता) है ॥ १८ ॥

स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन् विपरीते रमेत यः ।
यथा निम्बं चरत्युष्ट्रो हित्वाम्रमपि तद्युतम् ॥ १९ ॥

स उष्ट्रः मधुरं मुञ्चन् विपरीते रमेत यः यथा निम्बं चरेत् उष्ट्रः हित्वा आम्रं अपि तत् युतम् ॥ १९ ॥

---

१. उल्लूकी एक विशेष जाति जो सुने शब्द दुहराता है । यह जाति अनेक बार मैदानोंमें भी पायी जाती है ।

यः मधुरं मुञ्चन्	- जो मधुर (अंश) का छोड़कर	**यथा उष्ट्रः**	- जैसे ऊँट
विपरीते	- विपरीत (रौद्र, वीभत्सादि) भावोंमें	**तत् युतं**	- उस (आम्रफल) से युक्त
रमेत	- आनन्द लेता है	**आम्रं अपि**	- आमको भी
स उष्ट्रः	- वह (श्रोता) ऊँट है	**हित्वा निम्बं चरेत्**	- त्यागकर नीम चरता है ॥ १९ ॥

अन्येऽपि बहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः ।
विज्ञेयास्तत्तदाचारैस्तत्तत्प्रकृतिसम्भवैः ॥ २० ॥

अन्ये अपि बहवः भेदा द्वयोः भृंग खर आदयः विज्ञेयाः तत् तत् आचारैः तत् तत् प्रकृति सम्भवैः ॥ २० ॥

द्वयोः	- दोनों (वरिष्ठ-कनिष्ठ श्रोताओं) के	**तत् तत् प्रकृति**	- उन उन के स्वभावसे
अन्ये अपि	- दूसरे भी	**सम्भवौः**	- उत्पन्न होने वाले
भृंग खर- आदयः	- भ्रमर-गर्दभ आदि	**तत् तत् आचारैः**	- उन उन आचरणोंसे
बहवः भेदा	- बहुतसे भेद हैं	**विज्ञेयाः**	- जान लेने योग्य हैं ॥२०॥

यः स्थित्वाभिमुखं प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो हरे-
र्लीलाः श्रोतुमभीप्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः ।

शिष्यो विश्वसितोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचि-
र्नित्यं कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥

यः स्थित्वा अभिमुखं प्रणम्य विधिवत् त्यक्त अन्यवादः हरेः लीलाः श्रोतुं अभीप्सते अति निपुणः नम्रः अथ क्लृप्त अञ्जलिः शिष्यः विश्वसितः अनुचिन्तन परः प्रश्ने अनुरक्तः शुचिः नित्यं कृष्णजन प्रियः निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥

यः अतिनिपुणः - जो बहुत कुशल,
नम्रः - विनीत,
विश्वसितः - विश्वास करने वाला,
अनुचिन्तनपरः - बार बार (श्रवणका) चिन्तन करनेमें लगा
प्रश्ने अनुरक्तः - प्रश्न करनेमें प्रीति रखने वाला
शुचिः नित्यं - पवित्र, सदा
कृष्णजन प्रियः - श्रीकृष्ण भक्तोंका प्रिय,
शिष्यः - (अपना) शिष्य,
हरेः लीलाः - श्रीहरिके चरित
श्रोतुं अभीप्सते - सुननेको उत्कण्ठित
अभिमुखं- स्थित्वा - सम्मुख स्थित होकर
विधिवत् प्रणम्य - विधिपूर्वक प्रणाम कके
त्यक्त अन्यवादः - दूसरी चर्चा छोड़कर
अथक्लृप्त-अञ्जलिः - फिर हाथ जोड़े है,
वक्तृभिः - वक्ताओं द्वारा
वै स श्रोता - निश्चय वह (उत्तम) श्रोता
निगदितः - कहा गया है ॥२१॥

भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः ।
बहुधा बोधनचतुरो वक्ता सम्मानितो मुनिभिः ॥ २२ ॥

भगवत् मतिः अनपेक्षः सुहृदः दीनेषु स अनुकम्पयः बहुधा बोधन चतुरः वक्ता संमानितः मुनिभिः ॥ २२ ॥

यः भगवत्-मतिः - जिसकी (सबमें) भगवतबुद्धि है,
अनपेक्षः - (किसीसे कुछ) नहीं चाहता,
सुहृदः - सबका हितैषी,
दीनेषु - दीनोंपर
स अनुकम्पः यः - कृपा करनेवाला,
बहुधा - अनेक प्रकारसे
बोधन चतुरः - समझानेमें निपुण है,
मुनिभिः-सम्मानितः - मुनियों द्वारा सम्मानित
वक्ता - (वह उत्तम) वक्ता है ॥ २२ ॥

अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने ।
विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात् सुखसन्ततिः ॥ २३ ॥

अथ भारत भू स्थाने श्रीभागवतसेवने विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात् सुख सन्ततिः ॥ २३ ॥

भो विप्रा	- हे विप्रवरो !	**विधिं शृणुत**	- विधि सुनो
अथ भारत	- अब भारतवर्षकी१	**येन सुख**	- जिससे सुख और सन्तान
भूस्थाने	- धरापर	**सन्ततिः**	
श्रीभागवत सेवने	- श्रीमद्भागवतके सेवनकी	**स्यात्**	- होती है ॥ २३ ॥

राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा ।
चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम् ॥ २४ ॥

राजसं सात्त्विकं च अपि तामसं निर्गुणं तथा चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवत सेवनम् ॥ २४ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतका	**तथा निर्गुणं-**	- तथा निर्गुण भी
सेवनं	- सेवन	**अपि**	
राजसं सात्त्विकं	- राजस, सात्विक,	**चतुर्विधं तु**	- चारों प्रकारका ही
च तामसं	- और तामस	**विज्ञेयं**	जानना चाहिए ॥२४॥

सप्ताहं यज्ञवद् यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा ।
सेवितं राजसं तत्तु बहुपूजादिशोभनम् ॥ २५ ॥

सप्ताहं यज्ञवत् यत् तु सश्रमं सत्वरं मुदा सेवितं राजसं तत् तु बहुपूजा आदि शोभनम् ॥ २५ ॥

यत् तु यज्ञवत्	- जो कि यज्ञके समान	**सत्वरं**	- उतावलीके साथ
बहुपूजा आदि	- बहुत पूजा आदिसे	**मुदा सप्ताहं**	- आनन्दपूर्वक सप्ताह क्रमसे
शोभनं	- सुशोभित	**सेवितं तत् तु**	- सेवन है, वह तो
सश्रमं	- परिश्रम तथा आदरपूर्वक	**राजसं**	- राजसिक है ॥ २५ ॥

---

१. वर्तमान समस्त पृथ्वी भारत है, यह पंचम स्कन्धमें सूचित किया गया है ।

मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम् ।
सात्त्विकं यदनायासं समस्तानन्दवर्धनम् ॥ २६ ॥

मासेन ऋतुना वा अपि श्रवणं स्वाद संयुतं सात्त्विकं यत् अनायासं समस्त आनन्द वर्धनम् ॥ २६ ॥

मासेन वा - महीने भरमें अथवा
ऋतुना अपि - एक ऋतु (दो महीने) में भी
स्वाद संयुतं - रसास्वाद लेते हुए
अनायासं - बिना (विशेष) परिश्रमके
समस्त - सबके
आनन्दवर्धनं - आनन्दको बढ़ाने वाला
यत् श्रवणं - जो श्रवण है
सात्त्विकं - वह सात्त्विक है ॥२६॥

तामसं यत्तु वर्षेण सालसं श्रद्धया युतम् ।
विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तं सेवनं तच्च सौख्यदम् ॥ २७ ॥

तामसं यत् तु वर्षेण स आलसं श्रद्धया युतं विस्मृति स्मृति संयुक्तं सेवनं तत् च सौख्यदम् ॥ २७ ॥

यत् वर्षेण - जो वर्षभरमें
स आलसं - आलस्यके साथ
तु श्रद्धया युतं - किन्तु श्रद्धाके साथ
विस्मृति - (कुछ) विस्मरण
स्मृति संयुक्तं - (कुछ) स्मरण सहित
सेवनं तामसं - सेवन तामस है,
तत् च - वह भी
सौख्यदं - सुखदायी होता है
॥ २७ ॥

वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम् ।
सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥ २८ ॥

वर्ष मास दिनानां तु विमुच्य नियम आग्रहं सर्वदा प्रेम भक्त्या एव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥ २८ ॥

वर्ष मास	- वर्ष, महीने,	**सर्वदा**	- सदा
तु दिनानां	- तथा दिनोंके	**प्रेम भक्त्या-**	- प्रेमपूर्वक भक्तिसे ही
नियम आग्रहं	- नियमोंके आग्रहको	**एव**	
विमुच्य	- त्यागकर	**सेवनं निर्गुणं-**	- सेवन निर्गुण माना
		मतं	गया है ॥ २८ ॥

पारीक्षितेऽपि संवादे निर्गुणं तत् प्रकीर्तितम् ।
तत्र सप्तदिनाख्यानं तदायुर्दिनसंख्यया ॥ २९ ॥

पारीक्षिते अपि संवादे निर्गुणं तत् प्रकीर्तितं तत्र सप्तदिन आख्यानं तत् आयुः दिन संख्यया ॥ २९ ॥

पारीक्षिते	- परीक्षितके	**तत्र सप्तदिन**	- उसमें सात दिनका
संवादे अपि	- संवादमें भी	**आख्यानं**	- वर्णन तो
तत् निर्गुणं	- उसे निर्गुण	**तत् आयुः दिन**	- उनकी आयुके दिनोंकी
प्रकीर्तितं	- कहा गया है,	**संख्यया**	- संख्याके कारण है ॥ २९ ॥

अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया ।
यथा कथञ्चित् कर्तव्यं सेवनं भगवच्छ्रुतेः ॥ ३० ॥

अन्यत्र त्रिगुणं च अपि निर्गुणं च यथा इच्छया यथा कथञ्चित् कर्तव्य सेवनं भगवत् श्रुतेः ॥ ३० ॥

अन्यत्र	- और कहीं भी	**यथा कथञ्चित्**	- चाहे जिस प्रकार भी
त्रिगुणं च	- त्रिगुण अथवा	**भगवत् श्रुतेः**	- इस भागवतरूपा श्रुतिका
निर्गुणं च अपि	- निर्गुण रीतिसे भी	**सेवनं कर्तव्यं**	- सेवन करना चाहिए ॥ ३० ॥
यथा इच्छया	- जैसी इच्छा हो		

ये श्रीकृष्णविहारैकभजनास्वादलोलुपाः ।
मुक्तावपि निराकांङ्क्षास्तेषां भागवतं धनम् ॥ ३१ ॥

ये श्रीकृष्ण विहार एक भजन आस्वाद लोलुपाः मुक्ताः अपि निः आकाङ्क्षाः तेषां भागवतं धनम् ॥ ३१ ॥

एक श्रीकृष्ण	- एक मात्र श्रीकृष्णकी	**निः आकाङ्क्षाः**	- निष्काम
विहार भजन	- क्रीड़ा-चिन्तनके	**मुक्ताः अपि**	- मुक्त पुरुष भी हैं
आस्वाद	- स्वाद लेनेके	**तेषां धनं**	- उनकी सम्पत्ति
ये लोलुपाः	- जो लालची	**भागवतं**	- श्रीमद्भागवत है ॥३१॥

येऽपि संसारसन्तापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः ।
तेषां भवौषधं चैतत् कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥

ये अपि संसार संताप निर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः तेषां भव औषधं च एतत् कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥

ये संसार	- जो संसारके	**तेषां भव-**	- उनके लिए संसार-
संताप निर्विण्णा	- संतापसे खिन्न	**औषधं**	रोगकी दवा है,
मोक्षकाङ्क्षिणः-	- मोक्ष चाहने वाले	**प्रयत्नतः**	- (अतः उन्हें) प्रयत्नपूर्वक
अपि	(मुमुक्षु) भी हैं	**सेव्यं**	- (इसका) सेवन करना
कलौ एतत् च	- कलियुगमें यह		चाहिए ॥ ३२ ॥
	(भागवत) तो		

ये चापि विषयारामाः सांसारिकसुखस्पृहाः ।
तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साधुना कलौ ॥ ३३ ॥

ये च अपि विषय आरामाः सांसारिक सुख स्पृहाः तेषां तु कर्म मार्गेण या सिद्धिः स अधुना कलौ ॥ ३३ ॥

ये विषय-	- जो भोगोंमें आनन्द	**तेषां तु**	- उनको तो
आरामाः	मनाने वाले	**कर्म मार्गेण**	- कर्म करनेके मार्गसे
च सांसारिक	- तथा सांसारिक	**या सिद्धिः**	- जो सफलता होती है
सुख स्पृहाः अपि	- सुख चाहने वाले	**स अधुना-**	- वह इस समय
	भी हैं	**कलौ**	कलियुगमें ॥ ३३ ॥

सामर्थ्यधनविज्ञानाभावादत्यन्तदुर्लभा ।
तस्मात्तैरपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ ३४ ॥

सामर्थ्य धन विज्ञान अभावात् अत्यन्त दुर्लभा तस्मात् तैः अपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ ३४ ॥

सामर्थ्य धन	- शक्ति, सम्पत्ति,	**तस्मात् तैः-अपि**	- इसलिए उन लोगोंको भी
विज्ञान अभावात्	- विशेष ज्ञानका अभाव होनेसे	**श्रीमद्भागवती**	- श्रीमद्भागवतकी
अत्यन्त दुर्लभा	- अत्यन्त दुर्लभ है,	**कथा संसेव्या**	- कथाका भली प्रकार सेवन करना चाहिए ॥ ३४ ॥

धनं पुत्रांस्तथा दारान् वाहनादि यशो गृहान् ।
असापत्न्यं च राज्यं च दद्याद् भागवती कथा ॥ ३५ ॥

धनं पुत्रान् तथा दारान् वाहन आदि यशः गृहान् असापत्न्यं च राज्यं च दद्यात् भागवती कथा ॥ ३५ ॥

भागवती कथा	- श्रीमद्भागवतकी कथा	**यशः गृहान्**	- यश, भवन,
धनं पुत्रान्	- धन, पुत्र,	**च असापत्न्यं**	- तथा शत्रुरहित
तथा दारान्	- तथा पत्नियां,	**राज्यं च**	- राज्य भी
वाहन आदि	- वाहन आदि,	**दद्यात्**	- देती है ॥ ३५ ॥

इह लोके वरान् भुक्त्वा भोगान् वै मनसेप्सितान् ।
श्रीभागवतसंगेन यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ३६ ॥

इह लोके वरान् भुक्त्वा भोगान् वै मनसि ईप्सितान् श्रीभागवत संगेन याति अन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ३६ ॥

इह लोके	- इस लोकमें	**वै भुक्त्वा**	- निश्चित भोगकर
मनसि ईप्सितान्	- मनमाने	**अन्ते श्रीहरेः**	- अन्तमें श्रीहरिके
वरान् भोगान्	- श्रेष्ठ भोगोंको	**पदं याति**	- धाम जाता है ॥ ३६ ॥
श्रीभागवत-संगेन	- श्रीमद्भागवतकी आसक्तिसे		

यत्र भागवती वार्ता ये च तच्छ्रवणे रताः ।
तेषां संसेवनं कुर्याद् देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥

यत्र भागवती वार्ता ये च तत् श्रवणे रताः तेषां संसेवनं कुर्यात् देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥

यत्र भागवती-वार्ता	- जहां भागवतकी कथा होती है	**तेषां देहेन च धनेन च**	- उनकी देहसे और धन से भी
च ये तत्	- तथा जो उसको	**संसेवनं कुर्यात्**	- अच्छी सेवा करे
श्रवणे रताः	- श्रवण करनेमें लगे हैं,		॥ ३७ ॥

तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम् ।
श्रीकृष्णव्यतिरिक्तं यत्तत् सर्वं धनसंज्ञितम् ॥ ३८ ॥

तत् अनुग्रहतः अस्य अपि श्रीभागवत सेवनं श्रीकृष्ण व्यतिरिक्तं यत् तत् सर्वं धन संज्ञितम् ॥ ३८ ॥

तत् अनुग्रहतः	- उनके अनुग्रह	**यत् श्रीकृष्ण**	- जो श्रीकृष्णसे
अस्य अपि	- से भी	**व्यतिरिक्तं**	- भिन्न है
श्री भागवत	- श्रीमद्भागवतका	**तत् सर्वं**	- वह सब
सेवनं	- सेवन होता है ।	**धन संज्ञितं**	- धन कहा जाता है ॥ ३८ ॥

कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते ॥ ३९ ॥

कृष्ण अर्थी इति धन अर्थी इति श्रोता द्विधाः मतः यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते ॥ ३९ ॥

कृष्ण अर्थी-	- श्रीकृष्णको चाहने	**यथा वक्ता**	- जैसा वक्ता हो
इति	वाले इस प्रकार	**तथा श्रोता**	- वैसा ही श्रोता हो
धन अर्थी	- तथा धनको चाहने वाले	**तत्र सौख्यं**	- वहां आनन्द
इति द्विधाः	- इस प्रकार दो प्रकारके	**विवर्धते**	- बढ़ता है ॥ ३९ ॥
श्रोता मतः	- श्रोता माने गये हैं,		

उभयोर्वैपरीत्ये तु रसाभासे फलच्युतिः ।
किन्तु कृष्णार्थिनां सिद्धिर्विलम्बेनापि जायते ॥ ४० ॥

उभयोः वैपरीत्ये तु रस आभासे फलच्युतिः किन्तु कृष्ण अर्थिनां सिद्धिः विलम्बेन अपि जायते ॥ ४० ॥

उभयोः	- (श्रोता-वक्ता) दोनोंके	**किन्तु कृष्ण**	- किन्तु श्रीकृष्णको चाहने
वैपरीत्ये तु	- विपरीत होनेपर तो	**अर्थिनां**	वालोंकी
रस आभासे	- रसाभास होनेसे	**सिद्धिः**	- सफलता
फलच्युतिः	- फल नष्ट हो जाता है ।	**विलम्बेन**	- विलम्बसे
		अपि जायते	- भी होती है ॥ ४० ॥

धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसम्पूर्णतावशात् ।
कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः ॥ ४१ ॥

धन अर्थिनः तु संसिद्धिः विधि सम्पूर्णता वशात् कृष्ण अर्थिनः अगुणस्य अपि प्रेम एव विधि उत्तमः ॥ ४१ ॥

धन अर्थिनः	- धन चाहने वालोंकी	**कृष्ण अर्थिनः**	- श्रीकृष्णको चाहने वालों
संसिद्धिः तु	- पूर्ण सफलता तो	**अगुणस्य-**	- और निर्गुण सेवन करने
विधि सम्पूर्णता	- विधिके पूरे पालनके	**अपि**	वालोंकी भी
वशात्	- वशमें है,	**प्रेम एव**	- प्रेम ही
		उत्तमः विधि	- श्रेष्ठ विधि है ॥ ४१ ॥

आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यो हि विधिः स्वयम् ।
स्नातो नित्यक्रियां कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः ॥ ४२ ॥

आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यः हि विधिः स्वयं स्नातः नित्यक्रियां कृत्वा प्राश्य पाद उदकं हरेः ॥ ४२ ॥

हि सकामेन - क्योंकि जो सकाम है (उसे)
आ समाप्ति - समाप्ति तक
स्वयं विधिः - स्वयं विधि (का पालन)
कर्तव्यः - करना चाहिए,
स्नातः - स्नान करके
नित्य क्रियां कृत्वा - नित्यकर्म (सन्ध्यादि) करके
हरेः पाद उदकं -श्रीहरिके चरणामृतसे
प्राश्य - आचमन करके ॥४२॥

पुस्तकं च गुरुं चैव पूजयित्वोपचारतः ।
ब्रूयाद् वा शृणुयाद् वापि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥ ४३ ॥

पुस्तकं च गुरुं च एव पूजयित्वा उपचारतः ब्रूयात् वा शृणुयात् वा अपि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥ ४३ ॥

पुस्तकं च - ग्रन्थकी और
गुरुं च एव - गुरुकी भी
उपचारतः - सामग्रीके द्वारा
पूजयित्वा - पूजा करके
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवतका
मुदा ब्रूयात् वा - आनन्दपूर्वक पाठ करे अथवा
शृणुयात् वा अपि - श्रवण ही करे ॥४३॥

पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनमाचरेत् ।
ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिं क्रोधलोभादिवर्जनम् ॥ ४४ ॥

पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनं आचरेत् ब्रह्मचर्यं अधः सुप्तिं क्रोधलोभ आदि वर्जनम् ॥ ४४ ॥

पयसा वा - दूधका अथवा
हविष्येण - हविष्यान्नका
मौनं भोजनं - मौन होकर भोजन
आचरेत् - करे,
ब्रह्मचर्यं - ब्रह्मचर्य पालन करे,
अधः सुप्तिं - नीचे (भूमिपर) सोये,
क्रोध लोभ - क्रोध, लोभ
आदि वर्जनं - आदिका त्याग करदे
॥ ४४ ॥

कथान्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥

कथा अन्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥

नित्यं कथा-अन्ते - प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर
कीर्तनं - कीर्तन करे,
समाप्तौ - (कथा) समाप्त होनेपर
जागरं चरेत् - (रात्रि) जागरण करे,
ब्राह्मणान् - ब्राह्मणोंको
भोजयित्वा - भोजन कराके
दक्षिणाभिः - दक्षिणाके द्वारा
प्रतोषयेत् - (उन्हें) सन्तुष्ट करे
॥ ४५ ॥

गुरवे वस्त्रभूषादि दत्वा गां च समर्पयेत् ।
एवं कृते विधाने तु लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ४६ ॥

गुरवे वस्त्रभूषा आदि दत्वा गां च समर्पयेत् एवं कृते विधाने तु लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ४६ ॥

गुरवे - गुरुको
वस्त्रभूषा - वस्त्र-आभूषण
आदिदत्वा - आदि देकर
गां च - गाय भी
समर्पयेत् - समर्पित करे
एवं विधाने - इस प्रकारका विधान
कृते तु - करनेपर तो
वाञ्छितं फलं - अभीष्ट फल
लभते - प्राप्त करता है ॥४६॥

दारागारसुतान् राज्यं धनादि च यदीप्सितम् ।
परन्तु शोभते नात्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥ ४७ ॥

दारा आगार सुतान् राज्यं धन आदि च यत् ईप्सितं परन्तु शोभते न अत्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥ ४७ ॥

दारा आगार - स्त्री, भवन,
सुतान् राज्यं - पुत्र, राज्य,
च धन आदि - तथा धन आदि
यत् ईप्सितं - जो अभीष्ट हो (पाता है)
परन्तु अत्र - लेकिन यहां (श्रीमद्भागवत-सेवनमें)
सकामत्वं - सकामपना
शोभते न - शोभा नहीं देता,
विडम्बनं - (यह) विडम्बना ही है ॥ ४७ ॥

कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत् प्रेमानन्दफलप्रदम् ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ४८ ॥

कृष्ण प्राप्तिकरं शश्वत् प्रेम आनन्द फलप्रदं श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ४८ ॥

शश्वत् - सदाके लिए
कृष्ण प्राप्ति-करं - श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला
प्रेम आनन्द फल प्रदं - प्रेम एवं आनन्दरूपी फल देने वाला
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
शास्त्रं कलौ - शास्त्र कलियुगमें
कीरेण भाषितं - शुकदेवजी ने कहा है ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भागवतश्रोतृवक्तृलक्षणश्रवणविधिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्
हरिः ॐ तत्सत्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

[3]

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥ १ ॥

सच्चिदानन्दरूपाय विश्व उत्पत्ति आदि हेतवे तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥ १ ॥

सच्चिदानन्द	- सच्चिदानन्द	**तापत्रय-**	- त्रितापोंके नाशक
रूपाय	- स्वरूप,	**विनाशाय**	
विश्व	- विश्वकी	**श्रीकृष्णाय**	- श्रीकृष्णको
उत्पत्ति	- उत्पत्तिके	**वयं नुमः**	- हम सब नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥
आदि हेतवे	- आदि कारण,		

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

यं प्रव्रजन्तं अन उपेतं अपेत कृत्यं द्वैपायनः विरह कातर आजुहाव पुत्र इति तन्मय तया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिं आनतः अस्मि ॥ २ ॥

अन उपेतं	- यज्ञोपवीत संस्कार हुए बिना	**तन्मय तया**	- (शुकदेवजीके) तन्मय होनेके कारण
अपेत कृत्यं	- दूसरे संस्कारोंका अवसर आये बिना	**तरवः-**	- (उनकी ओरसे) वृक्षोंने
यं प्रव्रजन्तं	- जिनके सन्यास लेकर जाते समय	**अभिनेदुः**	प्रत्युत्तर दिया
		तं सर्वभूत-	- उन सब प्राणियोंके
		हृदयं	हृदयरूप

विरह कातर - वियोग व्याकुल
द्वैपायनः - भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी
पुत्र इति-आजुहाव - 'हे पुत्र ! इस प्रकार पुकारने लगे,
मुनिं आनतः अस्मि - मुनि शुकदेवजीको (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

नैमिषे सूतं आसीनं अभिवाद्य महामतिं कथा अमृत रस आस्वाद कुशलः शौनकः अब्रवीत् ॥ ३ ॥

नैमिषे - नैमिषारण्यमें
महामतिं - परम बुद्धिमान
आसीनं सूतं - बैठे हुए सूतजीको
अभिवाद्य - प्रणाम करके
कथा अमृतरस - कथारूपी अमृतरसके
आस्वाद कुशलः - आस्वादनमें निपुण
शौनकः अब्रवीत् - शौनकजी बोले ॥ ३ ॥

शौनक उवाच-

अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ।
सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ४ ॥

अज्ञान ध्वान्त विध्वंस कोटि सूर्य समप्रभ सूत आख्याहि कथा सारं मम कर्ण रसायनम् ॥ ४ ॥

अज्ञानध्वान्त - अज्ञानान्धकारको
विध्वन्स - नष्ट करनेमें
कोटिसूर्य - करोड़ों सूर्योंके
समप्रभ सूत - समान कान्तिमान सूतजी !
मम कर्ण - मेरे कानोंके लिए
रसायनं - रसायनके समान
कथा सारं - साररूप कथा
आख्याहि - कहिये ॥ ४ ॥

भक्तिज्ञानविरागाप्तो विवेको वर्धते महान् ।
मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ५ ॥

भक्तिज्ञान विराग आप्तः विवेकः वर्धते महान् माया मोह निरासः च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ५ ॥

भक्तिज्ञान	- भक्ति तथा ज्ञान तथा	**वर्धते**	- (जैसे) बढ़ता है
आप्तः विवेकः	- श्रेष्ठ विवेकसे (होने वाला)	**च वैष्णवैः**	- तथा वैष्णव लोग
		माया मोह-	- माया एवं मोह को
महान् विराग	- महान वैराग्य	**निरासः**	- निरस्त (दूर)
		कथं क्रियते	- कैसे करते हैं ॥ ५ ॥

इह घोरे कलौ प्रायो जीवश्चासुरतां गतः ।
क्लेशाक्रान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ६ ॥

इह घोरे कलौ प्रायः जीवः च असुरतां गतः क्लेश आक्रान्तस्य तस्य एव शोधने किं परायणम् ॥ ६ ॥

इह घोरे कलौ	- इस भयानक कलियुगमें	**क्लेश-**	- क्लेशसे उत्पीड़ितोंको
प्रायः जीवः च	- प्रायः जीव तो	**आक्रान्तस्य**	
असुरतां गतः	- असुरभावको प्राप्त होगये हैं	**शोधने**	- शुद्ध करनेके लिए
		किं परायणं	- क्या श्रेष्ठ आश्रय है ॥ ६ ॥
तस्य एव	- उन्हीं		

श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ।
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ७ ॥

श्रेयसां यत् भवेत् श्रेयः पावनानां च पावनं कृष्ण प्राप्तिकरं शश्वत् साधनं तत् वद अधुना ॥ ७ ॥

श्रेयसां	- कल्याण करनेवालोंमें भी	**शश्वत्-**	- शाश्वत श्रीकृष्णकी
यत् श्रेयः	- जो (श्रेष्ठ) कल्याणकारी,	**कृष्ण प्राप्ति**	प्राप्ति
पावनानां च	- पवित्र करने वालोंमें भी	**करं भवेत् तत्**	- कराने वाला हो वह
पावनं	- परम पावन	**साधनं-**	- साधन इस समय
		अधुना वद	बतलाइये ॥ ७ ॥

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ८ ॥

चिन्तामणिः लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्ग सम्पदं प्रयच्छति गुरुः प्रीतः वैकुण्ठं योगि दुर्लभम् ॥ ८ ॥

चिन्तामणिः	- चिन्तामणि	**प्रीतः गुरुः**	- प्रसन्न होकर गुरु
लोक सुखं	- लौकिक सुख और	**योगि दुर्लभम्-**	योगियोंको भी
सुरद्रुः	- कल्पवृक्ष		कठिनाईसे मिलने वाला
स्वर्ग सम्पदं	- स्वर्गीय सम्पत्ति	**वैकुण्ठं-**	- वैकुण्ठ दे देता
	(दे सकता है, किन्तु)	**प्रयच्छति**	है ॥ ८ ॥

सूत उवाच-

प्रीतिः शौनक चित्ते ते ह्यतो वच्मि विचार्य च ।
सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥ ९ ॥

प्रीतिः शौनक चित्ते ते हि अतः वच्मि विचार्य च सर्व सिद्धान्त निष्पन्नं संसारभय नाशनम् ॥ ९ ॥

शौनक	- शौनक जी !	**सर्व सिद्धान्त**	- सब सिद्धान्तोंसे
हि ते वित्ते-	- क्योंकि तुम्हारे	**निष्पन्नं**	- सिद्ध हुए
प्रीतिः	चित्तमें प्रेम है,	**संसार भय**	- संसारके भयके
अतः विचार्य च	- अतः विचार करके ही	**नाशनं वच्मि**	- नाशक (साधन) को
			कहता हूँ ॥ ९ ॥

भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ।
तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ १० ॥

भक्ति ओघ वर्धनं यत् च कृष्ण संतोष हेतुकं तत् अहं ते अभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ १० ॥

यत् भक्ति ओघ	- जो भक्ति-प्रवाहको	**तत् ते अहं**	- वह तुमसे मैं
वर्धनं च	- बढ़ाने वाला तथा	**अभिधास्यामि**	- वर्णन करूँगा
कृष्ण सन्तोष	- श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करनेका	**सावधान**	- सावधान होकर सुनो
		तया शृणु	॥ १० ॥
हेतुकं	- कारण है,		

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ११ ॥

काल व्याल मुख ग्रास त्रास निर्णाश हेतवे श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ११ ॥

काल व्याल	- कालरूपी सर्पके	**श्रीमद्भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
मुख ग्रास त्रास	- मुखमें जानेके भयको	**शास्त्रं कलौ**	- शास्त्र कलियुगमें
निर्णाश हेतवे	- नष्ट करनेके लिए	**कीरेण भाषितं**	- शुकदेवजीने कहा है ॥ ११ ॥

एतस्मादपरं किञ्चिन्मनःशुद्धयै न विद्यते ।
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२ ॥

एतस्मात् अपरं किञ्चित् मनः शुद्धयै न विद्यते जन्म अन्तरे भवेत् पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२ ॥

मनः शुद्धयै	- मनकी शुद्धिके लिए	**जन्म अन्तरे**	- जन्मान्तरका
एतस्मात् अपरं	- इससे श्रेष्ठ दूसरा	**पुण्यं भवेत्**	- पुण्योदय होता है
किञ्चित्	- कुछ भी (साधन)	**तदा भागवतं**	- तब भागवत
न विद्यते	- नहीं है	**लभेत्**	- प्राप्त होता है ॥१२॥

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ।
सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥ १३ ॥

परीक्षिते कथा वक्तुं सभायां संस्थिते शुके सुधा कुम्भं गृहीत्वा एव देवाः तत्र समागमन् ॥ १३ ॥

परीक्षिते - परीक्षितके लिए
कथा वक्तुं - कथा कहनेके लिए
सभायां शुके - (ऋषियोंकी) सभामें शुकदेवजीके
संस्थिते - ठीक बैठ जानेपर
सुधा कुम्भं - अमृतघट
गृहीत्वा एव - लेकर ही
तत्र देवाः - वहां देवता
सम आगमन् - समीप आये ॥ १३ ॥

शुकं नत्वावदन् सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ।
कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १४ ॥

शुकं नत्वा वदन् सर्वे स्वकार्य कुशलाः सुराः कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वा एव सुधां इमाम् ॥ १४ ॥

स्वकार्य - अपना काम बनानेमें
कुशलाः सर्वे - निपुण सब
सुराः शुकं- - देवता शुकदेवजीको
नत्वा नमस्कार करके
वदन् - बोले
इमां सुधां - इस अमृतको
गृहीत्वा एव - लेकर ही
कथा सुधां - कथारूपी अमृत
प्रयच्छस्व - (हमें) दीजिए ॥ १४ ॥

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ।
प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १५ ॥

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयतां प्रपास्यामः वयं सर्वे श्रीमद्भागवत अमृतम् ॥ १५ ॥

एवं विनिमये- - इस प्रकार विनिमय
जाते (अदला बदली)
होजानेपर
राज्ञा सुधा - राजा अमृत
प्रपीयतां - छककर पीलें
वयं सर्वे - और हम सब
श्रीमद् भागवत - श्रीमद्भागवतरूपी
अमृतं प्रपास्यामः - अमृत पीयेंगे ॥१५॥

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ॥ १६ ॥

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिः महान् ब्रह्मरातः विचार्य एवं तदा देवान् जहास ह ॥ १६ ॥

लोके क्व सुधा - संसारमें कहां
अमृत और
क्व कथा - कहाँ (भागवत) कथा,
क्व काचः - कहां तो कांच तथा
क्व महान्-मणिः - कहाँ महामणि,
ब्रह्मरातः - शुकदेवजीने
एवं विचार्य - इस प्रकार सोचकर
तदा ह देवान् - उस समय निश्चित
ही देवताओंकी
जहास - हंसी उड़ा दी ॥१६॥

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥ १७ ॥

अभक्तान् तान् च विज्ञाय न ददौ स कथा अमृतं श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणां अपि दुर्लभा ॥ १७ ॥

च तान् - तथा उनको
अभक्तान् - भक्तिहीन
विज्ञाय स - जानकर उन्होंने
कथा अमृतं - कथारूपी अमृत
न ददौ - नहीं दिया
श्रीमद्भागवती - श्रीमद्भागवतकी
वार्ता सुराणां-अपि - कथा देवताओंको भी
दुर्लभा - दुर्लभ है ॥ १७ ॥

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः ।
सत्यलोके तुलां बद्ध्वातोलयत्साधनान्यजः ॥ १८ ॥

राज्ञः मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाता अपि विस्मितः सत्य लोके तुलां बद्ध्वा तोलयत् साधनानि अजः ॥ १८ ॥

तथा राज्ञः मोक्षं	- उस प्रकार राजाकी मुक्ति	**अजः सत्यलोके**	- उन अजन्माने ब्रह्मलोकमें
वीक्ष्य धाता-अपि	- देखकर ब्रह्माजी भी	**तुलां बद्ध्वा**	- तराजू बाँधकर
पुरा विस्मितः	- पहिले चकित होगये,	**साधनानि**	- सब साधनोंको
		तोलयत्	- तौला ॥ १८ ॥

लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ।
तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १९ ॥

लघूनि अन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १९ ॥

इदं महत्-गौरवेण	- इस (भागवत) के महान गौरव (भार) के सामने	**तदा सर्वे**	- उस समय सब
		ऋषिगणाः	- ऋषि लोग
		परमं विस्मयं	- अत्यन्त आश्चर्यसे चकित
अन्यानि	- दूसरे (साधन)	**ययुः**	होगये ॥ १९ ॥
लघूनि-न जातानि	- छोटे (हल्के) पड़ गये,		

मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम् ॥ २० ॥

मेनिरे भगवत् रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ पठनात् श्रवणात् सद्यः वैकुण्ठ फल दायकम् ॥ २० ॥

कलौ	- कलियुगमें	**फलदायकं**	- रूप फल देने वाले
पठनात्	- पाठ करने या	**भागवतं शास्त्रं**	- भागवत शास्त्रको
श्रवणात्	- सुननेसे	**भगवत् रूपं**	- भगवानका स्वरूप
सद्यः वैकुण्ठ	- तत्काल वैकुण्ठ	**मेनिरे**	- मान लिया ॥ २० ॥

सप्ताहेन श्रुतं चैतत्सर्वथा मुक्तिदायकम् ।
सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २१ ॥

सप्ताहेन श्रुतं च एतत् सर्वथा मुक्तिदायकं सनक आद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २१ ॥

च एतत्	- यदि इस (भागवत) को	**दया परैः**	- दया परायण
सप्ताहेन श्रुतं	- सप्ताहक्रमसे सुना जायतो	**सनक आद्यैः**	- सनकादिने
		पुरा नारदाय	- पहिले नारदजीको
सर्वथा-	- निश्चित ही मुक्ति	**प्रोक्तं**	- सुनाया था ॥ २१ ॥
मुक्तिदायकं	देनेवाला होता है,		

यद्यपि ब्रह्मसम्बन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ।
सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २२ ॥

यद्यपि ब्रह्म सम्बन्धात् श्रुतं एतत् सुरर्षिणा सप्ताह श्रवण विधिः कुमारैः तस्य भाषितः ॥ २२ ॥

यद्यपि सुरर्षिणा	- यद्यपि देवर्षिने	**सप्ताह श्रवण**	- सप्ताह रूपसे श्रवणकी
ब्रह्म सम्बन्धात्	- ब्रह्माजीके द्वारा	**विधिः तस्य**	- विधि उनको
एतत् श्रुतं	- इस (भागवत) को सुना था किन्तु	**कुमारैः-**	- (सनकादि) कुमारोंने
		भाषितः	बतलायी ॥ २२ ॥

शौनक उवाच-

लोकविग्रहमुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ।
विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २३ ॥

लोक विग्रह मुक्तस्य नारदस्य अस्थिरस्य च विधि श्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २३ ॥

लोक विग्रह - सांसारिक प्रपञ्चसे
मुक्तस्य च - मुक्त तथा
अस्थिरस्य - स्थिर न रहने वाले
नारदस्य - नारदजी की
विधि श्रवे - विधि सुननेमें
प्रीतिः कुतः - प्रीति कैसे होगयी ?
तैः सह - उन (कुमारों) के साथ
संयोगः कुत्र - मिलना कहां हुआ ?
॥ २३ ॥

सूत उवाच-

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम् ।
शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २४ ॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्ति युक्तं कथानकं शुकेन मम यत् प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २४ ॥

शुकेन मम - शुकदेवजीने मुझे
शिष्यं विचार्य च - शिष्य समझकर ही
रहः यत्-भक्तियुक्तं - एकान्तमें जो भक्तियुक्त
कथानकं - कथा
अत्र प्रोक्तं - इस सम्बन्धमें कही
ते- - (वह) तुमको सुनाऊँगा
कीर्तयिष्यामि ॥ २४ ॥

एकदा हि विशालायां चत्वारः ऋषयोऽमलाः ।
सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २५ ॥

एकदा हि विशालायां चत्वारः ऋषयः अमलाः सत्संग अर्थं सम आयाता ददृशुः तत्र नारदम् ॥ २५ ॥

चत्वारः अमलाः - चारों निर्मल
ऋषयः हि - ऋषि क्योंकि
एकदा-विशालायां - एक बार बदरीनाथमें
सत्संग अर्थं - सत्संगके लिए
सम आयाता - एक साथ आये तो
तत्र नारदं - (उन्होंने) वहां नारदजीको
ददृशुः - देखा ॥ २५ ॥

कुमारा ऊचुः-

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान् ।
त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २६ ॥

कथं ब्रह्मन् दीनमुखः कुतः चिन्ता आतुरः भवान् त्वरितं गम्यते कुत्र कुतः च आगमनं तव ॥ २६ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
दीनमुखः कथं - (आपका) मुख उदास कैसे है ?
भवान् कुतः - आप क्यों
चिन्ता आतुरः - चिन्ता-व्याकुल हैं ?
त्वरितं कुत्र - शीघ्रतासे कहां
गम्यते च - जा रहे हैं ? तथा
तव आगमनं - तुम्हारा आगमन
कुतः कहांसे हो रहा है ? ॥ २६ ॥

इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ।
तवेदं मुक्तसंगस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २७ ॥

इदानीं शून्य चित्तः असि गत वित्तः यथा जनः तव इदं मुक्त संगस्य न उचितं वद कारणम् ॥ २७ ॥

गत वित्तः जनः - धन चले गये मनुष्यके
यथा इदानीं - समान इस समय
शून्य चित्तः असि - शून्य (स्तब्ध) चित्त होरहे हो,
तव मुक्तसंगस्य - तुम आसक्ति मुक्तके लिए
इदं उचितं न - यह उचित नहीं है,
कारणं वद - (अतः इसका) कारण बतलाओ ॥ २७ ॥

नारद उवाच-

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ।
पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २८ ॥

अहं तु पृथिवीं यातः ज्ञात्वा सर्व उत्तमां इति पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २८ ॥

सर्व उत्तमाम्	- सब (लोकों) में उत्तम है	**पुष्करं च**	- पुष्कर क्षेत्र तथा
इति ज्ञात्वा	- ऐसा जानकर	**प्रयागं च**	- प्रयाग और
अहं तु	- मैं तो	**काशीं तथा**	- काशी तथा
पृथिवीं यातः	- पृथ्वीपर आया,	**गोदावरीं**	- गोदावरी (नासिक)
			॥ २८ ॥

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबन्धनम् ।
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २९ ॥

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबन्धनं एवं आदिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतः ततः ॥ २९ ॥

हरिक्षेत्रं	- हरिद्वार् (या हरिहर क्षेत्र)	**आदिषु तीर्थेषु**	- आदि तीर्थोंमें
कुरुक्षेत्रं	- कुरुक्षेत्र,	**एवं इतः ततः**	- इसी प्रकार इधर से उधर
श्रीरंगं	- श्रीरंग,	**भ्रममाण**	- भटकते हुए ॥ २९ ॥
सेतुबन्धनं	- सेतुबन्ध (धनुष्कोटि)		

नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम् ।
कलिनाधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना ॥ ३० ॥

न अपश्यं कुत्रचित् शर्म मनः संतोष कारकं कलिना अधर्म मित्रेण धरा इयं बाधिता अधुना ॥ ३० ॥

मनः-	- मनको सन्तुष्ट	**इयं धरा**	- यह पृथ्वी
संतोषकारकं	करनेवाली	**अधुना**	- इस समय
शर्म कुत्रचित्	- शान्ति कहीं भी	**अधर्म मित्रेण**	- अधर्मके मित्र
न अपश्यं	- नहीं देख सका,	**कलिना बाधिता**	- कलियुग द्वारा पीड़ित है ॥ ३० ॥

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥ ३१ ॥

सत्यं न अस्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते उदरम्भरिणः जीवा वराकाः कूट भाषिणः ॥ ३१ ॥

सत्यं न अस्ति	- (कहीं) सत्य नहीं है,	**वराकाः जीवा**	- बेचारे जीव
तपः शौचं	- तपस्या, पवित्रता,	**उदरम्भरिणः**	- पेट भरनेमें लगे
दया दानं	- दया और दान	**कूट भाषिणः**	- झूठ बोलने वाले हैं ॥ ३१ ॥
न विद्यते	- भी नहीं हैं,		

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।
पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३२ ॥

मन्दाः सुमन्दमतयः मन्दभाग्या हि उपद्रुताः पाखण्डनिरताः सन्तः विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३२ ॥

मन्दाः	- आलसी,	**सन्तः पाखण्ड**	- संत (कहे जाने वाले) पाखण्डमें
सुमन्द मतयः	- अत्यन्त अल्पबुद्धि,	**निरताः**	- लगे हैं,
मन्दभाग्या	- भाग्यहीन,	**विरक्ताः**	- विरक्त (कहलाने वाले)
उपद्रुताः हि	- उपद्रवग्रस्त हैं; क्योंकि	**सपरिग्रहाः**	- स्त्री (धनादि) युक्त हैं ॥ ३२ ॥

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ।
कन्याविक्रयिणो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ३३ ॥

तरुणी प्रभुता गेहे श्यालकः बुद्धिदायकः कन्या विक्रयिणः लोभात् दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ३३ ॥

गेहे तरुणी- - घरोंमें युवा स्त्रियोंका
प्रभुता प्रभुत्व है,
बुद्धिदायकः - सलाह देने वाले
श्यालकः - साले हैं,
लोभात् - (लोग) लोभवश
कन्या विक्रयिणः - कन्या बेचते हैं,
च दम्पतीनां - तथा पति-पत्नीमें
कल्कनं - झगड़ा होता रहता है
॥ ३३ ॥

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ।
देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३४ ॥

आश्रमा यवनै रुद्धाः तीर्थानि सरितः तथा देवता आयतनानि अन्यत्र दुष्टैः नष्टानि भूरिशः ॥ ३४ ॥

आश्रमा तीर्थानि - आश्रमों, तीर्थों
तथा सरितः - तथा (पवित्र) सरिताओंपर
यवनै रुद्धाः - यवनोंने रोक लगा दी है,
अन्यत्र भूरिशः - दूसरे स्थानोंके बहुतसे
देवता आयतनानि - देवमन्दिरोंको
दुष्टैः नष्टानि - दुष्टोंने नष्ट कर दिया है ॥ ३४ ॥

न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ।
कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३५ ॥

न योगी न एव सिद्धः वा न ज्ञानी सत् क्रियः नरः कलि दावानलेन अद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३५ ॥

न योगी - न योगी हैं,
सिद्धः न- - सिद्ध नहीं ही हैं,
एव वा अथवा
ज्ञानी सत्- - ज्ञानी या सत् कर्म
क्रियः करने वाला
नरः न - मनुष्य नहीं है,
अद्यकलि - इस समय कलियुग रूपी
दावानलेन - दावाग्निसे
साधनं - सब साधन
भस्मतां गतं - भस्म होगये हैं
॥ ३५ ॥

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ।
कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाविह ॥ ३६ ॥

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाः इह ॥ ३६ ॥[1]

जनपदाः	- ग्रामीण लोग	**कामिन्यः**	- स्त्रियां
अट्टशूला	- अन्न बेचने वाले,	**केश शूलिन्यः**	- योनि-विक्रयिणी (वेश्यायें)
द्विजातयः	- ब्राह्मण	**इह कलाः**	- इस कलियुगमें
शिवशूला	- वेद-विक्रय करने वाले,	**सम्भवन्ति**	- उत्पन्न होती हैं ॥३६॥

एवं पश्यन् कलेर्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम् ।
यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३७ ॥

एवं पश्यन् कलेः दोषान् पर्यटन् अवनीं अहं यामुनं तटं आपन्नः यत्र लीला हरेः अभूत् ॥ ३७ ॥

एवं कलेः-दोषान्	- इस प्रकार कलियुगके दोषोंको	**यत्र हरेः-लीला**	- जहां श्रीहरिकी लीला
पश्यन् अवनीं	- देखते हुए पृथ्वीपर	**अभूत्**	- हुई थी (उस)
पर्यटन् अहं	- घूमते हुए मैं	**यामुनं तटं**	- यमुना किनारे
		आपन्नः	- पहुँच गया ॥ ३७ ॥

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ।
एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३८ ॥

विशेष - यह सीधा अर्थ बिना विशेष परिभाषाके भी सम्भव है कि जनपदोंकी सामान्य जनता अट्ट-बड़ी इमारतोंकी विरोधी, ब्राह्मण मूल्य तै करके शास्त्रीय कर्म करने वाले तथा स्त्रियां केश कटवाने वाली कलियुगमें हो जायंगी ।

१. अट्टं अन्नं शिवो वेदः शूलो विक्रय उच्यते ।
केशो ..... तत्त्वदर्शिभिः

तत्र आश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तत् मुनीश्वराः एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्न मानसा ॥ ३८ ॥

मुनीश्वराः - मुनीश्वरो !	**तत्र तु एका** - वहां तो एक
तत्र मया - वहां मैंने	**खिन्न मानसा** - खिन्न चित्ता
आश्चर्यं दृष्टं - (एक) आश्चर्य देखा	**तरुणी निषण्णा** - तरुणी बैठी थी
तत् श्रूयतां - उसे सुनिये,	॥ ३८ ॥

वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ ।
शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ॥ ३९ ॥

वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्ताः अचेतनौ शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ॥ ३९ ॥

पार्श्वे द्वौ वृद्धौ - (उसके) बगलमें दो वृद्ध पुरुष	**पतितौ** - पड़े थे
निःश्वसन्ताः - दीर्घश्वांस लेते	**तयोः शुश्रूषन्ती**- उनकी सेवा करती,
अचेतनौ - मूर्छित	**प्रबोधन्ती** - जगाती
	च पुरः रुदती - तथा (वह उनके) सामने रोती थी ॥ ३९ ॥

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः ।
वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः वीज्यमाना शतस्त्रीभिः बोध्यमाना मुहुः मुहुः ॥ ४० ॥

शतस्त्रीभिः - सैकड़ों स्त्रियों द्वारा	**निजं वपुः-** - अपने शरीरके रक्षकको
वीज्यमाना - पंखा झली जाती,	**रक्षितारं**
मुहुः मुहुः - बार बार	**दश दिक्षु** - दसों दिशाओंमें
बोध्यमाना - समझायी जाती (वह)	**निरीक्षन्ती** - देख रही थी ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ।
मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा दूरात् गतः सः अहं कौतुकेन तत् अन्तिकं मां दृष्ट्वा उत्थिता बाला विह्वला च अब्रवीत् वचः ॥ ४१ ॥

सः अहं	- वह मैं	**बाला उत्थिता**	- वह स्त्री खड़ी होगयी
दूरात् दृष्ट्वा	- दूरसे देखकर	**च विह्वला**	- तथा व्याकुल होकर
तत् अन्तिकं	- उसके समीप	**वचः अब्रवीत्**	- यह बात बोली
गतः मां दृष्ट्वा	- गया, मुझे देखकर		॥ ४१ ॥

बालोवाच-

भोः भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ॥ ४२ ॥

भोः भोः साधो क्षणं तिष्ठ मत् चिन्तां अपि नाशय दर्शनं तव लोकस्य सर्वथा अघं हरं परम् ॥ ४२ ॥

भोः भोः साधो	- हे हे महात्माजी !	**तव दर्शनं**	- आपका दर्शन
क्षणं तिष्ठ	- एक क्षण ठहरिये,	**लोकस्य**	- लोगोंके
मत् चिन्तां अपि	- मेरी चिन्ता भी	**परं अघ**	- महापापोंको
नाशय	- नष्ट कीजिए !	**सर्वथा हरं**	- सर्वथा नष्ट करने वाला है ॥ ४२ ॥

बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति ।
यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४३ ॥

बहुधा तव वाक्येन दुःख शान्तिः भविष्यति यदा भाग्यं भवेत् भूरि भवतः दर्शनं तदा ॥ ४३ ॥

तव वाक्येन	- आपके वचनोंसे	**यदा भूरि भाग्यं**	-जब बहुत सौभाग्य
दुःख शान्तिः	- (मेरे) दुःखकी शान्ति	**भवेत् तदा**	- होता है तब
बहुधा भविष्यति	- बहुत कुछ होजायगी,	**भवतः दर्शनं**	- आपका दर्शन होता है ॥ ४३ ॥

नारद उवाच-

कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ।
वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४४ ॥

का असि त्वं काः इमौ च इमा नार्यः काः पद्मलोचनाः वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४४ ॥

देवि त्वं-काअसि	- देवि! तुम कौन हो ?	**नार्यः काः**	- स्त्रियां कौन हैं ?
		स्वस्य दुःखस्य	- अपने दुःखका
काः इमौ	- ये दोनों कौन हैं ?	**कारणं**	- कारण
च इमा	- तथा ये	**सविस्तारं वद**	- विस्तारके साथ बतलाओ ॥ ४४ ॥
पद्मलोचनाः	- कमलनयनी		

बालोवाच-

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४५ ॥

अहं भक्तिः इति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ज्ञान वैराग्य नामानौ काल योगेन जर्जरौ ॥ ४५ ॥

अहं भक्तिः	- मैं भक्ति	**नामानौ**	- नाम वाले
इति ख्याता	- इस नामसे प्रसिद्ध हूँ,	**मे मतौ तनयौ**	- मेरे प्रिय पुत्र
इमौ ज्ञान-वैराग्य	- ये ज्ञान-वैराग्य	**काल योगेन**	- समयके संयोगसे
		जर्जरौ	- जर्जर होगये हैं ॥४५॥

गंगाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ।
तथापि न च मे श्रेयः सेविताया: सुरैरपि ॥ ४६ ॥

गंगा आद्याःसरितः च इमा मत् सेवा अर्थं सम आगताः तथा अपि न च मे श्रेयः सेविताया: सुरैः अपि ॥ ४६ ॥

इमा गंगा-आद्याः - ये गंगा आदि
सरितः च - नदियां भी
मत् सेवा अर्थं - मेरी सेवाके लिए
सम आगताः - एक साथ आयी हैं
तथा अपि - ऐसा होनेपर भी
सुरैः सेविताया - देवताओं द्वारा सेविता
अपि मे श्रेयः - होनेपर भी मेरा कल्याण
न च - नहीं ही है ॥ ४६ ॥

इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन ।
वार्ता मे विततापास्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४७ ॥

इदानीं शृणु मत् वार्तां सचित्तः त्वं तपोधन वार्ता मे विततां अपि अस्ति तां श्रुत्वा सुखं आवह ॥ ४७ ॥

तपोधन - तपोधन !
त्वं सचित्तः - तुम शुद्ध (एकाग्र) चित्तसे
इदानीं मत्-वार्तां - इस समय मेरी कथा
शृणु - सुनो,
मे वार्ता - मेरी कथा
विततां-अपि अस्ति - फैली हुई भी (प्रसिद्ध) है,
तां श्रुत्वा - उसे सुनकर
सुखं आवह - (मुझे) सुख प्रदान करें ॥ ४७ ॥

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४८ ॥

उत्पन्ना द्रविडे स अहं वृद्धिं कर्णाटके गता क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४८ ॥

स अहं - वह मैं
द्रविडे उत्पन्ना - द्रविड़में उत्पन्न हुई,
कर्णाटके - कर्णाटकमें
वृद्धिं गता - बढ़ी,
क्वचित् क्वचित् - कहीं कहीं
महाराष्ट्रे - महाराष्ट्रमें रही,
गुर्जरे जीर्णतां गता - गुजरातमें वृद्धा होगयी ॥ ४८ ॥

तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डितांगका ।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥ ४९ ॥

तत्र घोर कलेः योगात् पाखण्डैः खण्डित अंगका दुर्बला अहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥ ४९ ॥

तत्र घोर कलेः	- वहां घोर कलियुगके	**अहं चिरं**	- मैं बहुत दिनोंमें
योगात् पाखण्डैः	- प्रभावसे पाखण्डियों द्वारा	**दुर्बला पुत्राभ्यां**	- दुर्बल तथा पुत्रोंके
		सह मन्दतां-	- साथ निस्तेज होगयी
खण्डित अंगका	- अंग-भंगकी गयी	**याता**	॥ ४९ ॥

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥ ५० ॥

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीना एव सुरूपिणी जाता अहं युवती सम्यक् प्रेष्ठ रूपा तु साम्प्रतम् ॥ ५० ॥

पुनः वृन्दावनं-प्राप्य	- फिर वृन्दावन आकर	**प्रेष्ठ रूपा**	- प्रेम करने योग्य रूपवाली
साम्प्रतं	- इस समय	**सम्यक्-युवती तु**	- पूर्ण युवती भी
नवीना एव	- नयी की भांति	**अहं जाता**	- मैं होगयी हूँ ॥ ५० ॥
सुरूपिणी	- सुन्दर रूपवाली		

इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ।
इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५१ ॥

इमौ तु शयिताः अत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५१ ॥

इमौ अत्र तु	- ये यहां तो	**इदं स्थानं**	- इस स्थानको
शयिताः मे सुतौ	- पड़े हुए मेरे दोनों पुत्र	**परित्यज्य**	- त्यागकर
श्रमात्-	- थके होनेसे कष्ट	**मया विदेशं-**	- मैं विदेश जाना चाहती हूँ
क्लिश्यतः	पारहे हैं (अतः)	**गम्यते**	॥ ५१ ॥

जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ।
साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५२ ॥

जरठत्वं सम आयातौ तेन दुःखेन दुःखिता स अहं तु तरुणी कस्मात् सुतौ वृद्धाः इमौ कुतः ॥ ५२ ॥

जरठत्वं	- (इनको) बुढ़ापा	**स अहं तु**	- वह मैं तो
सम आयातौ	- एक साथ आगया	**कस्मात् तरुणी**	- किस कारण तरुणी हूँ और
तेन दुःखेन	- इस दुःखसे	**इमौ सुतौ**	- ये दोनों (मेरे) पुत्र
दुःखिता	- दुःखी हूँ	**कुतः वृद्धाः**	- कैसे बूढ़े होगये ॥५२॥

त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ।
घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५३ ॥

त्रयाणां सह चारित्वात् वैपरीत्यं कुतः स्थितं घटते जरठा माता तरुणौ तनयाः इति ॥ ५३ ॥

त्रयाणां	- तीनोंके	**जरठा माता**	- वृद्धा माता और
सह चारित्वात्	- एक साथ रहनेपर भी	**तरुणौ तनयाः**	- तरुण पुत्र
वैपरीत्यं	- यह विपरीतता	**इति घटते**	- ऐसा तो होता है ॥ ५३ ॥
कुतः स्थितं	- कहांसे आगयी ?		

अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ।
वद योगनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५४ ॥

अतः शोचामि च आत्मानं विस्मय आविष्ट मानसा वद योगनिधे धीमन् कारणं च अत्र किं भवेत् ॥ ५४ ॥

धीमन्	- धीमन् (बुद्धिमान)	**मानसा शोचामि**	- चित्तसे चिन्ता करती हूँ
योगनिधे	- योगनिधे !	**अत्र किं कारणं**	- इसमें क्या कारण
अतः आत्मानं च	- अतः अपने लिए भी	**भवेत् वद**	- होगा, बतलाइये
विस्मय आविष्ट	- विस्मय भरे		॥ ५४ ॥

नारद उवाच-

ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ।
न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५५ ॥

ज्ञानेन आत्मनि पश्यामि सर्वं एतत् तव अनघे न विषादः त्वया कार्यः हरिः ते शं करिष्यति ॥ ५५ ॥

अनघे	- निष्पापे !	**त्वया विषादः**	- तुमको खेद
तव एतत् सर्वं	- तुम्हारा यह सब (दुःखका कारण)	**न कार्यः**	- नहीं करना चाहिए
		हरिः ते शं	- श्रीहरि तुम्हारा कल्याण
आत्मनि ज्ञानेन	- चित्तमें ज्ञानके द्वारा	**करिष्यति**	- करेंगे ॥ ५५ ॥
पश्यामि	- देखता हूँ		

सूत उवाच-

क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ ५६ ॥

क्षण मात्रेण तत् ज्ञात्वा वाक्यं ऊचे मुनीश्वरः ॥ ५६ ॥

तत् क्षण मात्रेण	- उसे एक क्षणमें ही	**मुनीश्वरः**	- मुनीश्वरने
ज्ञात्वा	- जानकर	**वाक्यं ऊचे**	- यह बात कहा ॥५६॥

नारद उवाच-

शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ।
तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ ५७ ॥

शृणुष्व अवहिता बाले युगः अयं दारुणः कलिः तेन लुप्तः सदाचारः योगमार्गः तपांसि च ॥ ५७ ॥

बाले	- बाले !	**कलिः युगः**	- कलियुग है,
अवहिता	- ध्यान देकर	**तेन सदाचारः**	- उसने सदाचार,
शृणुष्व	- सुनो,	**योगमार्गः**	- योगके साधन
अयं दारुणः	- यह भयानक	**च तपांसि-लुप्तः**	- तथा तपस्या का लोप कर दिया है ॥ ५७ ॥

जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ।
इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ।
धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ॥ ५८ ॥

जना अघासुरायन्ते शाठ्य दुष्कर्मकारिणः इह सन्तः विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति हि असाधवः धत्ते धैर्यं तु यः धीमान् स धीरः पण्डितः अथवा ॥ ५८ ॥

शाठ्य दुष्कर्म कारिणः जना	- शठता और दुष्कर्म करने वाले लोग	**इह सन्तः**	- इस युगमें सत्पुरुष
अघासुरायन्ते	- अघासुर बन रहे हैं,	**विषीदन्ति**	- दुःखी रहते हैं,
हि असाधवः	- क्योंकि दुष्ट लोग	**यः तु धैर्यं-धत्ते**	- जो कोई धैर्य धारण करता है,
प्रहृष्यन्ति	- बहुत हर्षित होते हैं	**स धीरः**	- वह धैर्यशाली
		अथवा पण्डितः	- अथवा विवेकवान है ॥ ५८ ॥

अस्पृश्यानवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ।
वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मंगलं नापि दृश्यते ॥ ५९ ॥

अस्पृश्य अनवलोक्या इयं शेष भार करी धरा वर्षे वर्षे क्रमात् जाता मंगलं न अपि दृश्यते ॥ ५९ ॥

इयं धरा	- यह पृथ्वी	**शेष भार करी**	- शेषनागके लिए भार रूपा
वर्षे वर्षे	- प्रति वर्ष	**जाता**	- होगयी है,
क्रमात् अस्पृश्य	- क्रमशः न छूने योग्य,	**मंगलं अपि**	- (इसका) कल्याण भी
अनवलोक्या	- न देखने योग्य	**न दृश्यते**	- नहीं दीखता ॥ ५९ ॥

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् ।
उपेक्षितानुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ६० ॥

न त्वां अपि सुतैः साकं कः अपि पश्यति साम्प्रतं उपेक्षिता अनुराग अन्धैः जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ६० ॥

साम्प्रतं त्वां-अपि	- इस समय तुमको भी	**अनुराग अन्धैः**	- विषयानुराग से अन्धे हुओं द्वारा
सुतैः साकं	- पुत्रोंके साथ	**उपेक्षिता**	- उपेक्षित होकर
कः अपि न-पश्यति	- कोई भी नहीं देखता,	**जर्जरत्वेन**	- जर्जर (अत्यन्त क्षीण) रूपमें
		संस्थिता	- बची हो ॥ ६० ॥

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६१ ॥

वृन्दावनस्य संयोगात् पुनः त्वं तरुणी नवा धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिः नृत्यति यत्र च ॥ ६१ ॥

वृन्दावनस्य	- वृन्दावनके	**तेन वृन्दावनं**	- इससे वृन्दावन
संयोगात्	- संयोगसे	**धन्यं यत्र**	- धन्य है, जहां
त्वं पुनः-	- तुम फिर नवयुवती	**भक्तिः च-**	- भक्ति भी नाचती है
नवा तरुणी	होगयी हो,	**नृत्यति**	॥ ६१ ॥

अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ।
किञ्चिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६२ ॥

अत्र इमौ ग्राहक अभावात् न जरां अपि मुञ्चतः किञ्चित् आत्म सुखेन इह प्रसुप्तिः मन्यते अनयोः ॥ ६२ ॥

अत्र ग्राहक	- यहाँ ग्राहक	**इह किञ्चित्**	- यहां कुछ
अभावात्	- न होनेसे	**आत्म सुखेन**	- आत्मानन्द होनेसे
इमौ जरां अपि	- इन दोनोंको बुढ़ापा भी	**अनयोः प्रसुप्तिः**	- इन दोनोंकी सुषुप्तावस्था
न मुञ्चतः	- नहीं छोड़ता है,	**मन्यते**	- मानी जाती है ॥६२॥

भक्तिरुवाच-

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ।
प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६३ ॥

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितः हि अशुचिः कलिः प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतः महान् ॥ ६३ ॥

हि अशुचिः-	- क्योंकि कलियुग	**कलौ प्रवृत्ते तु**	- कलियुगकी प्रवृत्ति
कलिः	अपवित्र है		होनेपर तो
राज्ञा परीक्षिता	- राजा परीक्षितने	**सर्व महान्**	- सब उत्तम (कार्यों) का
कथं स्थापितः	- कैसे (इसे) बसाया,	**सारः कुत्र गतः**	- सार कहां चला गया
			॥ ६३ ॥

करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ।
इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥ ६४ ॥

करुणा परेण हरिणा अपि अधर्मः कथं ईक्ष्यते इमं मे संशयं छिन्धि त्वत् वाचा सुखिता अस्मि अहम् ॥ ६४ ॥

करुणा परेण	- दया परायण	**इमं मे संशयं**	- यह मेरा सन्देह
हरिणा अपि	- श्रीहरि द्वारा भी	**छिन्धि**	- काट दो,
अधर्मः कथं	- अधर्म कैसे	**त्वत् वाचा**	- आपकी बातसे
ईक्ष्यते	- देखा जाता है,	**अहं सुखिता-अस्मि**	- मैं सुखी हुई हूँ ॥ ६४ ॥

नारद उवाच-

यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ।
सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६५ ॥

यदि पृष्टः त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६५ ॥

यदि बाले	- यदि वाले !	**भद्रे ते सर्वं**	- कल्याणी ! तुमसे सब
त्वया पृष्टः	- तुमने पूछा ही है तो	**वक्ष्यामि**	- कहूंगा (इससे)
प्रेमतः श्रवणं-कुरु	- प्रेमपूर्वक श्रवण करो,	**ते कश्मलं**	- तुम्हारा दुःख
		गमिष्यति	- चला जायेगा ॥ ६५ ॥

यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ।
तदिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ६६ ॥

यदा मुकुन्दः भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः तत् दिनात् कलिः आयातः सर्व साधन बाधकः ॥ ६६ ॥

यदा भगवान्	- जब भगवान	**तत् दिनात्**	- उसी दिनसे
मुकुन्दः क्ष्मां-त्यक्त्वा	- मुकुन्द पृथ्वीको छोड़कर	**सर्व साधन**	- सब साधनोंमें
		बाधकः कलिः	- बाधा डालने वाला कलियुग
स्वपदं गतः	- अपने धाम चले गये,	**आयातः**	- आगया ॥ ६६ ॥

दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ।
न मया मारणीयोऽयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६७ ॥

दृष्टः दिग्विजये राज्ञा दीनवत् शरणं गतः न मया मारणीयः अयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६७ ॥

दिग्विजये राज्ञा	- दिग्विजयके समय राजा परीक्षितने	**सारंग इव**	- भ्रमरके समान
दीनवत्	- दीनके समान	**सारभुक्**	- सारग्राही (राजाने सोचा)
शरणं गतः	- शरणमें आया	**अयं मया**	- 'यह मेरे द्वारा
दृष्टः	- (इसे) देखा,	**मारणीयः न**	- मार देने योग्य नहीं है ॥ ६७ ॥

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ ६८ ॥

यत् फलं न अस्ति तपसा न योगेन न समाधिना तत् फलं लभते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात् ॥ ६८ ॥

यत् फलं-	- जो फल तपस्यासे	**तत् फलं-**	- वह फल पूर्ण
तपसा न	नहीं,	**सम्यक्**	रूपसे
न योगेन	- योगसे नहीं,	**कलौ केशव-**	- कलियुगमें केशवके
समाधिना न-	- समाधिसे भी नहीं	**कीर्तनात्**	कीर्तनसे
अस्ति	होता	**लभते**	- (लोग) पाते हैं ॥६८॥

एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ।
विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ॥ ६९ ॥

एक आकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत् सार नीरसं विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ॥ ६९ ॥

सार नीरसं - सारहीन होनेपर भी
एक आकारं - एक गुणके कारण
कलिं सारवत् - कलियुगको सारवान
दृष्ट्वा- - देखकर परीक्षितने
विष्णुरातः
कलिजानां - कलियुगमें उत्पन्न होने वालोंके
सुखाय च- - सुखके लिए ही बसाया
स्थापितवान् ॥ ६९ ॥

कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ७० ॥

कुकर्म आचरणात् सारः सर्वतः निर्गतः अधुना पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनाः तुषा यथा ॥ ७० ॥

अधुना - इस समय
कुकर्म- - कुकर्म करनेसे
आचरणात्
सर्वतः सारः - सब कहींसे सारतत्त्व
निर्गतः - निकल गया है,
भूमौ पदार्थाः - पृथ्वीपर पदार्थ
बीजहीनाः - बीज रहित
तुषा यथा - भूसे के समान
संस्थिता - बच गये हैं ॥ ७० ॥

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥

विप्रैः भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने कारिता कणलोभेन कथा सारः ततः गतः ॥ ७१ ॥

भागवती वार्ता - भागवतकी कथा
विप्रैः गेहे गेहे - ब्राह्मणों द्वारा घर-घरमें
जने जने - चाहे जिस व्यक्तिके यहां
कण लोभेन- - कण (थोड़े) के लोभसे
कारिता की जाती है
ततः कथासारः - इससे कथाका सार
गतः - चला गया ॥ ७१ ॥

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठिन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥

अति उग्र भूरि कर्माणः नास्तिका रौरवा जनाः ते अपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारः ततः गतः ॥ ७२ ॥

अति उग्र	- अत्यन्त घोर	**जनाः ते अपि**	- लोग हैं, वे भी
भूरि कर्माणः	- बहुतसे कर्म करने वाले जो	**तीर्थेषु तिष्ठन्ति**	- तीर्थोंमें रहते हैं
		ततः तीर्थ-सारः गतः	- इससे तीर्थोंकी शक्ति चली गयी ॥ ७२ ॥
नास्तिका रौरवा	- नास्तिक नारकी		

कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ।
तेऽपि तिष्ठिन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥ ७३ ॥

काम क्रोध महालोभ तृष्णा व्याकुल चेतसः ते अपि तिष्ठन्ति तपसि तपः सारः ततः गतः ॥ ७३ ॥

काम क्रोध	- काम, क्रोध,	**ते अपि-तपसि तिष्ठन्ति**	- वे भी तपस्या करते हैं
महालोभ	- महालोभसे (जो)		
तृष्णा	- इच्छा	**तपः सारः**	- तपस्याका सार (तेज)
व्याकुल चेतसः	- व्याकुल चित्त हैं	**ततः गतः**	- इससे चला गया ॥७३॥

मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ।
शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७४ ॥

मनसः च अजयात् लोभात् दम्भात् पाखण्डसंश्रयात् शास्त्रान् अभ्यसनात् च एव ध्यानयोग फलं गतम् ॥ ७४ ॥

मनसः च	- मनके तो	**च शास्त्रान्**	- तथा शास्त्रोंका
अजयात्	- न जीतनेसे,	**अभ्यसनात्-**	- अन्भयास न करनेसे भी
लोभात्	- लोभ करनेसे,	**एव**	
दम्भात्	- दम्भ करनेसे,	**ध्यान योगफलं**	- ध्यान योगका फल
पाखण्डसंश्रयात्	- पाखण्डका आश्रय लेनेसे,	**गतं**	- नष्ट होगया ॥ ७४ ॥

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७५ ॥

पण्डिताः तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव पुत्रस्य उत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने ॥ ७५ ॥

पण्डिताः तु	- विद्वान लोग तो	**पुत्रस्य उत्पादने**	-(वे) पुत्रोत्पत्ति करनेमें
कलत्रेण	- पत्नीके साथ	**दक्षा**	- निपुण हैं (किन्तु)
महिषा इव-	- भैंसोंके समान रमण	**मुक्ति साधने**	- मोक्षका साधन करनेमें
रमन्ते	करते हैं	**अदक्षा**	- निपुण नहीं हैं ॥७५॥

न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरःसरा ।
एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥ ७६ ॥

न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदाय पुरः सरा एवं प्रलयतां प्राप्तः वस्तु सारः स्थले स्थले ॥ ७६ ॥

सम्प्रदाय	- सम्प्रदायसे	**एवं वस्तुसारः**	- इस प्रकार वस्तुओं का सार तत्त्व
पुरः सरा	- परम्परा प्राप्त	**स्थले स्थले**	- स्थान स्थान पर
हि वैष्णवता	- क्योंकि वैष्णवपना	**प्रलयतां प्राप्तः**	- नष्ट होगया है ॥७६॥
कुत्र न	- कहीं नहीं है,		

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ।
अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७७ ॥

अयं तु युग धर्मः हि वर्तते कस्य दूषणं अतः तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७७ ॥

हि अयं	- क्योंकि यह	**अतः तु-**	- अतः कमलनयन
युग धर्मः	- इस युगका धर्म ही	**पुण्डरीकाक्षः**	(भगवान) भी
वर्तते	- प्रवृत्त है (इसमें)	**निकटे स्थितः**	- समीप रहनेपर भी
कस्य दूषणं	- दोष किसका है,	**सहते**	- (इसे) सहन करते हैं ॥ ७७ ॥

सूत उवाच-

इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ।
भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७८ ॥

इति तत् वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता भक्तिः ऊचे वचः भूयः श्रूयतां तत् च शौनक ॥ ७८ ॥

शौनक	- शौनक जी !	**भक्तिः भूयः**	- भक्तिने फिर
इति तत् वचनं	- इस प्रकार उनकी बात	**वचः ऊचे**	- यह बात कही
श्रुत्वा परमं	- सुनकर परम	**तत् च श्रूयतां**	- उसे भी सुनिये ॥७८॥
विस्मयं गता	- आश्चर्यमें पड़कर		

भक्तिरुवाच-

सुरर्षे त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ।
साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७९ ॥

सुरर्षे त्वं हि धन्यः असि मत् भाग्येन समआगतः साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७९ ॥

सुरर्षे	- देवर्षि !	**लोके साधूनां-**	- संसारमें सत्पुरुषोंका
हि त्वं	- निश्चय आप	**दर्शनं**	दर्शन
धन्यः असि	- धन्य हैं,	**सर्व परं**	- सब परम
मत् भाग्येन	- मेरे सौभाग्यसे	**सिद्धिकरं**	- सफलता देने वाला है
सम आगतः	- (यहां मेरे) समीप आये हैं,		॥ ७९ ॥

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ ८० ॥

जयति जगति मायां यस्य कायाधवः ते वचन रचनं एकं केवलं च आकलय्य ध्रुवपदं अपि यातः यत् कृपातः ध्रुवः अयं सकल कुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नताः अस्मि ॥ ८० ॥

यस्य ते केवलं	- जिस आपकी केवल	**अयं ध्रुवः अपि**	- और ये ध्रुव भी
एकं वचन रचनं	- एक वाक्य रचना (उपदेश) को	**यत् कृपातः**	- जिनकी कृपासे
		ध्रुवपदं यातः	- ध्रुवलोक पहुँच गये (उन)
आकलय्य च	- श्रवण करके ही	**सकल-**	- समस्त सौभाग्य-भाजन
कायाधवः	- कयाधू-नन्दन प्रह्लादने	**कुशल पात्रं**	
जगति मायां-	- संसारकी मायाको	**ब्रह्मपुत्रं**	- ब्रह्माजीके पुत्र (आप) को
जयति	जीत लिया	**नताः अस्मि**	- नमस्कार करती हूँ ॥ ८० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच-

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्ता आतुरा कथं श्रीकृष्ण चरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥

अहो बाले - अहो बाले !
चिन्ता आतुरा - चिन्तासे व्याकुल होकर
कथं वृथा- - क्यों व्यर्थ खेद कर
खेदयसे रही हो,
श्रीकृष्ण- - श्रीकृष्णके चरणकमलोंका
चरणाम्भोजं
स्मर दुःखं- - स्मरण करो (इससे तुम्हारा)
गमिष्यति दुःख चला जायेगा ॥१॥

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।
पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २ ॥

द्रौपदी च परित्राता येन कौरव कश्मलात् पालिता गोप सुन्दर्यः स कृष्णः क्व अपि नो गतः ॥ २ ॥

येन कौरव - जिन्होंने कौरवोंके
कश्मलात् - उत्पीड़नसे
द्रौपदी - द्रौपदीकी
परित्राता च - रक्षाकी तथा
गोपसुन्दर्यः - गोपोंकी सुन्दरियोंका
पालिता - पालन किया
स कृष्णः- - वे श्रीकृष्ण कहीं भी
क्व अपि
गतः नो - गये नहीं हैं ॥ २ ॥

त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥

त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतः अधिका त्वया आहूतः तु भगवान् याति नीच गृहेषु अपि ॥ ३ ॥

भक्तिः त्वं तु	- भक्ति देवी ! तुम तो	**त्वया-**	- तुम्हारे पुकारनेपर तो
तस्य सततं	- उनकी निरन्तर	**आहूतः तु**	
प्राणतः अधिका	- प्राणोंसे भी अधिक	**भगवान्**	- भगवान
प्रिया	- प्रियतमा हो,	**नीच गृहेषु अपि**	- नीचोंके घर भी
		याति	- चले जाते हैं ॥ ३ ॥

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥

सत्य आदि त्रियुगे बोध वैराग्यौ मुक्ति साधकौ कलौ तु केवला भक्तिः ब्रह्मसायुज्य कारिणी ॥ ४ ॥

सत्य आदि-	- सतयुग आदि तीन	**कलौ तु-**	- कलियुगमें तो केवल
त्रियुगे	युगोंमें	**केवला भक्तिः**	भक्ति ही
बोध वैराग्यौ	- ज्ञान-वैराग्य	**ब्रह्म सायुज्य**	- ब्रह्म से सायुज्य (एकात्मता)
मुक्ति साधकौ	- मुक्ति दिलाने वाले थे,	**कारिणी**	- कराने वाली है ॥ ४ ॥

इति निश्चित्य चिद्रूपः सद्रूपां त्वां ससर्ज ह ।
परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥

इति निश्चित्य चिद्रूपः सत् रूपां त्वां ससर्ज ह परमानन्द चित् मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥

इति निश्चित्य	- ऐसा निश्चय करके	**त्वां सत् रूपां**	- तुम सत्स्वरूपा
परमानन्द-	- परमानन्द, ज्ञान स्वरूप	**चित् मूर्तिः**	- अपने ज्ञान स्वरूपसे
चित् रूपः	(भगवान) ने	**कृष्ण वल्लभां**	- श्रीकृष्ण प्रिया
		सुन्दरीं-	- सुन्दरीको उत्पन्न ही
		ससर्ज ह	किया है ॥ ५ ॥

बद्ध्वाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ।
त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान् पोषयेति च ॥ ६ ॥

बद्ध्वा अञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमि इति च एकदा त्वां तदा आज्ञापयत् कृष्णः मद्भक्तान् पोषय इति च ॥ ६ ॥

एकदा च त्वया	- एक बार तो तुमने	**कृष्णः-**	- श्रीकृष्णने आज्ञा दी
बद्ध्वा अञ्जलिं	- हाथ जोड़कर	**आज्ञापयत्**	
इति पृष्टं	- यह पूछा	**मद्भक्तान्**	- 'मेरे भक्तोंका
किं करोमि	- 'क्या (सेवा) करूँ ?'	**पोषय**	- पोषण करो' ॥ ६ ॥
तदा त्वां-	- उस समय तुमको		
इति च	ऐसी ही		

अंगीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ।
मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥

अंगीकृतं त्वया तत् वै प्रसन्नः अभूत् हरिः तदा मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञान वैराग्यकाः इमौ ॥ ७ ॥

त्वया तत् वै	- तुमने उसको निश्चयपूर्वक	**प्रसन्नः अभूत्**	- प्रसन्न होगये,
अंगीकृतं	- स्वीकार कर लिया	**तुभ्यं मुक्तिं-**	- तुम्हारे लिए मुक्तिको
तदा हरिः	- तब श्रीहरि (तुमपर)	**दासीं**	दासी रूपमें
		इमौ ज्ञान-	- और ये ज्ञान-वैराग्य
		वैराग्यकाः	
		ददौ	- दिये ॥ ७ ॥

पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ।
भूमौ भक्तविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥

पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च भूमौ भक्त विपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥

त्वं स्वेन रूपेण	- तुम अपने (वास्तविक) रूपसे	**भूमौ भक्त विपोषाय**	- पृथ्वीपर भक्तोंका विशेष पोषण करनेके लिए
वैकुण्ठे पोषणं करोषि	- वैकुण्ठमें (भक्तोंका) पोषण करती हो एवं	**त्वया छाया रूपं कृतं**	- तुमने (यह अपना) छाया रूप बनाया है ॥ ८ ॥

मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ।
कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥

मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि कृत आदि द्वापरस्य अन्तं महा आनन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥

मुक्तिं ज्ञानं	- मुक्ति, ज्ञान,	**कृत आदि**	- सतयुगके प्रारम्भसे
च विरक्तिं	- तथा वैराग्यको	**द्वापरस्य अन्तं**	- द्वापर युगके अन्ततक
सहकृत्वा	- साथ लेकर	**महाआनन्देन**	- अत्यन्त आनन्दपूर्वक
भुवि गता	- पृथ्वीपर आकर	**संस्थिता**	बनी रहीं ॥ ९ ॥

कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ।
त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ॥ १० ॥

कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्ड आमय पीडिता त्वत् आज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनः एव सा ॥ १० ॥

कलौ मुक्तिः	- कलियुगमें मुक्ति	**त्वत् आज्ञया**	- तुम्हारी आज्ञासे
पाखण्ड आमय	- पाखण्डरूपी रोगसे	**सा पुनः शीघ्रं एव**	- वह फिर शीघ्र ही
पीडिता क्षयं प्राप्ता	- पीड़ित होकर क्षीण होने लगी तो	**वैकुण्ठं गता**	- वैकुण्ठ चली गयी ॥ १० ॥

स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ।
पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥

स्मृता त्वया अपि च अत्र एव मुक्तिः आयाति याति च पुत्रीकृत्य त्वया इमौ च पार्श्वे स्वस्य एव रक्षितौ ॥ ११ ॥

त्वया स्मृता-	- तुम्हारे स्मरण	**त्वया इमौ**	- तुमने इन दोनों
अपि	करनेपर भी		(ज्ञान-वैराग्य) को
मुक्तिः अत्र-	- मुक्ति यहीं (संसारमें)	**पुत्री कृत्य च**	- पुत्र बनाकर ही
एव च	ही	**स्वस्य एव**	- अपने ही
आयाति च	- आती है तथा	**पार्श्वे च रक्षितौ-**	समीप ही रख लिया
याति	- चली जाती है,		॥ ११ ॥

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ।
तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥ १२ ॥

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव तथा अपि चिन्तां मुञ्च त्वं उपायं चिन्तयामि अहम् ॥ १२ ॥

कलौ उपेक्षातः	- कलियुगमें उपेक्षा होनेसे	**तथा अपि त्वं**	- फिर भी तुम
तव सुतौ	- तुम्हारे पुत्र	**चिन्तां मुञ्च**	- चिन्ता त्याग दो,
मन्दौ वृद्धौ-	- शिथिल और वृद्ध	**अहं उपायं**	- मैं उपाय
जातौ	होगये हैं,	**चिन्तयामि**	- सोचता हूँ ॥ १२ ॥

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥

कलिना सदृशः कः अपि युगः न अस्ति वरानने तस्मिन् त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥

वरानने	- सुमुखी !	**तस्मिन् त्वां**	- उसमें तुम्हारी
कलिना सदृशः	- कलियुगके समान	**गेहे गेहे**	- प्रत्येक घरमें,
कः अपि युगः	- कोई भी युग	**जने जने**	- प्रत्येक मनुष्यमें
न अस्ति	- नहीं है,	**स्थापयिष्यामि**	- स्थापना करूँगा ॥१३॥

अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥

अन्य धर्मान् तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महा उत्सवान् तदा न अहं हरेः दासः लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥

अन्य धर्मान्	- दूसरे सब धर्मोंकी	**त्वां लोके**	- तुम्हें संसारमें
तिरस्कृत्य	- उपेक्षा करके	**प्रवर्तये न तदा**	- प्रवर्तित न कर दूँ तो
महा उत्सवान्	- बड़े उत्सवोंको	**अहं हरेः-**	- मैं श्रीहरिका
पुरस्कृत्य	- आगे करके (महोत्सवोंके साथ)	**दासः न**	दास नहीं ॥ १४ ॥

त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥

त्वत् अन्विताः च ये जीवा भविष्यन्ति कलाः इह पापिनः अपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्ण मन्दिरम् ॥ १५ ॥

ये पापिनः अपि	- जो पापी भी	**भविष्यन्ति**	- हो जायंगे (वे)
जीवा इह-कलाः	- जीव इस कलियुगमें	**निर्भयं-**	- निर्भय होकर श्रीकृष्णके
		कृष्ण मन्दिरं	निजधाममें
त्वत् अन्विताः	- तुम्हारे अनुगामी	**गमिष्यन्ति**	- जायेंगे ॥ १५ ॥

येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ।
न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६ ॥

येषां चित्ते वसेत् भक्तिः सर्वदा प्रेम रूपिणी न ते पश्यन्ति की नाशं स्वप्ने अपि अमल मूर्तयः ॥ १६ ॥

येषां चित्ते - जिनके चित्तमें	ते अमल मूर्तयः - वे निर्मल स्वरूप (पुरुष)
प्रेम रूपिणी- - प्रेम स्वरूपा भक्ति	स्वप्ने अपि - स्वप्नमें भी
भक्तिः	कीनाशं न- - यमराजको नहीं देखते
सर्वदा वसेत् - सदा निवास करती है	पश्यन्ति ॥ १६ ॥

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥

न प्रेतः न पिशाचः वा राक्षसः वा असुरः अपि वा भक्तियुक्त मनस्कानां स्पर्शने न प्रभुः भवेत् ॥ १७ ॥

न प्रेतः - न प्रेत	भक्ति युक्त - भक्ति युक्त
वा न पिशाचः - अथवा न पिशाच,	मनस्कानां - मन वालोंको
वा राक्षसः - अथवा राक्षस	स्पर्शने - स्पर्श करनेमें
वा असुरः अपि - अथवा असुर (दैत्य, दानव) भी	प्रभुः न- - समर्थ नहीं हो सकता
	भवेत् ॥ १७ ॥

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥

न तपोभिः न वेदैः च न ज्ञानेन न अपि कर्मणा हरिः हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥

न तपोभिः - न तपस्यासे,	हि हरिः- - क्योंकि श्रीहरि
च न वेदैः - तथा न वेदाध्ययनसे,	भक्त्या भक्तिसे ही
न ज्ञानेन - न ज्ञानसे	साध्यते तत्र - वश में होते हैं, इसमें
कर्मणा अपि न - और कर्म से भी नहीं,	गोपिकाः प्रमाणं - गोपियां प्रमाण हैं ॥ १८ ॥

नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥

नृणां जन्म सहस्रेण भक्तौ प्रीतिः हि जायते कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥

सहस्रेण-	- सहस्रों मनुष्य जन्मके	**कलौ भक्तिः**	- कलियुगमें भक्ति
नृणां जन्म	पश्चात्		(ही साधन है)
हि भक्तौ प्रीतिः	- क्योंकि भक्तिसे प्रेम	**भक्त्या कृष्णः**	- भक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण
जायते	- उत्पन्न होता है,	**पुरः स्थितः**	- सम्मुख खड़े दीखते हैं
कलौ भक्तिः	- कलियुगमें भक्ति		॥ १९ ॥
	(ही करो)		

भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ॥ २० ॥

भक्ति द्रोह करा ये च ते सीदन्ति जगत् त्रये दुर्वासा दुःखं आपन्नः पुरा भक्त विनिन्दकः ॥ २० ॥

ये च भक्ति-	- जो भी भक्तिसे	**पुरा भक्त**	- पहिले भक्तकी निन्दा
द्रोह करा	शत्रुता करने वाले हैं	**विनिन्दकः**	करने वाले
ते जगत् त्रये	- वे तीनों लोकोंमें	**दुर्वासा दुःखं**	- दुःख (विपत्ति) में पड़
सीदन्ति	- कष्ट पाते हैं,	**आपन्नः**	गये थे ॥ २० ॥

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

अलं व्रतैः अलं तीर्थैः अलं योगैः अलं मखैः अलं ज्ञानकथा आलापैः भक्तिः एक एव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

अलं व्रतैः - व्रत करनेसे बस,
अलं तीर्थैः - तीर्थयात्रा करनेसे भी काम नहीं,
अलं योगैः - योग साधनका प्रयोजन नहीं,
अलं मखैः - यज्ञ करनेकी आवश्यकता नहीं,
ज्ञान कथा-आलापैः - ज्ञान कथाकी चर्चासे
अलं - बस,
एक एव भक्तिः - अकेली ही भक्ति
मुक्तिदा - मुक्ति देने वाली है ॥ २१ ॥

सूत उवाच-

इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ।
सर्वांगपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

इति नारद निर्णीतं स्व माहात्म्यं निशम्य सा सर्व अंग पुष्टि संयुक्ता नारदं वाक्यं अब्रवीत् ॥ २२ ॥

इति सा - इस प्रकार वह (भक्ति)
नारद निर्णीतं - नारदजी द्वारा निर्णय किये
स्व माहात्म्यं - अपने माहात्म्यको
निशम्य - सुनकर
सर्व अंग - सब अंगोंसे
पुष्टि संयुक्ता - पुष्ट होकर
नारदं - नारदजीसे
वाक्यं अब्रवीत् - यह बात बोली ॥ २२ ॥

भक्तिरुवाच-

अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ।
न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥

अहो नारद धन्यः असि प्रीतिः ते मयि निश्चला न कदाचित् विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥

अहो नारद	- अहो, नारद जी !	**कदाचित्**	- (तुम्हें) कभी
धन्यः असि	- तुम धन्य हो,	**न विमुञ्चामि**	- नहीं छोड़ूंगी,
ते मयि	- तुम्हारी मुझमें	**सर्वदा चित्ते**	- सदा (तुम्हारे) चित्तमें
निश्चला प्रीतिः	- निश्चल प्रीति है,	**स्थास्यामि**	- स्थिर रहूंगी ॥ २३ ॥

कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ।
पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥

कृपालुना त्वया साधो मत् बाधा ध्वन्सिता क्षणात् पुत्रयोः चेतना न अस्ति ततः बोधय बोधय ॥ २४ ॥

साधो त्वया	- साधो, आप	**पुत्रयोः**	- (किन्तु मेरे) पुत्रोंको
कृपालुना	- कृपालुने	**चेतना न-**	- चेतना नहीं है,
मत् बाधा	- मेरी पीड़ा	**अस्ति**	
क्षणात् ध्वन्सिता	- एक क्षणमें नष्ट कर दी,	**ततः बोधय**	- अतः (इनको) जगाइये,
		बोधय	- जगाइये ॥ २४ ॥

सूत उवाच-

तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ।
तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥

तस्या वचः सम आकर्ण्य कारुण्यं नारदः गतः तयोः बोधनं आरेभे कर अग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥

तस्या वचः	- उस (भक्ति) की बात	**कर अग्रेण-**	- हाथके अगले भागसे
सम आकर्ण्य	- भली प्रकार सुनकर	**विमर्दयन्**	झकझोरते हुए
नारदः	- नारद जी	**तयोः बोधनं**	- उनको जगाना
कारुण्यं गतः	- करुणाको प्राप्त होकर (दया करके)	**आरेभे**	- प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ।
ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥

मुखं संयोज्य कर्ण अन्ते शब्दं उच्चैः सम उच्चरन् ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥

कर्ण अन्ते - कानके पास
मुखं संयोज्य - मुख लगाकर
उच्चैः शब्दं - उच्च ध्वनिसे
सम उच्चरन् - भली प्रकार बोलते हुए कहा
ज्ञान शीघ्रं - 'हे ज्ञान ! शीघ्र
प्रबुध्यतां - जाग जाओ,
रे वैराग्य - अरे वैराग्य,
प्रबुध्यतां - जाग जाओ ॥ २६ ॥

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ।
बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥

वेद वेदान्त घोषैः च गीतापाठैः मुहुः मुहुः बोध्यमानौ तदा तेन कथञ्चित् च उत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥

तदा तेन - फिर उन (नारदजी) के द्वारा
वेद वेदान्त-घोषैः - वेदों एवं वेदान्त (उपनिषदों) का घोष करनेपर,
च मुहुः मुहुः - तथा बार-बार
गीता पाठैः - गीताका पाठ करनेपर
कथञ्चित् च - किसी प्रकारतो
बलात् उत्थितौ - बलपूर्वक उठे ॥२७॥

नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ।
बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमांगकौ ॥ २८ ॥

नेत्रैः अनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसाः उभौ बकवत् पलितौ प्रायः शुष्क काष्ठ सम अंगकौ ॥ २८ ॥

नेत्रैः-	- नेत्र खोलकर नहीं	**बकवत् पलितौ**	- बगुलेके समान
अनवलोकन्तौ	देखने वाले,		पके केश,
जृम्भन्तौ	- जम्हाई लेते	**प्रायः शुष्क-**	- प्रायः सूखे काष्ठके
उभौ सालसाः	- दोनों आलसपूर्ण	**काष्ठ**	समान
		सम अंगकौ	- अंग वाले थे ॥२८॥

क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ।
ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९ ॥

क्षुत् क्षामौ तौ निरीक्ष्य एव पुनः स्वाप परायणौ ऋषिः चिन्तापरः जातः किं विधेयं मया इति च ॥ २९ ॥

तौ क्षुत् क्षामौ	- उन दोनोंको भूखसे दुर्बल होनेसे	**ऋषिः इति च**	- ऋषि इस प्रकार
		परः चिन्ता-	- अत्यन्त चिन्तित
पुनः स्वाप परायणौ	- फिर निद्रा परायण	**जातः**	होगये कि
निरीक्ष्य एव	- देखकर ही	**मया किं-**	- मुझे क्या करना चाहिए
		विधेयं	॥ २९ ॥

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ।
चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरं चिन्तयन् इति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥

भार्गव	- शौनक जी !	**च महत्तरं**	- तथा अत्यधिक
इति चिन्तयन्	- यह चिन्ता करते हुए कि	**वृद्धत्वं कथं-**	- बुढ़ापा कैसे जायगा,
		याति	
अहो निद्रा	- अहो (इनकी) निद्रा	**गोविन्दं-**	- गोविन्दका स्मरण करने
		स्मारयामास	लगे ॥ ३० ॥

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ।
उद्यमः सफलस्तेऽयं भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

व्योमवाणी तत् एव अभूत् मा ऋषे खिद्यतां इति उद्यमः सफलः ते अयं भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

तत् एव इति	- उसी समय इस प्रकार	**न संशयः**	- (इसमें) सन्देह नहीं कि
व्योमवाणी-	- आकाशवाणी हुई	**ते अयं उद्यमः**	- तुम्हारा यह उद्योग
अभूत्		**सफलः-**	- सफल होगा ॥ ३१ ॥
ऋषे मा-	- 'देवर्षि ! खेद मत	**भविष्यति**	
खिद्यतां	करो,		

एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ।
तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ॥ ३२ ॥

एतत् अर्थं तु सत् कर्म सुरर्षे त्वं सम आचर तत् ते कर्म अभिधास्यन्ति साधवः साधु भूषणाः ॥ ३२ ॥

सुरर्षे	- देवर्षि !	**तत् कर्म ते**	- वह कर्म तुम्हें
एतत् अर्थं तु	- इसके लिए तो	**साधु भूषणाः**	- साधुओंके आभूषण
त्वं सत्कर्म	- तुम सत् कर्म	**साधवः**	रूप साधुलोग
सम आचर	- भली प्रकार करो,	**अभिधास्यन्ति**	- बतलावेंगे ॥ ३२ ॥

सत्कर्मणि कृते तस्मिन् सनिद्रा वृद्धतानयोः ।
गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥

सत् कर्मणि कृते तस्मिन् सत् निद्रा वृद्धता अनयोः गमिष्यति क्षणात् भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥

तस्मिन् सत्-कर्मणि	- उस सत् कर्मको	**क्षणात्-गमिष्यति**	- एक क्षणमें चला जायगा एवं
कृते अनयोः सत् निद्रा-वृद्धता	- करनेपर इन दोनोंकी सात्विक निद्रा और बुढ़ापा	**सर्वतः भक्तिः प्रसरिष्यति**	- सब ओर भक्ति फैल जायगी ॥ ३३ ॥

इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ।
नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥

इति आकाश वचः स्पष्टं तत् सर्वैः अपि विश्रुतं नारदः विस्मयं लेभे न इदं ज्ञातं इति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥

इति स्पष्टं आकाशवचः	- इस प्रकार स्पष्ट आकाशवाणी	**इदं न ज्ञातं इति ब्रुवन्-नारदः**	- 'इसे नहीं समझ सका' ऐसा कहते हुए नारदजी
तत् सर्वैः अपि विश्रुतं	- उन सबने भी विशेष रूपसे सुनी,	**विस्मयं लेभे**	- आश्चर्य पागये (चकित होगये) ॥३४॥

नारद उवाच-

अनयाऽऽकाशवाण्यापि गोप्यत्वेन निरूपितम् ।
किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५ ॥

अनया आकाश वाण्या अपि गोप्यत्वेन निरूपितं किं वा तत् साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत् तयोः ॥ ३५ ॥

अनया आकाश-वाण्या	- इस आकाशवाणी	**वा तत् कार्यं साधनं किं**	- अथवा वह कार्य साधन क्या है,
अपि गोप्यत्वेन	- ने भी छिपे ढंगसे	**येन तत्**	- जिससे उन (भक्ति आदि) का
निरूपितं	- निरूपण किया,	**कार्यं भवेत्**	- काम हो ॥ ३५ ॥

क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ।
मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥ ३६ ॥

क्व भविष्यन्ति सन्तः ते कथं दास्यन्ति साधनं मया अत्र किं प्रकर्तव्यं यत् उक्तं व्योम भाषया ॥ ३६ ॥

ते सन्तः	- वे सन्त	**यत् व्योम-**	- जो आकाशवाणी ने कहा
क्व भविष्यन्ति	- कहां होंगे ?	**भाषया उक्तं**	
कथं साधनं-	- कैसे साधन प्रदान	**मया अत्र**	- वह मुझे इस विषयमें
दास्यन्ति	करेंगे ?	**किं प्रकर्तव्यं**	- क्या विशेष करना चाहिए ? ॥ ३६ ॥

सूत उवाच-

तत्र द्वावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ।
तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥

तत्र द्वाः अपि संस्थाप्य निर्गतः नारदः मुनिः तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन् मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥

द्वाः अपि	- (ज्ञान-वैराग्य) दोनोंको ही	**तीर्थं तीर्थं**	- अनेक तीर्थोंमें
तत्र संस्थाप्य	- वहीं छोड़कर	**विनिष्क्रम्य**	- जाते हुए
नारदः मुनि	- नारद मुनि	**मार्गे मुनीश्वरान्**	- मार्गमें मुनीश्वरोंसे
निर्गतः	- (वहांसे) निकल पड़े,	**पृच्छन्**	- पूछते जाते थे ॥३७॥

वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ।
असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ।
मूकीभूतास्तथान्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ॥ ३८ ॥

वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किञ्चित् निश्चित्य न उच्यते असाध्यं केचन प्रोचुः दुर्ज्ञेयं इति च अपरे मूकीभूताः तथा अन्ये तु कियन्तः तु पलायिताः ॥ ३८ ॥

सर्वैः	- सब लोग	च अपरे	- तथा दूसरोंने
वृत्तान्तः श्रूयते	- वृत्तान्त सुन लेते थे,	दुर्ज्ञेयं इति	- 'इसे जानना कठिन है' ऐसा (कहा)
किञ्चित्-	- (किन्तु) कुछ	तथा अन्ये तु-	तथा दूसरे तो
निश्चित्य	निश्चय करके	मूकीभूताः	- चुप रह गये,
न उच्यते	- नहीं कहते थे,	कियन्तः तु	- कुछ लोग तो
केचन- असाध्यं प्रोचुः	- किन्हींने असाध्य कहा,	पलायिताः	- भाग गये ॥ ३८ ॥

हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ।
वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ ३९ ॥

हाहाकारः महान् आसीत् त्रैलोक्ये विस्मय आवहः वेद वेदान्त घोषैः च गीतापाठैः विबोधितम् ॥ ३९ ॥

त्रैलोक्ये	- तीनों लोकोंमें	वेद वेदान्त-	- 'वेद-वेदान्तके घोषसे
विस्मय आवहः	- आश्चर्यजनक	घोषैः	
महान् हाहाकारः	- महान हाहाकार	च गीता पाठैः	- तथा गीताके पाठसे
आसीत्	- हुआ कि	विबोधितं	- जगाये जानेपर ॥३९॥

भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ।
उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ ४० ॥

भक्ति ज्ञान विरागाणां न उदतिष्ठत् त्रिकं यदा उपायः न अपरः अस्ति इति कर्णे कर्णे जपन् जनाः ॥ ४० ॥

भक्ति ज्ञान- - भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी
विरागाणां
त्रिकं यदा - त्रयी जब
न उदतिष्ठत् - नहीं उठ सकी तो
अपरः उपायः - दूसरा उपाय
न अस्ति इति - नहीं है' इस प्रकार
जनाः कर्णे- - लोग एक दूसरेके
कर्णे कानोंमें
जपन् - फुसफुसाने लगे ॥४०॥

योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ।
तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ ४१ ॥

योगिना नारदेन अपि स्वयं न ज्ञायते तु यत् तत् कथं शक्यते वक्तुं इतरैः इह मानुषैः ॥ ४१ ॥

यत् स्वयं - जो (विषय) स्वयं
योगिना- - योगी नारदजीको भी
नारदेन अपि
न ज्ञायते - नहीं ज्ञात होसका
तु तत् इह - भला उसको इस लोक के
इतरैः मानुषैः - दूसरे मनुष्यके द्वारा
वक्तुं कथं- - बतलाना कैसे सम्भव है
शक्यते ॥ ४१ ॥

एवमृषिगणैः पृष्टैर्निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥

एवं ऋषिगणैः पृष्टैः निर्णीय उक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥

एवं ऋषिगणैः - इस प्रकार ऋषिगणोंसे
पृष्टैः - पूछनेपर
निर्णीय उक्तं - (उन्होंने अपना) निर्णय कहा
दुरासदम् - 'यह दुस्साध्य है ।' ॥ ४२ ॥

ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ।
तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥

ततः चिन्ता आतुरः सः अथ बदरीवनं आगतः तपः चरामि च अत्र इति तत् अर्थं कृत निश्चयः ॥ ४३ ॥

ततः चिन्ता-	- तब चिन्तासे	**अत्र तपः-**	- यहां तपस्या
आतुरः	व्याकुल होकर	**चरामि**	ही करूंगा ।'
सः अथ	- वे फिर	**इति निश्चयःकृत**	- ऐसा निश्चय करके
तत् अर्थं	- 'उसके लिए	**बदरीवनं आगतः**	- बदरीनाथ आये ॥४३॥

तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ।
कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥

तावत् ददर्श पुरतः सनक आदीन् मुनीश्वरान् कोटिसूर्य सम आभासान् उवाच मुनि सत्तमः ॥ ४४ ॥

तावत् पुरतः	- इतनेमें सामने ही	**मुनीश्वरान्**	- मुनीश्वरोंको
कोटि सूर्य सम	- करोड़ों सूर्योंके समान	**ददर्श**	- देखकर
आभासान्	- तेजस्वी	**मुनि सत्तमः**	- मुनि प्रवर (नारदजी)
सनक आदीन्	- सनकादि	**उवाच**	बोले ॥ ४४ ॥

नारद उवाच-

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमोऽभवत् ।
कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः अभवत् कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा मम उपरि ॥ ४५ ॥

इदानीं	- इस समय	**मम उपरि**	- मेरे ऊपर
भूरिभाग्येन	- बड़े भाग्यसे	**कृपां कृत्वा**	- कृपा करके
भवद्भिः	- आप लोगोंसे	**कुमारा शीघ्रं**	- कुमारो ! शीघ्र
संगमः अभवत्	- मिलना हुआ है,	**ब्रुवतां**	- बतलाओ ॥ ४५ ॥

भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ।
पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥

भवन्तः योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तः बहुश्रुताः पञ्च हायन संयुक्ताः पूर्वेषां अपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥

भवन्तः सर्वे	- आप सब	**पञ्च हायन**	- पांच वर्षकी (आयुके)
योगिनः-	- योगी, बुद्धिमान,	**संयुक्ताः**	- रहनेपर भी
बुद्धिमन्तः		**पूर्वेषां अपि**	- पहिले (अत्रि अंगिरादि)
बहुश्रुताः	- बहुत शास्त्रोंके ज्ञाता,		लोगोंके भी
		पूर्वजाः	- पूर्वज हैं ॥ ४६ ॥

सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ।
लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥

सदा वैकुण्ठ निलया हरि कीर्तन तत्पराः लीला अमृत रस उन्मत्ताः कथामात्र एक जीविनः ॥ ४७ ॥

सदा वैकुण्ठ	- सदा वैकुण्ठधाममें	**लीला अमृत**	- (भगवत्) लीला रूपी
निलया	रहने वाले,		अमृत
हरि कीर्तन	- श्रीहरिके कीर्तनमें	**रस उन्मत्ताः**	- रससे उन्मत्त,
तत्पराः	- तत्पर,	**एक कथामात्र**	- केवल कथामात्रसे
		जीविनः	- जीवन धारण करने वाले
			हैं ॥ ४७ ॥

हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ।
अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥

हरिः शरणं एवं हि नित्यं येषां मुखे वचः अतः काल सम आदिष्टा जरा युष्मान् न बाधते ॥ ४८ ॥

हि येषां मुखे	- क्योंकि जिनके मुखमें	**अतः काल-**	- अतः कालके द्वारा पूर्ण
हरिः शरणं एवं	- 'हरिः शरणं'	**सम आदिष्टा**	आदेश प्राप्त
	इस प्रकारकी	**जरा युष्मान्**	- बुढ़ापा आप लोगोंको
वचः	- वाणी रहती है,	**बाधते न**	- पीड़ा नहीं देता ॥४८॥

येषां भ्रूभंगमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ।
भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः पुरं गतौ ॥ ४९ ॥

येषां भ्रूभंग मात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा भूमौ निपतितौ सद्यः यत् कृपातः पुरं गतौ ॥ ४९ ॥

येषां भ्रूभंग	- जिनके भौंहे टेढ़ी	**सद्यः भूमौ-**	- तत्काल पृथ्वीपर गिरा
मात्रेण	करलेने मात्रसे	**निपतितौ**	दिये गये
पुरा हरेः-	- पहिले श्रीहरिके	**यत् कृपातः**	- और जिनकी कृपासे
द्वारपालौ	द्वारपाल (जय-विजय)	**पुरं गतौ**	- फिर वैकुण्ठ धाम पहुँच गये ॥ ४९ ॥

अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ।
अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥

अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतां इह अनुग्रहः तु कर्तव्यः मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥

अहो भाग्यस्य-	- अहो, भाग्ययोगसे	**मयि दीने**	- मुझ दीनपर
योगेन		**दया परैः तु**	- (आप) दया
इह भवतां-	- यहां आप लोगोंका		परायणोंको तो
दर्शनं	दर्शन होगया,	**अनुग्रहः कर्तव्यः**	- अनुग्रह करना चाहिए ॥ ५० ॥

अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ।
अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥

अशरीर गिरा उक्तं यत् तत् किं साधनं उच्यतां अनुष्ठेयं कथं तावत् प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥

अशरीर गिरा - बिना शरीरकी वाणीने
यत् उक्तं तत् - जो बतलाया वह
किं साधनं- - क्या साधन है
उच्यतां (यह) बतलाइये
तावत् कथं- - फिर उसका कैसे
अनुष्ठेयं अनुष्ठान करना चाहिए
सविस्तरं - (यह) विस्तारके साथ
प्रब्रुवन्तु - भली प्रकार बतलाइये
॥ ५१ ॥

भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ।
स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

भक्ति ज्ञान विरागाणां सुखं उत्पद्यते कथं स्थापनं सर्व वर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

भक्तिज्ञान- - भक्ति ज्ञान वैराग्यको
विरागाणां
सुखं उत्पद्यते - सुख उत्पन्न हो तथा
सर्व वर्णेषु - सब वर्णोंमें
प्रयत्नतः - प्रयत्नपूर्वक
प्रेमपूर्वं - प्रेम सहित
कथं स्थापनं - कैसे (उनकी) स्थापना हो
॥ ५२ ॥

कुमारा ऊचुः-

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ।
उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते सम आवह उपायः सुख साध्यः अत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥

देवर्षे - देवर्षि !
चिन्तां मा कुरु - चिन्ता मत करो,
चित्ते हर्षं - चित्तमें हर्ष
सम आवह - भली प्रकार धारण करो,
हि अत्र - क्योंकि इस विषयमें
सुख साध्यः- - सुख पूर्वक सिद्ध होने
उपायः वाला उपाय
पूर्व एव वर्तते - पहिले से ही वर्तमान है
॥ ५३ ॥

अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।
सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥

अहो नारद धन्यः असि विरक्तानां शिरोमणिः सदा श्रीकृष्ण दासानां अग्रणीः योगभास्करः ॥ ५४ ॥

अहो **विरक्तानां**	- अहो विरक्तोंके	**सदा अग्रणीः**	- सदा प्रमुख,
शिरोमणिः	- शिरोमणि,	**योग भास्करः**	- योगके सूर्य,
श्रीकृष्ण दासानां	- श्रीकृष्णके दासोंके	**नारद धन्यः असि**	- नारदजी (तुम) धन्य हो ॥ ५४ ॥

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ।
घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥ ५५ ॥

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्ति अर्थं अनुवर्तिनि घटते कृष्ण दासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥ ५५ ॥

भक्ति अर्थं	- भक्तिके लिए	**कृष्ण दासस्य**	- श्रीकृष्णके भक्तोंका
अनुवर्तिनि	- उसके पीछे उद्योग करना	**भक्तेः संस्थापना**	- भक्तिकी सम्यक स्थापना करना
त्वयि चित्रं	- आपके लिए आश्चर्यकी बात	**सदा घटते**	- सदा उचित है ॥ ५५ ॥
न मन्तव्यं	- नहीं मानना चाहिए		

ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ।
श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६ ॥

ऋषिभिः बहवः लोके पन्थानः प्रकटीकृताः श्रमसाध्याः च ते सर्वे प्रायः स्वर्ग फल प्रदाः ॥ ५६ ॥

ऋषिभिः लोके - ऋषियों द्वारा संसारमें
बहवः पन्थानः - वहुतसे पन्थ (साधन-सम्प्रदाय)
प्रकटीकृताः - प्रकट किये गये हैं,
ते सर्वे - वे सभी
श्रमसाध्याः - श्रमसाध्य हैं,
च प्रायः - तथा प्रायः
स्वर्ग फल प्रदाः - स्वर्गरूप फल देने वाले हैं ॥ ५६ ॥

वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ।
तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥

वैकुण्ठ साधकः पन्थाः स तु गोप्यः हि वर्तते तस्य उपदेष्टा पुरुषः प्रायः भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥

वैकुण्ठ साधकः - वैकुण्ठ प्राप्त कराने वाला
पन्थाः - जो मार्ग है,
हि स तु - क्योंकि वह तो
गोप्यः वर्तते - छिपा हुआ है
तस्य उपदेष्टा - उसका उपदेश करने वाला
पुरुषः प्रायः - पुरुष प्रायः
भाग्येन लभ्यते - भाग्यसे मिलता है ॥ ५७ ॥

सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ।
तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥

सत् कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत् पुरा तत् उच्यते शृणुष्व अद्यस्थिर चित्तः प्रसन्न धीः ॥ ५८ ॥

पुरा व्योमवाचा - पहिले आकाशवाणीने
तव यत् सत्कर्म - तुमको जो सत्कर्म
निर्दिष्टं - सूचित किया था
तत् उच्यते - उसे कहा जारहा है
अद्यस्थिर चित्तः - इस समय चित्त स्थिर करके
प्रसन्नधीः - प्रसन्न बुद्धिसे
शृणुष्व - सुनो ॥ ५८ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९ ॥

द्रव्ययज्ञाः तपः यज्ञा योगयज्ञाः तथा अपरे स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाः च ते तु कर्म विसूचकाः ॥ ५९ ॥

द्रव्य यज्ञाः	- द्रव्योंसे होने वाले यज्ञ,	**स्वाध्याय**	- वेदाध्ययन
तपः यज्ञा	- तपस्या रूप यज्ञ,	**च ज्ञान यज्ञाः**	- और ज्ञान यज्ञ
योग यज्ञाः	- योगरूप यज्ञ,	**ते तु कर्म-**	- वे तो कर्मके विशेष
तथा अपरे	- तथा दूसरे	**विसूचकाः**	सूचक हैं ॥ ५९ ॥

सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६० ॥

सत् कर्म सूचकः नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतः बुधैः श्रीमद्भागवत आलापः स तु गीतः शुक आदिभिः ॥ ६० ॥

नूनं सत्कर्म	- निश्चय सत्कर्मका.	**स तु शुक-**	- वह तो शुकदेवजी
सूचकः	- सूचक	**आदिभिः**	आदि द्वारा
बुधैः ज्ञानयज्ञः	- बुद्धिमानोंने ज्ञानयज्ञ	**गीतः**	- वर्णित
स्मृतः	- माना है	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवतकी
		आलापः	- कथा है ॥ ६० ॥

भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ।
व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥

भक्तिज्ञान विरागाणां तत् घोषेण बलं महत् व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेः भविष्यति ॥ ६१ ॥

तत् घोषेण	- उस (भागवत) की ध्वनिसे	**द्वयोः कष्टं**	- दोनों (ज्ञान-वैराग्य) का कष्ट
भक्तिज्ञान	- भक्ति, ज्ञान और	**व्रजिष्यति**	- चला जायगा,
विरागाणां	- वैराग्यको	**भक्तेः सुखं**	- भक्तिको सुख
महत् बलं	- महान् बल मिलेगा,	**भविष्यति**	- होगा ॥ ६१ ॥

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृका इव ॥ ६२ ॥

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवत ध्वनेः कलेः दोषा इमे सर्वे सिंह शब्दात् वृका इव ॥ ६२ ॥

कलेः इमे	- कलियुगके ये	**सिंह शब्दात्**	- सिंहकी गर्जनासे
सर्वे दोषा	- सब दोष	**वृका इव**	- भेड़ियोंके समान
श्रीमद्भागवत	- श्रीमद्भागवतकी	**हि प्रलयं**	- क्योंकि नष्ट
ध्वनेः	- ध्वनिसे	**गमिष्यन्ति**	- हो जायँगे ॥ ६२ ॥

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ।
प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥

ज्ञान वैराग्य संयुक्ता भक्तिः प्रेमरस आवहा प्रति गेहं प्रति जनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥

ततः ज्ञान-वैराग्य	- तब ज्ञान-वैराग्यके	**भक्तिः प्रतिगेहं**	- भक्ति प्रत्येक घरमें,
संयुक्ता	- साथ	**प्रति जनं**	- प्रत्येक व्यक्तिमें
प्रेमरस आवहा	- प्रेमरस प्रवाहिनी	**क्रीडां करिष्यति**	- क्रीड़ा करेगी ॥६३॥

नारद उवाच-

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥

वेद वेदान्त घोषैः च गीतापाठैः प्रबोधितं भक्तिज्ञान विरागाणां न उदतिष्ठत् त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥

वेद वेदान्त - वेद-वेदान्तके	**यदा भक्तिज्ञान** - जब भक्ति, ज्ञान,
घोषैः च - घोषसे तथा	**विरागाणां त्रिकं** - वैराग्यकी त्रयी
गीता पाठैः - गीताके पाठसे	**न उदतिष्ठत्** - नहीं उठी ॥ ६४ ॥
प्रबोधितं - जगाये जानेपर	

श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥

श्रीमद्भागवत आलापात् तत् कथं बोधं एष्यति तत् कथासु तु वेद अर्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥

तत्-श्रीमद्भागवत - तब श्रीमद्भागवतके	**तत्-कथासु तु** - उसकी कथामें भी तो
आलापात् - प्रवचनसे	**श्लोके श्लोके** - प्रत्येक शब्द और
कथं बोधं- - कैसे संज्ञा (होश)	**पदे पदे** - प्रत्येक पदमें
एष्यति में आवेगी,	**वेद अर्थः** - वेदका ही तात्पर्य है ॥ ६५ ॥

छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ।
विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६ ॥

छिन्दन्तु संशयं हि एनं भवन्तः अमोघ दर्शनाः विलम्बः न अत्र कर्तव्यः शरणागत वत्सलाः ॥ ६६ ॥

भवन्तः अमोघ-दर्शनाः - आप लोगोंका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता	**हि संशयं** - क्योंकि सन्देह है
शरणागत - शरणमें आयेपर	**एनं छिन्दन्तु** - इसे काट दीजिए
वत्सलाः - (आप लोग) स्नेह करने वाले हैं	**अत्र विलम्बः** - इस विषयमें देर
	न कर्तव्यः - नहीं करनी चाहिए ॥ ६६ ॥

कुमारा ऊचुः-

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः ॥ ६७ ॥

वेद उपनिषदां सारात् जाता भागवती कथा अति उत्तमा ततः भाति पृथक् भूता फल आकृतिः ॥ ६७ ॥

वेद उपनिषदां	- वेदों और उपनिषदोंके	**भागवती कथा**	- भागवत की कथा
सारात् जाता	- सारसे उत्पन्न	**ततः अति-**	- इसलिए अत्यन्त उत्तम
पृथक् भूता	- उनसे पृथक हुई	**उत्तमा**	
फल आकृतिः	- फल के समान	**भाति**	- शोभित है ॥ ६७ ॥

आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वाद्यते यथा ।
स भूयः संपृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८ ॥

आमूल अग्रं रसः तिष्ठन् आस्ते न स्वाद्यते यथा स भूयः सम्पृथक् भूतः फले विश्व मनोहरः ॥ ६८ ॥

आमूल अग्रं	-जड़से लेकर अगले (चोटी) भाग तक	**भूयः स**	- फिर वही (रस)
		सम्पृथक् भूतः	- भली प्रकार पृथक् होकर
रसः तिष्ठन् आस्ते	-(वृक्षमें) रस रहनेपर भी	**फले विश्व-**	- फल रूपमें विश्वको
यथा न स्वाद्यते	-जैसे स्वाद नहीं देता	**मनोहरः**	मनोहर होता है ॥६८॥

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ।
पृथग्भूतं हि तद्गव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९ ॥

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिः न स्वादाय उपकल्पते पृथक् भूतं हि तत् गव्यं देवानां रस वर्धनम् ॥ ६९ ॥

यथा दुग्धे	- जैसे दूधमें	**हि तत् गव्यं-**	- क्योंकि वही घी
स्थितं सर्पिः	- रहता हुआ भी घी	**पृथक् भूतं**	पृथक होकर
स्वादाय	- स्वाद लेनेमें	**देवानां**	- देवताओंका भी
न उपकल्पते	- नहीं आता	**रसवर्धनं**	- स्वाद बढ़ाने वाला होजाता है ॥ ६९ ॥

इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥

इक्षूणां अपि मध्य अन्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति पृथक् भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥

इक्षूणां अपि	- गन्ने में भी	**च सा पृथक्-**	- लेकिन वह पृथक
मध्य अन्तं	- बीचसे अन्ततक	**भूता मिष्टा**	होनेपर मीठी है,
शर्करा व्याप्य-	- शक्कर व्यापक	**तथा भागवती-**	- ऐसी ही भागवतकी
तिष्ठति	रहती है,	**कथा**	कथा है ॥ ७० ॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितं भक्तिज्ञान विरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥

इदं ब्रह्म सम्मितं	- यह वेदोंके समान	**विरागाणां**	- वैराग्यकी
भागवतं नाम	- भागवत नामक	**स्थापनाय**	- स्थापनाके लिए ही
पुराणं	- पुराण	**प्रकाशितं**	- प्रकट किया गया है ॥ ७१ ॥
भक्तिज्ञान	- भक्ति, ज्ञान,		

वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥

वेद वेदान्त सुस्नाते गीताया अपि कर्तरि परितापवति व्यासे मुह्यति अज्ञान सागरे ॥ ७२ ॥

वेद वेदान्त	- वेद, वेदान्तमें	**अज्ञान सागरे**	- अज्ञान-समुद्रमें
सुस्नाते	- भली प्रकार निमग्न,	**मुह्यति**	- मूर्छित होते,
गीताया अपि-कर्तरि	- गीताके भी निर्माता	**परितापवति**	- परितप्त होते
		व्यासे	- व्यासजीको ॥ ७२ ॥

तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ।
तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३ ॥

तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोक समन्वितं तदीय श्रवणात् सद्यः निर्बाधः बादरायणः ॥ ७३ ॥

त्वया तदा	- तुमने उस समय	**तदीय-श्रवणात् सद्यः**	- उसके श्रवणसे तत्काल
पुरा चतुःश्लोक	- पहिले चतुःश्लोकी	**बादरायणः-निर्बाधः**	- व्यासजी बाधा हीन (होगये) ॥ ७३ ॥
समन्वितं	- युक्त (भागवत)		
प्रोक्तं	- सुनायी,		

तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ।
श्रीमद्भागवतं श्राव्यं शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥

तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरः भवान् श्रीमद्भागवतं श्राव्यं शोक दुःख विनाशनम् ॥ ७४ ॥

ते तत्र	- तुम्हें उस (भागवत) के विषयमें	**शोक दुःख विनाशनं**	- शोक, दुःखको सर्वथा नष्ट करने वाला
विस्मयः केन	- आश्चर्य क्यों हुआ,	**श्रीमद्भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
यतः भवान्-प्रश्नकरः	- जिससे तुम पूछने लगे,	**श्राव्यं**	- सुनाना चाहिए ॥७४॥

नारद उवाच-

यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि
सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ।
निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः
प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥

यत् दर्शनं च विनिहन्ति अशुभानि सद्यः श्रेयः तनोति भवदुःखदव अर्दितानां निःशेष शेषमुख गीत कथा एक पानाः प्रेम प्रकाशकृतये शरणं गतः अस्मि ॥ ७५ ॥

भव दुःख	- संसारके दुःख	**शेष मुख गीत**	- भगवान शेषके मुखसे वर्णित
दव अर्दितानां	- दावानलसे रौंदे हुए लोगोंके	**एक कथा-**	- एकमात्र कथाका ही
अशुभानि	- पापोंको	**पानाः**	पान करने वाले (आप लोगों) की
यत् दर्शनं च	- जिनका दर्शन ही	**प्रेम प्रकाश**	- प्रेम (भक्ति) को प्रकाशित
निःशेष-	- सम्पूर्ण नष्ट कर	**कृतये**	- करनेके लिए (मैं)
विनिहन्ति	देता है और	**शरणं गतः-**	- शरणमें आया हूँ
सद्यः श्रेयः-	- तत्काल कल्याणका	**अस्मि**	॥ ७५ ॥
तनोति	विस्तार करता है,		

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥७६॥

भाग्य उदयेन बहुजन्म सम अर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषः यदा वै अज्ञान हेतु कृत मोह मद अन्धकार नाशं विधाय हि तदा उदयते विवेकः ॥ ७६ ॥

बहुजन्म - अनेक जन्मोंके
सम अर्जितेन - भली प्रकार उपार्जित (पुण्योंसे)
भाग्य उदयेन - भाग्योदय होनेपर ही
यदा हि पुरुषः - जब कि पुरुष
सत् संगमं - संत-समागम
लभते तदा वै - प्राप्त करता है, उसी समय
अज्ञान हेतु- अज्ञानके कारणसे
कृत उत्पन्न
मोह महा- - मोह रूपी घोर
अन्धकार अन्धकारका
नाशं विधाय - नाश करके
विवेकः उदयते - विवेक (रूप सूर्य) उदय होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच-

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

ज्ञान यज्ञं करिष्यामि शुक शास्त्र कथा उज्ज्वलं भक्ति ज्ञान विरागाणां स्थापन अर्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

भक्तिज्ञान	- भक्ति, ज्ञान,	**शुक शास्त्र-**	- शुकदेवजी के शास्त्रकी
विरागाणां	- वैराग्य की	**कथा**	कथासे
स्थापन अर्थं	- स्थापनाके लिए	**उज्ज्वलं ज्ञानयज्ञं**	- उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ
प्रयत्नतः	- प्रयत्न पूर्वक	**करिष्यामि**	- करूँगा ॥ १ ॥

कुत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ।
महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥

कुत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तत् वाच्यतां इह महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यः वेदपारगैः ॥ २ ॥

वेद पारगैः	- वेदोंके पारंगत आप लोगों को	**तत् स्थलं इह**	- वह स्थान यहीं
		वाच्यतां	- बतला दीजिए तथा
मया कुत्र	- मुझे कहां	**शुकशास्त्रस्य**	- शुकदेवजीके शास्त्रका
यज्ञः कार्यो	- यज्ञ करना चाहिए	**महिमा वक्तव्यः**	- माहात्म्य बतलाना चाहिए ॥ २ ॥

कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः ॥ ३ ॥

कियत्भिः दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा कः विधिः तत्र कर्तव्यः मम इदं ब्रुवतां इतः ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवती - श्रीमद्भागवतकी
कथा कियत्भिः - कथा कितने
दिवसैः श्राव्या - दिनोंमें सुनानी चाहिए ?
मम तत्र - मुझे उसमें
कः विधिः- - क्या विधि करनी चाहिए
कर्तव्यः
इतः इदं ब्रुवतां - इस प्रकार यह
बतलाइये ॥ ३ ॥

कुमारा ऊचुः-

शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ।
गंगाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४ ॥

शृणु नारद वक्ष्यामः विनम्राय विवेकिने गंगाद्वार समीपे तु तटं आनन्द नामकम् ॥ ४ ॥

नारद - नारदजी
विनम्राय - तुम विनम्र और
विवेकिने - विवेकवानको
वक्ष्यामः शृणु - बतलाते हैं, सुनो,
गंगाद्वार- - गंगाद्वार (हरिद्वार) के
समीपे तु समीप ही
आनन्द- - आनन्द नामक तट है
नामकं तटं ॥ ४ ॥

नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ।
नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥

नाना ऋषिगणैः जुष्टं देवसिद्ध निषेवितं नानातरुलताकीर्णं नव कोमल वालुकम् ॥ ५ ॥

देव सिद्ध - देवता और सिद्धोंसे
निषेवितं - भली प्रकार सेवन
किया गया,
नाना ऋषिगणैः - अनेक ऋषि-समूहोंसे
जुष्टं - युक्त,
नाना तरुलता - अनेक वृक्ष-लताओंसे
आकीर्णं - भरा हुआ
नव कोमल- - नवीन कोमल बालुका
वालुकं वाला ॥ ५ ॥

रम्यमेकान्तदेशस्थं हेमपद्मसुसौरभम् ।
यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥

रम्यं एकान्त देशस्थं हेमपद्म सुसौरभं यत् समीपस्थ जीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥

रम्यं	- रमणीक,	**यत् समीपस्थ**	- जिसके समीप रहने वाले
एकान्त देशस्थं	- एकान्त प्रदेशमें स्थित	**जीवानां चेतसि**	- जीवोंके चित्तमें (परस्पर)
हेमपद्म	- स्वर्ण कमलकी	**वैरं न स्थितं**	- शत्रुता नहीं है ॥ ६ ॥
सुसौरभं	- उत्तम सुगन्धि युक्त है,		

ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ।
अपूर्वरसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥

ज्ञानयज्ञः त्वया तत्र कर्तव्यः हि अप्रयत्नतः अपूर्व रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥

त्वया तत्र	- तुमको वहां	**कर्तव्यः**	- करना चाहिए
अप्रयत्नतः हि	- बिना (विशेष) प्रयत्नके ही	**च तत्र कथा**	- क्योंकि वहां कथा
ज्ञानयज्ञः	- ज्ञानयज्ञ	**अपूर्व रसरूप**	- अपूर्व रस स्वरूप
		भविष्यति	- होगी ॥ ७ ॥

पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ।
तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ॥ ८ ॥

पुरःस्थं निर्बलं च एव जराजीर्ण कलेवरं तत् द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिः तत्र आगमिष्यति ॥ ८ ॥

भक्तिः च - भक्ति भी
पुरःस्थं निर्बलं - अपने सामने निर्बल
च जराजीर्ण - तथा बुढ़ापेसे जीर्ण (क्षीण)
कलेवरं एव - शरीर वाले ही
तत् द्वयं च - उन दोनों (ज्ञान-वैराग्य) को
पुरस्कृत्य - आगे करके
तत्र आगमिष्यति - वहां आ जायगी ॥ ८ ॥

यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ।
कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥

यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्ति आदिकं व्रजेत् कथा शब्दं सम आकर्ण्य तत् त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥

यत्र भागवती-वार्ता - जहां भागवतकी कथा होती है
तत्र भक्ति-आदिकं - वहाँ भक्ति आदि
व्रजेत् - आ जाते हैं,
कथा शब्दं - कथाकी ध्वनि
समआकर्ण्य - भली प्रकार सुनकर
तत् त्रिकं - वे तीनों
तरुणायते - तरुण होजाते हैं ॥ ९ ॥

सूत उवाच-

एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ।
गंगातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥

एवं उक्त्वा कुमाराः ते नारदेन समं ततः गंगातटं सम आजग्मुः कथा पानाय सत्वराः ॥ १० ॥

एवं उक्त्वा - इस प्रकार कहकर
ते कुमाराः - वे (सनकादि) कुमार
नारदेन समं - नारदजीके साथ
कथा पानाय - कथामृत पीनेके लिए
सत्वराः ततः - शीघ्रतापूर्वक वहांसे
गंगा तटं - गंगा-किनारेके
सम आजग्मुः - समीप आगये ॥ १० ॥

यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ।
भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥

यदा याताः तटं ते तु तदा कोलाहलः अपि अभूत् भूः लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथा एव च ॥ ११ ॥

ते तु यदा	- वे लोग तो जब	**तथा एव-**	- इसी प्रकार
तटं याताः	- गंगा किनारे आये,	**ब्रह्मलोके च**	ब्रह्मलोकमें भी
तदा भूः लोके	- उस समय भूलोकमें,	**कोलाहलः अपि**	- कोलाहल भी
च देवलोके	- तथा देवलोकमें	**अभूत्**	- होने लगा ॥ ११ ॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥

श्रीभागवत पीयूष पानाय रस लम्पटाः धावन्तः अपि आययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतके	**वैष्णवाः**	- वैष्णव थे वे
पीयूष पानाय	- अमृतको पीनेके लिए	**सर्वे प्रथमं**	- सब पहिले ही
ये च रस-	- जो भी रसलोलुप	**धावन्तः अपि**	- दौड़ते हुए भी
लम्पटाः		**आययुः**	- आगये ॥ १२ ॥

भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो
मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो
मृकण्डुपुत्रात्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥

भृगुः, वसिष्ठः, च्यवनः, च गौतमः, मेधातिथिः, देवलः, देवरातः, रामः तथा (परशुराम) गाधिसुतः (विश्वामित्र) च शाकलः मृकण्डुपुत्र (मार्कण्डेय) अत्रिज (दत्तात्रेय) पिप्पलादाः ॥ १३ ॥१

---

१. ये केवल नाम हैं । जहां अर्थ आवश्यक है- कोष्ठक में दिया है ।

योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ।
सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥

योगेश्वरौ व्यास पराशरौ च छायाशुकः जाजलि जह्नुमुख्याः सर्वे अपि अमी मुनिगणाः सहपुत्र शिष्याः स्वस्त्रीभिः आययुः अति प्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥

योगेश्वरौ	- दोनों योगेश्वर (पुत्र-पिता)	**अमी मुनिगणाः**	- ये मुनिगण
व्यास च पराशरौ	- व्यास तथा पराशर,	**अति प्रणयेन-युक्ताः**	- अत्यन्त प्रेमपूर्वक पराशरौ
छायाशुकः	- छाया शुक,	**सह पुत्र-शिष्याः**	- अपने पुत्र एवं शिष्योंके साथ
जाजलि जह्नु मुख्याः सर्वे अपि	- जाजलि जह्नु प्रमुख सभी	**स्वस्त्रीभिः**	- अपनी पत्नियों सहित
		आययुः	- आगये ॥ १४ ॥

वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ।
दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाऽऽययुः ॥ १५ ॥

वेदान्तानि च वेदाः च मन्त्राः तन्त्राः समूर्तयः दशसप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथा आययुः ॥ १५ ॥

समूर्तयः	- मूर्तिमान होकर	**दशसप्त-पुराणानि**	- (भागवतके अतिरिक्त) सत्रहों पुराण
वेदान्तानि	- उपनिषत्	**तथा षट्-शास्त्राणि**	- तथा छहो दर्शनशास्त्र
च वेदाः	- तथा वेद,	**आययुः**	- आये ॥ १५ ॥
च मन्त्राः तन्त्राः	- एवं मन्त्र-तन्त्र,		

गंगाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ।
क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादि वनानि च ॥ १६ ॥

गंगाद्याः सरितः तत्र पुष्करादि सरांसि च क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डक आदि वनानि च ॥ १६ ॥

तत्र - वहां
गंगाद्याः - गंगा आदि
सरितः - नदियां
पुष्करादि सरांसि - पुष्कर आदि सरोवर
च क्षेत्राणि - तथा (कुरु) क्षेत्रादि तीर्थ,
च सर्वा दिशः - तथा सब दिशायें (दिक्पाल)
दण्डक आदि - दडुक आदि
वनानि च - वन (देवता) भी आये ॥ १६ ॥

नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वदानवाः ।
गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत् ॥ १७ ॥

नग आदयः ययुः तत्र देव गन्धर्व दानवाः गुरुत्वात् तत्र न आयातान् भृगुः सम्बोध्य च आनयत् ॥ १७ ॥

तत्र नग-आदयः - वहां पर्वत आदि,
देव गन्धर्व - देवता, गन्धर्व,
दानवाः ययुः - दानव आये,
गुरुत्वात् - अपने गौरवके कारण
न आयातान् - नहीं आये लोगोंको
भृगुः-सम्बोध्य च आनयत् - महर्षि भृगु समझाकर भी ले आये ॥ १७ ॥

दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ।
कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥

दीक्षिता नारदेन अथ दत्तं आसनं उत्तमं कुमारा वन्दिताः सर्वैः निषेदुः कृष्ण तत्पराः ॥ १८ ॥

अथ दीक्षिता - फिर दीक्षा ग्रहण किये
नारदेन - नारदजी द्वारा
दत्तं उत्तमं-आसनं - दिये उत्तम आसनपर
सर्वैः वन्दिताः - सबके द्वारा वन्दित होकर
कृष्ण तत्पराः - श्रीकृष्ण परायण
कुमारा निषेदुः - (सनकादि) कुमार बैठे ॥ १८ ॥

वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ।
मुखभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥

वैष्णवाः च विरक्ताः च न्यासिनः ब्रह्मचारिणः मुखभागे स्थिताः ते च तत् अग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥

वैष्णवाः च	- वैष्णव तथा	**ते च मुखभागे**	- ये सभी प्रमुख
विरक्ताः च	- विरक्त और	**स्थिताः**	भागमें बैठे
न्यासिनः-	- सन्यासी, ब्रह्मचारी	**तत् अग्रे**	- उनके आगे (मुख्य श्रोता)
ब्रह्मचारिणः		**नारदः स्थितः**	- नारदजी बैठे ॥ १९ ॥

एक भागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ।
वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २० ॥

एक भागे ऋषिगणाः तत् अन्यत्र दिवौकसः वेद उपनिषदः अन्यत्र तीर्थानि अन्यत्र स्त्रियः अन्यतः ॥ २० ॥

एक भागे-	- एक भागमें ऋषिगण,	**वेद उपनिषदः-**	- वेद-उपनिषदादि
ऋषि गणाः		**अन्यत्र**	एक ओर
तत् अन्यत्र-	- उनसे भिन्न भागमें	**तीर्थानि अन्यत्र**	- तीर्थ पृथक
दिवौकसः	देवता,	**स्त्रियः अन्यतः**	- तथा स्त्रियां भिन्न भागमें (बैठीं) ॥२०॥

जयशब्दो नमःशब्दः शंखशब्दस्तथैव च ।
चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥

जयशब्दः नमः शब्दः शंखशब्दः तथा एव च चूर्ण लाजा प्रसूनानां निक्षेपः सुमहान् अभूत् ॥ २१ ॥

जयशब्दः	- जय जयकार	**चूर्ण**	- अबीरादि चूर्ण,
नमः शब्दः	- नमस्कार ध्वनि	**लाजा प्रसूनानां**	- लाजा तथा पुष्पोंकी
तथा एव च	- इस प्रकार ही	**सुमहान् निक्षेपः**	- बहुत बड़ी वर्षा
शंखशब्दः	- शंख ध्वनि हुई,	**अभूत्**	- हुई ॥ २१ ॥

विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ।
कल्पवृक्षप्रसूनैस्तान् सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥

विमानानि समारुह्य कियन्तः देवनायकाः कल्पवृक्ष प्रसूनैः तान् सर्वान् तत्र सम आकिरन् ॥ २२ ॥

कियन्तः	- कितने ही	**कल्पवृक्ष प्रसूनैः**	- कल्पवृक्षके पुष्पोंकी
देवनायकाः	- देवनायक लोग	**तत्र तान् सर्वान्**	- वहां उन सब पर
विमानानि	- विमानोंपर	**सम आकिरन्**	- चारों ओर वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥[1]
समारुह्य	- ठीक बैठकर		

सूत उवाच-

एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ।
माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥

एवं तेषु एक चित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च माहात्म्यं ऊचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥

एवं तेषु	- इस प्रकार (पूजा होजानेपर) उनके	**श्रीमद्भागवतस्य**	- श्रीमद्भागवतका
एक चित्तेषु	- एकाग्र चित्त होजानेपर	**स्पष्टं-माहात्म्यं च**	- स्पष्ट माहात्म्य भी
महात्मने-नारदाय	- महात्मा नारदसे	**ऊचिरे**	- वर्णन करने लगे ॥२३॥

१. गीताप्रेसकी प्रतिमें इसके आगे 'सूत उवाच' है; किन्तु श्लोक १० से 'सूत उवाच' ही चल रहा है, अतः यहां वह अनावश्यक है ।

कुमारा ऊचुः-

अथ ते वर्ण्यतेऽस्माभिर्महिमा शुकशास्त्रजः ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ।। २४ ।।

अथ ते वर्ण्यते अस्माभिः महिमा शुकशास्त्रजः यस्य श्रवण मात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ।। २४ ।।

अथ अस्माभिः	- अब हम लोगों द्वारा	**यस्य श्रवण-**	- जिसको सुनने मात्रसे
शुक शास्त्रजः	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**मात्रेण**	
महिमा ते	- महिमा तुमसे	**मुक्तिः**	- मुक्ति
वर्ण्यते	- वर्णनकी जा रही है,	**करतले स्थिता**	- हाथमें आजाती है ।। २४ ।।

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ।। २५ ।।

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा यस्याः श्रवण मात्रेण हरिः चित्तं समाश्रयेत् ।। २५ ।।

सदा सेव्या	- सदा सेवनीय है,	**यस्याः श्रवण-**	- जिसके श्रवण मात्रसे
श्रीमद्भागवती-	- श्रीमद्भागवतकी कथा	**मात्रेण**	
कथा		**हरिः चित्तं**	- श्रीहरि चित्तमें
सदा सेव्या	- सदा सेवनीय है,	**सम आश्रयेत्**	- भली प्रकार आश्रय ले लेते हैं ।। २५ ।।

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः ।
परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ।। २६ ।।

ग्रन्थः अष्टादश साहस्रः द्वादश स्कन्ध सम्मितः परीक्षित शुक सम्वादः शृणु भागवतं च तत् ।। २६ ।।

द्वादश स्कन्ध	- बारह स्कन्धोंमें	**परीक्षित-**	- परीक्षित एवं शुकदेवजीके
सम्मितः	- बँटा हुआ,	**शुक सम्वादः**	सम्वाद रूपका
अष्टादश साहस्रः	- अठारह सहस्र श्लोकोंका,	**ग्रन्थः-**	- ग्रन्थ ही भागवत है,
		भागवतं च	
		तत् शृणु	- उसे श्रवण करो ।।२६।।

तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ।
यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ।। २७ ।।

तावत् संसार चक्रे अस्मिन् भ्रमते अज्ञानतः पुमान् यावत् कर्णगता न अस्ति शुक शास्त्र कथा क्षणम् ।। २७ ।।

पुमान् तावत्	- पुरुष तब तक	**यावत् क्षणं**	- जब तक क्षण
अज्ञानतः	- अज्ञानवश		भरके लिए भी
अस्मिन् संसारचक्रे	- इस संसार-चक्रमें	**शुक शास्त्र-**	- शुकदेवजीके शास्त्रकी
भ्रमते	- भटकता है	**कथा**	कथा
		कर्णगता-	- कानमें गयी नहीं है
		न अस्ति	।। २७ ।।

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ।। २८ ।।

किं श्रुतैः बहुभिः शास्त्रैः पुराणैः च भ्रम आवहैः एकं भागवतं शास्त्रं मुक्ति दानेन गर्जति ।। २८ ।।

भ्रम आवहैः	- भ्रममें डालने वाले	**एकं भागवतं-**	- अकेला भागवत
बहुभिः शास्त्रैः	- बहुतसे शास्त्रोंके	**शास्त्रं**	शास्त्र
च पुराणैः	- तथा पुराणोंके	**मुक्ति दानेन**	- मुक्ति देनेके लिए
श्रुतैः किं	- श्रवणसे क्या लाभ,	**गर्जति**	- गर्जना कर रहा है
			।। २८ ।।

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ।। २९ ।।

कथा भागवतस्य अपि नित्यं भवति यत् गृहे तत् गृहं तीर्थ रूपं हि वसतां पाप नाशनम् ।। २९ ।।

यत् गृहे	- जिस घरमें	**तत गृहं**	- वह घर
भागवतस्य	- भागवतकी	**वसतां-**	- निवास करने वालोंका
कथा नित्यं अपि-	- कथा नित्य भी	**पापनाशनं**	पापनाशक
भवति	होती है	**तीर्थ रूपं हि**	- तीर्थ स्वरूप ही है
			।। २९ ।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। ३० ।।

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च शुकशास्त्र कथायाः च कलां न अर्हन्ति षोडशीम् ।। ३० ।।

सहस्राणि-	- सहस्रों अश्वमेधयज्ञ	**शुकशास्त्र**	- शुकदेवजीके शास्त्रकी
अश्वमेध		**कथायाः च**	- कथाकी तो
च शतानि	- तथा सैकड़ों	**षोडशीं कलां**	- सोलहों कलाकी (समता)
वाजपेय	- वाजपेय यज्ञ	**न अर्हन्ति**	- नहीं पा सकते ।।३०।।

तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ।
यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ।। ३१ ।।

तावत् पापानि देहे अस्मिन् निवसन्ति तपोधनाः यावत् न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ।। ३१ ।।

तपोधनाः	- तपस्याके धनवाली (तपस्वियों)	**सम्यक् न-श्रूयते**	- विधिपूर्वक श्रवण नहीं किया जाता
नरैः यावत्	- मनुष्यों द्वारा जब तक	**तावत्-अस्मिन् देहे**	- तब तक इस शरीरमें
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवतको	**पापानि-निवसन्ति**	- पाप निवास करते हैं ॥ ३१ ॥

न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ।
शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥

न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकं शुकशास्त्र कथायाः च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥

शुकशास्त्र	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**काशी पुष्करं**	- काशी, पुष्कर क्षेत्र,
कथायाः	- कथाके	**प्रयागकं च**	- प्रयाग भी
फलेन	- फलसे	**समतां न-नयेत्**	- समता नहीं पा सकते ॥ ३२ ॥
न गंगा न गया	- न गंगा, न गया,		

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥

श्लोक अर्धं श्लोक पादं वा नित्यं भागवत उद्भवं पठस्व स्वमुखेन एव यदि इच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥

यदि परां गतिं	- यदि परमगति	**वा श्लोक-पादं**	- अथवा चौथायी श्लोक ही
इच्छसि	- चाहते हो तो	**स्व मुखेन एव**	- अपने मुखसे ही
भागवत उद्भवं	- भागवतसे निकला	**नित्यं पठस्व**	- नित्य पढ़ो ॥ ३३ ॥
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक		

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ।
त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥

वेद आदिः वेदमाता च पौरुषं सूक्तं एव च त्रयी भागवतं च एव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥

वेद आदिः	- वेदकी आदि (प्रणव)	**त्रयी भागवतं**	- त्रिकाण्डात्मक वेद, भागवत
च वेदमाता	- तथा वेदमाता (गायत्री)	**एव च-**	- भी तथा द्वादशाक्षर
च पौरुषं-	- एवं पुरुष सूक्त भी,	**द्वादशाक्षर**	
सूक्तं एव		**एव च**	- विद्या (मन्त्र) ॥ ३४ ॥

द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ।
ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥

द्वादश आत्मा प्रयागः च कालः सम्वत्सर आत्मकः ब्राह्मणाः च अग्निहोत्रः च सुरभिः द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥

द्वादश आत्मा	- द्वादश स्वरूप सूर्य,	**च ब्राह्मणाः**	- एवं ब्राह्मण,
च प्रयागः	- तथा प्रयागराज,	**अग्निहोत्रं**	- अग्निहोत्र,
सम्वत्सर-	- सम्वत्सर स्वरूप	**च सुरभिः**	- और गायें
आत्मकः		**तथा द्वादशी**	- तथा द्वादशी तिथि
कालः	- काल,		॥ ३५ ॥

तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ।
एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥ ३६ ॥

तुलसी च वसन्तः च पुरुषोत्तम एव च एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैः न पृथक् भाव इष्यते ॥ ३६ ॥

च तुलसी	- और तुलसी,	**प्राज्ञैः एतेषां**	- ज्ञानी लोग इनमें
च वसन्तः	- तथा वसन्त ऋतु	**पृथक् भाव**	- पृथकताका भाव
च पुरुषोत्तम-	- एवं भगवान	**न इष्यते**	- नहीं मानते ॥ ३६ ॥
एव	पुरुषोत्तममें भी		

यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ।
जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥

यः च भागवतं शास्त्रं वाचयेत् अर्थतः अनिशं जन्म कोटिकृतं पापं नश्यते न अत्र संशयः ॥ ३७ ॥

यः च	- जो भी पुरुष	**कोटिजन्म**	- (उसके) करोड़ों जन्मोंके
भागवतं शास्त्रं	- भागवत शास्त्रका	**कृतं पापं-**	- किये पाप नष्ट
अर्थतः अनिशं	- अर्थ सहित अहर्निश	**नश्यते**	होजाते हैं
वाचयेत्	- पाठ करता है	**अत्र-संशयः न**	- इसमें सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ।
नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥

श्लोक अर्धं श्लोकपादं वा पठेत् भागवतं च यः नित्यं पुण्यं अवाप्नोति राजसूय अश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥

यः भागवतं	- जो भागवतका	**राजसूय**	- राजसूय यज्ञ एवं
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक	**अश्वमेधयोः**	- अश्वमेध यज्ञका
वा श्लोकपादं	- अथवा चौथाई श्लोक	**पुण्यं-**	- पुण्य प्राप्त करता है
नित्यं पठेत्	- प्रतिदिन पढ़ता है (वह)	**अवाप्नोति**	॥ ३८ ॥

उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ।
तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥

उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरि चिन्तनं तुलसी पोषणं च एव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥

नित्यं-	- प्रतिदिन भागवत	**च तुलसी-**	- और तुलसी का
भागवतं उक्तं	पाठ करना,	**पोषणं एव**	पोषण भी,
च हरि-	- एवं श्रीहरिका	**धेनूनां सेवनं**	- गायोंकी सेवा करना,
चिन्तनं कृतं	चिन्तन करना,	**समं**	- ये समान हैं ॥ ३९ ॥

अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ।
प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥

अन्त काले तु येन एव श्रूयते शुक शास्त्र वाक् प्रीत्या तस्य एव वैकुण्ठं गोविन्दः अपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥

येन एव	- जिसके द्वारा भी	**प्रीत्या-**	- प्रसन्न होकर उसीको
अन्तकाले तु	- मरते समयमें तो	**तस्य एव**	
शुक शास्त्र-	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**गोविन्दः अपि**	- गोविन्द भी
वाक्	वाणी	**वैकुण्ठं-**	- वैकुण्ठ प्रदान
श्रूयते	- सुनी जाती है	**प्रयच्छति**	करते हैं ॥ ४० ॥

हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ।
कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

हेमसिंह युतं च एतत् वैष्णवाय ददाति च कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमान् लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

हेमसिंह युतं च	- स्वर्णके बने सिंहके साथ ही	**स पुमान्**	- वह पुरुष
		कृष्णेन सह	- श्रीकृष्णके साथ
एतत्	- इस (पुराण) को	**ध्रुवं-**	- निश्चित सायुज्य पाता है
वैष्णवाय	- वैष्णव को	**सायुज्यं लभते**	॥ ४१ ॥
ददाति च	- देकर तो		

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ।
चाण्डालवच्च खरवद् बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥

आजन्म मात्रं अपि येन शठेन किञ्चित् चित्तं विधाय शुकशास्त्र कथा न पीता चाण्डालवत् च खरवत् बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननी जनि दुःखभाजा ॥ ४२ ॥

आजन्म मात्रं-अपि	- जीवन पर्यन्त भी	**तेन-चाण्डालवत्**	- उसने चाण्डालके समान
येन शठेन	- जिस शठने	**च खरवत्**	- तथा गधेके समान
किञ्चित्	- तनिक	**स्वजन्म**	- अपना जन्म
चित्तं विधाय	- मन करके	**मिथ्या नीतं**	- झूठे (व्यर्थ) व्यतीत किया,
शुक शास्त्र-कथा	- शुकदेवजीके शास्त्रकी कथाका	**जननी जनि**	- (उसे) जन्म देकर माता
पीता न	- पान नहीं किया	**दुःख भाजा**	- दुःख भागी ही हुई ॥ ४३ ॥

जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ।
धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः ॥ ४३ ॥

जीवत् शवः निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथा वचनं न किञ्चित् धिक् तं नरं पशु समं भुविभार रूपं एवं वदन्ति दिवि देव समाज मुख्याः ॥ ४३ ॥

स पापकर्मा तु	- वह पाप करने वाला तो	**भुवि भार रूपं**	- 'पृथ्वीपर भार स्वरूप
जीवत् शवः	- जीवित मुर्दा	**तं नरं धिक्**	- उस मनुष्यको धिक्कार है'
निगदितः	- कहा गया है	**एवं दिवि**	- इस प्रकार स्वर्गमें
येन शुककथा	- जिसने शुकदेवजीकी कथाके	**देव समाज-मुख्याः**	- देव समाजके प्रमुख
वचनं किञ्चित्	- वचनोंको कुछ भी	**वदन्ति**	- कहते हैं ॥ ४३ ॥
न श्रुतं	- नहीं सुना,		

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ।
कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥

दुर्लभा एव कथा लोके श्रीमद्भागवत उद्भवा कोटि जन्म समुत्थेन पुण्येन एव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत	- श्रीमद्भागवतसे	**कोटि जन्म**	- करोड़ों जन्मोंके
उद्भवा कथा	- उत्पन्न होने वाली कथा	**पुण्येन एव**	- पुण्योंके
लोके दुर्लभा-	- संसारमें दुर्लभ ही है,	**समुत्थेन तु**	- उदय होनेपर ही
एव		**लभ्यते**	- प्राप्त होती है ॥४४॥

तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ।
दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥

तेन योग निधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः दिनानां नियमः न अस्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥

तेन धीमन्	- इससे बुद्धिमान !	**दिनानां नियमः**	- दिनोंका (कोई) नियम (बन्धन)
योगनिधे	- योगनिधि नारदजी !	**न अस्ति**	- नहीं है
सा प्रयत्नतः	- वह प्रयत्नपूर्वक	**सर्वदा श्रवणं**	- सर्वदा श्रवण करना
श्रोतव्या	- सुनने योग्य है,	**मतं**	- उचित माना गया है ॥ ४५ ॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ।
अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्रशुकाज्ञया ॥ ४६ ॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतं अशक्यत्वात् कलौ बोध्यः विशेषः अत्र शुक आज्ञया ॥ ४६ ॥

सत्येन	- सत्य बोलते हुए,	**कलौ-**	- कलियुगमें यह सम्भव
ब्रह्मचर्येण	- ब्रह्मचर्य पालन करते	**अशक्यत्वात्**	होनेसे
सर्वदा श्रवणं	- सर्वदा श्रवण करना	**अत्र शुक-**	- इस विषयमें शुकदेवजीकी
मतं	- उचित है	**आज्ञया**	आज्ञासे
		बोध्यः विशेषः	- (श्रवण करानेकी) विशेष विधि है ॥ ४६ ॥

मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ।
दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥

मनः वृत्ति जयः च एव नियम आचरणं तथा दीक्षां कर्तुं अशक्यत्वात् सप्ताह श्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥

मनः वृत्ति	- मनकी वृत्तियोंको	**च दीक्षा कर्तुं**	- भी दीक्षा (नियम) लेना
जयः एव	- जीतनेकी ही	**अशक्यत्वात्**	- (दीर्घकाल तक) सम्भव न होनेसे
तथा नियम-	- तथा नियमोंके	**सप्ताह श्रवणं**	- सप्ताह (भरमें) श्रवण करना
आचरणं	पालनकी	**मतं**	- उचित है ॥ ४७ ॥

श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ।
तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥

श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावत् हि यत् फलं तत् फलं शुक देवेन सप्ताह श्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥

हि श्रद्धातः-	- क्योंकि श्रद्धापूर्वक	**शुक देवेन**	- शुकदेवजीने
नित्यं	सर्वदा	**तत् फलं**	- वह फल
तावत् माघे	- अथवा माघमासमें	**सप्ताह श्रवणे**	- सप्ताह-श्रवणका
श्रवणे यत् फलं	- श्रवण करनेका जो फल है	**कृतम्**	- (निश्चित) कर दिया है ॥ ४८ ॥

मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥

मनसः च अजयात् रोगात् पुंसां च एव आयुषः क्षयात् कलेः दोष बहुत्वात् च सप्ताह श्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥

मनसः अजयात्	- मनजीता न जानेसे	**च कलेः-**	- एवं कलियुगमें दोषोंकी
च रोगात्	- तथा रोगोंके कारण,	**दोष बहुत्वात्**	बहुतायत
च पुंसां आयुषः	- और मनुष्योंकी आयु	**सप्ताह श्रवणं**	- सप्ताह-श्रवण
क्षयात् एव	- क्षीण होनेसे भी	**मतं**	- उचित है ॥ ४९ ॥

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥

यत् फलं न अस्ति तपसा न योगेन समाधिना अनायासेन तत् सर्वं सप्ताह श्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥

यत् फलं-	- जो फल तपस्याका	**अनायासेन**	- बिना परिश्रमके ही
तपसा न	नहीं,	**तत् सर्वं**	- वह सब
योगेन समाधिना	- योग या समाधिका	**सप्ताह-**	- सप्ताह-श्रवणसे (मनुष्य)
न अस्ति	- नहीं है	**श्रवणे लभेत्**	पा लेता है ॥ ५० ॥

यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ।
तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥

यज्ञात् गर्जति सप्ताहः सप्ताहः गर्जति व्रतात् तपसः गर्जति प्रोच्चैः तीर्थात् नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥

सप्ताहः	- सप्ताह (श्रवण)	**तपसः प्रोच्चैः**	- तपस्यासे उच्च स्वरमें
यज्ञात् गर्जति	- यज्ञसे गर्जना करता (बढ़कर) है	**गर्जति**	- गर्जना करता है,
		हि तीर्थात्-	- क्योंकि तीर्थोंसे तो सदा
सप्ताहः व्रतात्	- सप्ताह व्रतोंसे	**नित्यं**	
गर्जति	- गर्जना करता है,	**गर्जति**	- गर्जना करता है ॥५१॥

योगाद् गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ।
किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥

योगात् गर्जति सप्ताहः ध्यानात् ज्ञानात् च गर्जति किं ब्रूमः गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥

सप्ताहः	- सप्ताह (श्रवण)	**रे रे तस्य-**	- अरे, अरे, उसके
योगात् गर्जति	- योगको ललकारता है,	**गर्जनं**	ललकारनेका
ध्यानात् च-	- ध्यान तथा ज्ञानको	**किं ब्रूमः**	- क्या वर्णन करें,
ज्ञानात्		**गर्जति गर्जति**	- (वह) सब (साधनों) को
गर्जति	- ललकारता है		ललकारता है ॥ ५२ ॥

शौनक उवाच-

साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं
ज्ञानादिधर्मान् विगणय्य साम्प्रतम् ।
निःश्रेयसे भागवतं पुराणं
जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३ ॥

स आश्चर्यं एतत् कथितं कथानकं ज्ञान आदि धर्मान् विगणय्य साम्प्रतं निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतः योगवित् आदि सूचकम् ॥ ५३ ॥

एतत् स-	- यह आश्चर्य युक्त	**साम्प्रतं**	- इस समय
आश्चर्यं		**ज्ञान आदि-**	- ज्ञान आदि धर्मोंकी
कथानकं कथितं	- कथानक (आपने) कहा	**धर्मान्**	
योगवित् आदि	- योगवेत्ता (ब्रह्मा) के	**विगणय्य**	- अवहेलना करने वाला
	आदि कारण	**भागवतं पुराणं**	- यह श्रीमद्भागवत पुराण
	(नारायण) का	**कुतः जातं**	- कहांसे उत्पन्न हुआ
सूचकं	- सूचक (निर्देशक),		॥ ५३ ॥

सूत उवाच-

यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ।
एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

यदा कृष्णः धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुं उद्यतः एकादशं परिश्रुत्य अपि उद्धवः वाक्यं अब्रवीत् ॥ ५४ ॥

यदा कृष्णः	- जब श्री कृष्ण	**एकादशं**	- एकादश स्कन्धका (उपदेश)
धरां त्यक्त्वा	- पृथ्वीको त्यागकर	**परिश्रुत्य अपि**	- पूरा सुनकर भी
स्वपदं गन्तुं	- अपने धाम जाने को	**उद्धवः-**	- उद्धव यह बात बोले
उद्यतः	- उद्यत हुए (तब)	**वाक्यं अब्रवीत्**	॥ ५४ ॥

उद्धव उवाच-

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ।
मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५ ॥

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्त कार्यं विधाय च मत् चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखं आवह ॥ ५५ ॥

गोविन्द	- गोविन्द !	**मत् चित्ते**	- मेरे चित्तमें
त्वं तु भक्तकार्यं	- आप तो भक्तोंका काम	**महती चिन्ता**	- महान चिन्ता है
विधाय च	- सम्पन्न करके ही	**तां श्रुत्वा**	- उसे सुनकर (मुझे)
यास्यसि	- चले जाओगे, पर	**सुखं आवह**	- सुखी कीजिए ॥ ५५ ॥

आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ।
तत्संगेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥

आगतः अयं कलिः घोरः भविष्यन्ति पुनः खलाः तत् संगेन एव सन्तः अपि गमिष्यन्ति उग्रतां यदा ॥ ५६ ॥

अयं घोरः- - यह भयानक कलियुग	**तत् संगेन एव** - उनके साथ से ही
कलिः	**यदा सन्तः अपि** - जब सत्पुरुष भी
आगतः - आगया है,	**उग्रतां गमिष्यन्ति** - उग्र (स्वभाव) को
पुनः खलाः- - फिर दुष्ट उत्पन्न होंगे,	प्राप्त हो जायंगे
भविष्यन्ति	॥ ५६ ॥

तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ।
अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥

तदा भारवती भूमिः गोरूपा इयं कं आश्रयेत् अन्यः न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥

तदा इयं गोरूपा - तब यह गौरूप धारिणी	**कमल लोचन** - कमल लोचन !
भूमिः भारवती - भूमि भारवाली होनेपर	**त्वत्तः अन्यः** - आपसे भिन्न
कं आश्रयेत् - किसका आश्रय लेगी,	**त्राता न-** - (दूसरा) रक्षक दिखायी
	दृश्यते नहीं पड़ता ॥ ५७ ॥

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ।
भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज भक्त अर्थं सगुणः जातः निराकारः अपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

भक्त वत्सल - भक्तवत्सल !	**भक्त अर्थं** - भक्तोंके लिए ही
अतः सत्सु - अतएव सत्पुरुषोंपर	(तो आप)
दयां कृत्वा - दया करके	**निराकारः** - निराकार
मा व्रज - मत जाओ,	**चिन्मयः अपि** - ज्ञानस्वरूप होनेपर भी
	सगुणः जातः - सगुण होगये हैं ॥५८॥

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ।
निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९ ॥

त्वत् वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले निर्गुण उपासने कष्टं अतः किञ्चित् विचारय ।। ५९ ।।

त्वत् वियोगेन	- आपके वियोगमें	**कष्टं**	- (बहुत) कष्ट है,
ते भक्ताः भूतले	- आपके भक्त पृथ्वीपर	**अतः किञ्चित्**	- अतः कुछ तो
कथं स्थास्यन्ति	- कैसे ठहरेंगे,	**विचारय**	- विचार कीजिए ।।५९।।
निर्गुण उपासने	- (आपके) निर्गुण स्वरूपकी उपासनामें		

सूत उवाच-

इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ।
भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ।। ६० ।।

इति उद्धव वचः श्रुत्वा प्रभासे अचिन्तयत् हरिः भक्त अवलम्बन अर्थाय किं विधेयं मया इति च ।। ६० ।।

इति उद्धव	- इस प्रकार उद्धवकी	**भक्त अवलम्बन**	- 'भक्तोंके सहारेके
वचः श्रुत्वा	- बात सुनकर	**अर्थाय मया**	- लिए मुझे
प्रभासे हरिः	- प्रभासमें श्रीहरिने	**किं विधेयं**	- क्या करना चाहिए'
इति च-अचिन्तयत्	- इस प्रकारसे ही सोचा		।। ६० ।।

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।। ६१ ।।

स्वकीयं यत् भवेत् तेजः तत् च भागवते अदधात् तिरोधाय प्रविष्टः अयं श्रीमद्भागवत अर्णवम् ।। ६१ ।।

यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यत् स्वकीयं - जो अपना
तेजः भवेत् - तेज था
तत् च भागवते - उसे तो भागवतमें
अदधात् - स्थापित कर दिया ।
तिरोधाय अयं - (इस प्रकार) तिरोहित होकर ये (भगवान)
श्रीमद्भागवत - श्रीभागवत रूपी
अर्णवं प्रविष्टः - समुद्रमें प्रविष्ट हैं ॥ ६१ ॥

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ६२ ॥

तेन इयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः सेवनात् श्रवणात् पाठात् दर्शनात् पापनाशिनी ॥ ६२ ॥

तेन इयं - इसलिए यह (भागवत)
सेवनात् - सेवा करनेसे,
श्रवणात् - श्रवण करनेसे,
पाठात् - पाठ करनेसे,
दर्शनात् - दर्शन करनेसे
पापनाशिनी - पाप नष्ट करने वाली
हरेः- - श्रीहरिकी वाणीमय मूर्ति
वाङ्मयी मूर्तिः
प्रत्यक्षा वर्तते - प्रत्यक्ष विद्यमान है ॥ ६२ ॥

सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ।
साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥

सप्ताह श्रवणं तेन सर्वेभ्यः अपि अधिकं कृतं साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मः अयं ईरितः ॥ ६३ ॥

तेन सप्ताह- - इसी से सप्ताह श्रवण
श्रवणं
साधनानि - (दूसरे) साधनोंकी
तिरस्कृत्य - उपेक्षा करके
सर्वेभ्यः अपि - सबसे ही
अधिकं कृतं - अधिक किया गया है
अयं कलौ धर्मः - यह कलियुगका धर्म
ईरितः - कहा गया है ॥ ६३ ॥

दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ।
कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६४ ॥

दुःख दारिद्र्य दौर्भाग्य पाप प्रक्षालनाय च काम क्रोध जय अर्थं हि कलौ धर्मः अयं ईरितः ॥ ६४ ॥

दुःख दारिद्र्य	- दुःख, दरिद्रता,	**जय अर्थं हि**	- जीतनेके लिए भी
दौर्भाग्य च	- दुर्भाग्य	**अयं कलौ-**	- इसे कलियुगमें धर्म
पाप प्रक्षालनाय	- पापोंको धो देनेके लिए	**धर्मः**	
च काम क्रोध	- तथा काम, क्रोधको	**ईरितः**	- कहा गया है ॥ ६४ ॥

अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
कथं त्याज्या भवेत्पुम्भिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥

अन्यथा वैष्णवी माया देवैः अपि सुदुस्त्यजा कथं त्याज्या भवेत् पुम्भिः सप्ताहः अतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥

अन्यथा देवैः-	- अन्यथा देवताओंके	**पुम्भिः**	- मनुष्यके लिए
अपि	द्वारा भी	**कथं-**	- कैसे त्यागने योग्य होगी
सुदुस्त्यजा	- त्यागनेमें अत्यन्त कठिन	**त्याज्या भवेत्**	
वैष्णवी माया	- भगवान विष्णुकी माया	**अतः सप्ताहः**	- इसलिए सप्ताह
		प्रकीर्तितः	- श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ६५ ॥[1]

सूत उवाच-

एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ।
आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥

एवं नगाह श्रवणः उरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायां आश्चर्यं एकं सम् अभूत् तदानीं तत् उच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥[2]

---

१. नग - कुलपर्वत सात माने जाते हैं, अतः नग - सप्त ।

२. गीताप्रेस की प्रतिमें इसके आगे सूत उवाच है; किन्तु श्लोक ६० से 'सूत उवाच' ही चल रहा है, अतः यहाँ अनावश्यक है ।

एवं नग-	- इस प्रकार सप्ताह श्रवण	**आश्चर्य-**	- आश्चर्य सबके
आह श्रवणः		**समभूत्**	सामने हुआ
उरुधर्मे	- रूप महान धर्मको	**तत् उच्यते**	- वह कहा जारहा है
ऋषिभिः	- ब्रह्मर्षि शुकदेवजी द्वारा	**शौनक त्वम्**	- शौनक जी ! तुम
प्रकाश्यमाने	- प्रगट किये जानेके	**संशृणु**	- (उसे) सावधान होकर
तदानीं	- उस समय ही		सुनो ॥ ६६ ॥
सभायां एकं	- सभामें एक		

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥ ६७ ॥

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेम एक रूपा सहसा आविः आसीत् श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथ इति नामानि मुहुः वदन्ती ॥ ६७ ॥

तौ तरुणौ	- उन (ज्ञान-वैराग्य) तरुण	**हरे मुरारे**	- हरे, मुरारे,
सुतौ गृहीत्वा	- पुत्रोंको साथ लेकर	**नाथ**	- नाथ,
प्रेम एक रूपा	- एक मात्र प्रेम स्वरूपा	**इति नामानि**	- इस प्रकारके भगवन्नामोंको
भक्तिः	- भक्ति	**मुहुः वदन्ती**	- बार-बार बोलती हुई
श्रीकृष्ण गोविन्द	- श्रीकृष्ण, गोविन्द,	**सहसा-**	- अचानक प्रकट होगयी
		आविः आसीत्	॥ ६७ ॥

तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ।
कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्ये मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥ ६८ ॥

तां च आगतां भागवत अर्थ भूषां सुचारु वेषां ददृशुः सदस्याः कथं प्रविष्टा कथं आगता इयं मध्ये मुनीनां इति तर्क यन्तः ॥ ६८ ॥

तां च - उसको तो
भागवत- - भागवतके अर्थका
अर्थ भूषां आभूषण पहिने
सुचारुवेषां - अत्यन्त सुन्दरवेश वालीको
आगतां - आयी हुई
सदस्याः ददृशुः - सदस्योंने देखा,
मुनीनां मध्ये - (तब) मुनियोंके बीचमें
इति तर्क यन्तः - इस प्रकार तर्क होने लगा
इयं कथं- - 'यह कैसे प्रविष्ट
प्रविष्टा हुई ?
कथं आगता - कैसे आगयी ?' ॥६८॥

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९ ॥

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथा अर्थतः निष्पतिता अधुना इयं एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९ ॥

तदानीं - उस समय
कुमारा - (सनकादि) कुमारोंने
वचनं ऊचुः - यह बात कही
इयं अधुना - 'यह इस समय
कथा अर्थतः - कथाके अर्थसे
निष्पतिता - निकली है'
सा ससुता - वह पुत्रोंके साथ
एवं गिरः- - इस प्रकारकी वाणी सुनकर
निशम्य
नम्रा - नम्रतापूर्वक
सनत्कुमारं - सनत्कुमारसे
निजगाद - बोली ॥ ६९ ॥

भक्तिरुवाच-

भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा कलिप्रणष्टापि कथारसेन ।
क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥ ७० ॥

भवत्भिः अद्य एव कृत अस्मि पुष्टा कलि प्रणष्टा अपि कथा रसेन क्वाहं तु तिष्ठामि अधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं' तां गिरं ऊचिरे ते ॥ ७० ॥

कलि-	- कलियुग द्वारा	**ब्राह्मा**	- विप्रवरो !
प्रणष्टा अपि	- नष्टकी हुई होनेपर भी	**अधुना अहं तु**	- इस समय मैं तो
अद्य एव	- अभी-अभी	**क्व तिष्ठामि**	- कहां बैठूँ
भवत्भिः	- आप लोगों द्वारा	**इदं ब्रुवन्तु**	- यह बतलाइये ।
कथा रसेन	- कथाके रससे		**सूत उवाच**
पुष्टा कृत-	- पुष्टकी गयी हूँ,	**ते तां**	- वे (सनकादिकुमार) उससे
अस्मि		**गिरं ऊचिरे**	- यह बात बोले ।।७०।।

कुमारा ऊचुः-

भक्तेषु गोविन्दसरूपकर्त्री प्रेमैकधर्त्री भवरोगहन्त्री ।
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ।। ७१ ।।

भक्तेषु गोविन्द सरूप कर्त्री प्रेम एक धर्त्री भवरोगहन्त्री सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्य संश्रया निरन्तरं वैष्णव मानसानि ।। ७१ ।।

भक्तेषु	- भक्तोंको	**सा त्वं च**	- वह तुम भी
गोविन्द-	- गोविन्द स्वरूप	**सुधैर्य संश्रया**	- उत्तम धैर्य के ठीक
सरूपकर्त्री	करने वाली,		आश्रय
प्रेम एक धर्त्री	- एक मात्र प्रेम	**वैष्णव मानसानि**	- भगवद्भक्तोंके चित्तमें
	धारण करने वाली,	**निरन्तरं-**	- निरन्तर बैठी रहो
भव रोग हन्त्री	- संसार रूपी रोगको	**तिष्ठस्व**	।। ७१ ।।
	नष्ट करने वाली		

ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ।
एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ।। ७२ ।।

ततः अपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवः अपि लोके ।

ततः इमे - इससे ये
कलिजा दोषाः - कलियुगसे उत्पन्न दोष
अपि लोके - भी संसारमें
प्रभवः अपि - समर्थ होनेपर भी
त्वां द्रष्टुं - तुम्हें देखनेमें
शक्ताः न - समर्थ नहीं होंगे,

सूत उवाच-

एवं तत् आज्ञा अवसरे अपि भक्तिः तदा निषण्णा हरिदास चित्ते ॥ ७२ ॥

एवं तत् आज्ञा - इस प्रकार उनकी आज्ञा
अवसरे - मिलनेके समय ही
भक्तिः- - भक्ति भी उसी समय
अपि तदा
हरिदास चित्ते - भगवद्भक्तोंके चित्तमें
निषण्णा - बैठ गयी ॥ ७२ ॥

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥

सकल भुवन मध्ये निर्धनाः ते अपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेः भक्तिः एकाहरिः अपि निजलोकं सर्वथातः विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रः उपनद्धः ॥ ७३ ॥

सकल भुवन-मध्ये - समस्त लोकोंके बीचमें
ते निर्धनाः अपि - वे निर्धन होनेपर भी
धन्या - धन्य हैं,
येषां हृदि - जिनके हृदयमें
श्री हरेः- - श्रीहरिकी अनन्य भक्ति
एका भक्तिः
निवसति - निवास करती है,
हरिः अपि - श्रीहरि भी
निजलोकं - अपने धामको
सर्वथातः- - सर्वथा ही त्यागकर
विहाय
भक्ति सूत्रः- - भक्तिके धागेसे बँधे हुए
उपनद्धः
तेषां हृदि - उनके हृदयमें
प्रविशति - प्रवेश करते हैं ॥७३॥

ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं
ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ।
यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता
श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥

ब्रूमः अद्य ते किं अधिकं महिमानं एवं ब्रह्म आत्मकस्य भुवि भागवत अभिधस्य यत् संश्रयात् निगदिते लभते सुवक्ता श्रोता अपि कृष्ण समतां अलं अन्य धर्मैः ॥ ७४ ॥

भुवि भागवत	- पृथ्वीपर भागवत	**यत् संश्रयात्**	- जिसका आश्रय लेकर
अभिधस्य	- नामवाले	**निगदिते**	- प्रवचन करनेपर
ब्रह्म आत्मकस्य	- ब्रह्मस्वरूपकी	**सुवक्ता**	- उत्तमवक्ता
ते अद्य किं	- तुमसे आज क्या	**श्रोता अपि**	- तथा श्रोता भी
अधिकं महिमानं	- अधिक माहात्म्य	**कृष्ण समतां**	- श्रीकृष्णका समत्व
एवं ब्रूमः	- वर्णन करें	**लभते**	- प्राप्त कर लेता है,
		अन्य धर्मैः-	- (अतः) अन्य धर्मोंसे बस
		अलं	॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥

अथ वैष्णव चित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिं अलौकिकीं निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्त वत्सलः ॥ १ ॥

अथ वैष्णव-	- तब भक्तोंके चित्तोंमें	**भक्त वत्सलः**	- भक्त वत्सल
चित्तेषु		**भगवान्**	- भगवान
अलौकिकीं	- अलौकिक	**निजलोकं**	- अपने लोकको
भक्तिं दृष्ट्वा	- भक्ति देखकर	**परित्यज्य**	- त्यागकर ॥ १ ॥

वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ।
काञ्चीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥ २ ॥

वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः काञ्ची कलाप रुचिरः लसत् मुकुट कुण्डलः ॥ २ ॥

वनमाली	- वनमालाधारी,	**रुचिरः**	- सुन्दर
घनश्यामः	- मेघके समान श्याम वर्ण,	**काञ्ची कलाप**	- करधनी पहिने,
पीतवासा	- पीताम्बरधारी,	**मुकुट कुण्डलः**	- मुकुट-कुण्डलसे
मनोहरः	- चितचोर,	**लसत्**	- सुशोभित ॥ २ ॥

त्रिभंगललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ।
कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३ ॥

त्रिभंग ललितः चारु कौस्तुभेन विराजितः कोटि मन्मथ लावण्यः हरिचन्दन चर्चितः ॥ ३ ॥

चारु त्रिभंग-ललितः	- सुन्दर त्रिभंग-मनोहर,	**कोटि मन्मथ**	- करोड़ों कामदेवके समान
कौस्तुभेन	- कौस्तुभ मणि द्वारा	**लावण्यः**	- सौन्दर्यशाली
विराजितः	- विशेष शोभित	**हरिचन्दन-चर्चितः**	- श्वेत चन्दनके द्वारा चर्चित ॥ ३ ॥

परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ।
आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥

परमानन्द चित्मूर्तिः मधुरः मुरलीधरः आविवेश स्वभक्तानां हृदयानि अमलानि च ॥ ४ ॥

परमानन्द	- परमानन्द	**स्वभक्तानां**	- अपने भक्तोंके
चित् मूर्तिः	- ज्ञान स्वरूप	**अमलानि हृदयानि**	- निर्मल हृदयोंमें
मधुरः	- अत्यन्त मधुर	**आविवेश च**	- प्रविष्ट होगये ॥४॥
मुरलीधरः	- मुरलीधर		

वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ।
तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥

वैकुण्ठ वासिनः ये च वैष्णवा उद्धव आदयः तत् कथा श्रवण अर्थं ते गूढ़ रूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥

वैकुण्ठ वासिनः	- वैकुण्ठ निवासी	**तत् कथा**	- उस कथाके
ये उद्धव-आदयः	- जो उद्धव आदि	**श्रवण अर्थं**	- सुननेके लिए
वैष्णवा च	- भगवद्भक्त थे	**ते गूढ़ रूपेण**	- वे गुप्त रूपसे
		संस्थिताः	- बैठे थे ॥ ५ ॥

तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ।
चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शंखरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥

तदा जय जय आरावः रसपुष्टिः अलौकिकी चूर्ण प्रसून वृष्टिः च मुहुः शंख रवः अपि अभूत् ॥ ६ ॥

तदा जय- - उस समय जय
जय आरावः जयकारका नाद,
अलौकिकी - अलौकिक
रसपुष्टिः - रसकी पुष्टि,
चूर्ण प्रसून - (अबीरादि) चूर्णों तथा पुष्पोंकी
वृष्टिः च - वर्षा एवं
मुहुः शंख रवः - बार-बार शंखनाद
अपि अभूत् - भी हुआ ॥ ६ ॥

तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ।
दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

तत् सभा संस्थितानां च देह गेह आत्म विस्मृतिः दृष्ट्वा च तन्मया अवस्थां नारदः वाक्यं अब्रवीत् ॥ ७ ॥

तत् सभा - उस सभामें
संस्थितानां च - उपस्थित लोगोंकी
आत्म देह गेह - अपने शरीर और घरकी
विस्मृतिः - विस्मृति होगयी
तन्मया अवस्थां- (उनकी) तन्मय अवस्था
दृष्ट्वा च- - देखकर ही नारद जी
नारदः
वाक्यं अब्रवीत् - यह बात बोले ॥ ७ ॥

नारद उवाच-

अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ।
मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥

अलौकिकः अयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताह जन्यः अद्य विलोकितः मया मूढाः शठा ये पशु पक्षिणः अत्र सर्वे अपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥

मुनीश्वराः - मुनीश्वरो !
अद्य मया - आज मैंने
सप्ताह जन्यः - सप्ताहसे उत्पन्न
ये मूढाः शठा- जो अज्ञानी, दुष्ट,
पशु पक्षिणः- - पशु-पक्षी यहां हैं
अत्र

यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

अयं अलौकिकः	- यह अलौकिक	**सर्वे अपि**	- सभी ही
महिमा-	- महिमा देखी,	**निष्पापतमा**	- अत्यन्त निष्पाप
विलोकितः		**भवन्ति**	- होगये ॥ ८ ॥

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ।
अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥ ९ ॥

अतः नृ लोके ननु न अस्ति किञ्चित् चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रं अघ ओघ विध्वंस करं तथा एव कथा समानं भुवि न अस्ति च अन्यत् ॥ ९ ॥

अतः नृलोके	- अतः मनुष्यलोक में	**अघ ओघ**	- पापकी बाढ़को
चित्तस्य शोधाय	- चित्तको शुद्ध करनेके लिए	**विध्वंसकरं**	- सम्पूर्ण नष्ट करने वाला
		कथा समानं	- कथाके समान
कलौ किञ्चित्	- कलियुगमें कुछ भी	**भुवि किञ्चित्**	- पृथ्वीपर कुछ भी
पवित्रं न अस्ति	- पुण्य कर्म नहीं है,	**न अस्ति**	- नहीं है ॥ ९ ॥
तथा एव	- इसी प्रकार		

के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ।
कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥

के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताह यज्ञेन कथामयेन कृपालुभिः लोकहितं विचार्य प्रवर्तितः कः अपि नवीन मार्गः ॥ १० ॥

कथा मयेन	- कथा स्वरूप	**कृपालुभिः**	- (आप) कपालुओं द्वारा
सप्ताह यज्ञेन	- इस सप्ताह यज्ञके द्वारा	**लोकहितं-**	- लोक-कल्याणका
के के-	- कौन-कौन शुद्ध	**विचार्य**	विचार करके
विशुद्ध्यन्ति	होजाते हैं	**कः अपि**	- (यह) कौन सा
मह्यं वदन्तु	- (यह) मुझे बतलाइये,	**नवीन मार्गः**	- नया पथ
		प्रवर्तितः	- चलाया है ॥ १० ॥

कुमारा ऊचुः-

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥

ये मानवाः पापकृतः तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः क्रोध अग्नि दग्धाः कुटिलाः च कामिनः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥

ये मानवाः तु	- जो मनुष्य तो	**कुटिलाः च**	- कुटिल और
सर्वदा पापकृतः	- नित्य पाप करनेवाले,	**कामिनः**	- कामुक हैं,
सदा-	- सदा दुराचारमें लगे	**कलौ ते**	- कलियुगमें वे
दुराचाररता	रहने वाले,	**सप्ताह यज्ञेन**	- सप्ताहरूप यज्ञसे
विमार्गगाः	- कुमार्गपर चलने वाले,	**पुनन्ति**	- पवित्र होजाते हैं
क्रोध अग्नि-	- क्रोधाग्निमें जलते		॥ ११ ॥
दग्धाः	रहने वाले		

सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥

सत्येन हीनाः पितृमातृ दूषकाः तृष्णा आकुलाः च आश्रम धर्म वर्जिताः ये दाम्भिका मत्सरिणः अपि हिंसकाः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥

सत्येन हीनाः	- सत्यसे रहित,	**दाम्भिका**	- घमण्ड करनेवाले
पितृमातृ दूषकाः	- पिता-माताकी निन्दा	**मत्सरिणः**	- डाह करने वाले तथा
	करने वाले,	**हिंसकाः अपि**	- हिंसक (हत्यारे) भी हैं,
तृष्णा आकुलाः	- तृष्णासे व्याकुल	**कलौ ते**	- कलियुगमें वे
आश्रम धर्म	- वर्ण-आश्रमधर्म से	**सप्ताह यज्ञेन**	- सप्ताह यज्ञ द्वारा
वर्जिताः	- रहित,	**पुनन्ति**	- शुद्ध होजाते हैं ॥१२॥

पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥

पञ्च उग्रपापाः छल छद्म कारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाः च ये ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचार कारिणः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥

पञ्च उग्रपापाः	- पांचों उग्रपाप (मद्यपान, ब्रह्महत्या, स्वर्ण चोरी, गुरु स्त्रीगमन और विश्वासघात)	**ये निर्दयाः च**	- जो निर्दय भी हैं,
		ब्रह्मस्व पुष्टा	- ब्राह्मणके धनसे पुष्ट हुए,
छल छद्म कारिणः	- तथा छल-कपट करने वाले,	**व्यभिचार-कारिणः**	- व्यभिचार करने वाले
		ते कलौ	- वे भी कलियुगमें
क्रूराः पिशाचा इव	- क्रूर, पिशाचोंके समान	**सप्ताह यज्ञेन**	- सप्ताह यज्ञसे
		पुनन्ति	- पवित्र होजाते हैं ॥१३॥

कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ।
परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १४ ॥

कायेन वाचा मनसा अपि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये परस्व पुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १४ ॥

ये शठा	- जो दुष्ट पुरुष	**परस्व पुष्टा**	- दूसरेके स्वत्वसे मोटे हुए
कायेन वाचा	- शरीर, वाणी,	**मलिना-दुराशयाः**	- मलिन दुष्ट चित्तवाले हैं
मनसा अपि	- मनसे भी	**कलौ ते**	- कलियुगमें वे
नित्यं हठेन	- सदा हठपूर्वक	**सप्ताह यज्ञेन**	- सप्ताह यज्ञसे
पातकं प्रकुर्वन्ति	- पाप ही करते रहते हैं,	**पुनन्ति**	- पवित्र होजाते हैं ॥१४॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनं यस्य श्रवण मात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

अत्र ते - इस विषयमें तुमसे
पुरातनं इतिहासं - पुराने इतिहासका
कीर्तयिष्यामि - वर्णन करूँगा,
यस्य श्रवण मात्रेण - जिसको सुनने मात्रसे
पाप हानिः - पापनाश
प्रजायते - होजाता है ॥ १५ ॥

तुंगभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ।
यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥

तुंगभद्रा तटे पूर्वं अभूत् पत्तनं उत्तमं यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्य सत् कर्म तत्पराः ॥ १६ ॥

तुंगभद्रा तटे - तुंगभद्रा नदीके किनारे
पूर्वं उत्तमं - पहिले एक श्रेष्ठ
पत्तनं अभूत् - नगर था,
यत्र वर्णाः - जहांके वर्णाश्रमके लोग
स्वधर्मेण - अपने धर्मपालन द्वारा
सत्य सत् कर्म तत्पराः - सत्य और सत् कर्ममें लगे रहते थे ॥ १६ ॥

आत्मदेवः पुरे तस्मिन् सर्ववेदविशारदः ।
श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥

आत्मदेवः पुरे तस्मिन् सर्व वेद विशारदः श्रौत स्मार्तेषु निष्णातः द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥

तस्मिन पुरे - उस नगरमें
सर्व वेद विशारदः - सब वेदोंके विद्वान
श्रौत स्मार्तेषु - वैदिक एवं स्मृतियोंके कर्ममें
निष्णातः - प्रवीण
द्वितीय भास्करः इव - दूसरे सूर्यके समान
आत्मदेवः - आत्मदेव (रहते थे) ॥ १७ ॥

भिक्षुको वित्तवाँल्लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ।
स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥ १८ ॥

भिक्षुकः वित्तवान् लोके तत् प्रिया धुन्धुली स्मृता स्ववाक्य स्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुल उद्भवा ॥ १८ ॥

लोके वित्तवान्	- संसारमें धनीपर	**सुकुल उद्भवा**	- अच्छे कुलमें उत्पन्न
भिक्षुकः	- भिक्षा जीवी थे,	**नित्यं स्ववाक्य**	- सदा अपनी बात
तत् प्रिया	- उनकी पत्नी	**स्थापिका**	- रखने वाली
सुन्दरी	- सुन्दरी	**धुन्धुली स्मृता**	- धुन्धुली नामकी थी ॥ १८ ॥

लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ।
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ १९ ॥

लोक वार्तारता क्रूरा प्रायशः बहुजल्पिका शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलह प्रिया ॥ १९ ॥

लोक वार्तारता	- लोगोंकी चर्चामें लगी रहने वाली	**च गृहकृत्येषु**	- तथा घरेलू काममें
क्रूरा	- क्रूर स्वभावकी,	**शूरा कृपणा**	- वीर, कृपण,
प्रायशः-	- प्रायः बहुत बोलने	**कलहप्रिया**	- झगड़ेसे प्रीति रखने वाली थी ॥ १९ ॥
बहुजल्पिका	वाली,		

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्योः रममाणयोः ।
अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २० ॥

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्योः रममाणयोः अर्थाः कामाः तयोः आसन् न सुखाय गृह आदिकम् ॥ २० ॥

एवं प्रेम्णा	- इस प्रकार प्रेमपूर्वक	**अर्थाः कामाः**	- धन, भोग,
रममाणयोः	- रमण करते हुए	**गृह आदिकं**	- घर आदि
निवसतोः	- निवास करते हुए	**सुखाय न-**	- सुखदायक नहीं थे
तयोः दम्पत्योः	- उस दम्पत्तिको	**आसन्**	॥ २० ॥

पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ।
गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥

पश्चात् धर्माः सम आरब्धाः ताभ्यां सन्तान हेतवे गो भू हिरण्य वासांसि दीनेभ्यः यच्छतः सदा ॥ २१ ॥

दीनेभ्यः	- दीनोंको	**ताभ्यां**	- उनके द्वारा
सदा गो भू	- सदा गौ, भूमि,	**सन्तान हेतवे**	- सन्तान (प्राप्ति) के लिए
हिरण्य वासंसि	- स्वर्ण, वस्त्र	**पश्चात् धर्माः**	- पीछे धर्म
यच्छतः	- देते हुए	**समारब्धाः**	- भली प्रकार प्रारम्भ किया गया ॥ २१ ॥

धनार्धं धर्ममार्गेण ताभ्यां नीतं तथापि च ।
न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥ २२ ॥

धन अर्धं धर्म मार्गेण ताभ्यां नीतं तथा अपि च न पुत्रः न अपि वा पुत्री ततः चिन्ता आतुरः भृशम् ॥ २२ ॥

ताभ्यां धन अर्धं	- उन लोगोंने अपना आधा धन	**न पुत्रः**	- न पुत्र हुआ
		न अपि पुत्री	- न पुत्री ही हुई
धर्म मार्गेण-	- धर्मके मार्गमें लगा	**ततः भृशं**	- तब अत्यन्त
नीतं	दिया	**चिन्ता आतुरः**	- चिन्तासे व्याकुल होगये ॥ २२ ॥
तथा अपि च	- ऐसा करनेपर भी		

एकदा स द्विजो दुःखाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ।
मध्यान्हे तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३ ॥

एकदा स द्विजः दुःखात् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः मध्यान्हे तृषितः जातः तडागं सम उपेयिवान् ॥ २३ ॥

एकदा स द्विजः - एक बार वह ब्राह्मण
दुःखात् - दुःखके कारण
गृहं त्यक्त्वा - घर छोड़कर
वनं गतः - वनमें चले गये,
मध्यान्हे - (वहां) दोपहरमें
तृषितः जातः - प्यासे होकर
तडागं - सरोवरके
सम उपेयिवान् - समीप पहुँचे ॥ २३ ॥

पीत्वा जलं निषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ।
मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥

पीत्वा जलं निषण्णःतु प्रजा दुःखेन कर्शितः मुहूर्तात् अपि तत्र एव सन्यासी कश्चित् आगतः ॥ २४ ॥

पीत्वा जलं - जल पीकर
प्रजा दुःखेन - पुत्र (न होने) के दुःखसे
कर्शितः - दुबले हुए
निषण्णः तु - बैठे हुए थे तो
मुहूर्तात् अपि - एक मुहूर्तमें ही
तत्र एव-कश्चित् - वहीं कोई
सन्यासी आगतः - सन्यासी आगये ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ।
नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रः यातः तत् अन्तिकं नत्वा च पादयोः तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥

तं तु पीतजलं - उनको तो जल पिये
दृष्ट्वा विप्रः - देखकर ब्राह्मण
तत् अन्तिकं - उनके समीप
यातः तस्य-पादयोः - जाकर उनके चरणोंमें
नत्वा निःश्वसन् - प्रणाम करके लम्बी श्वांस लेता
पुरः संस्थितः - (उनके) आगे खड़ा होगया ॥ २५ ॥

यतिरुवाच-

कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ।
वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥

कथं रोदसि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥

विप्रत्वं	- ब्राह्मण ! तुम	**स्वस्य दुःखस्य**	- अपने दुःखका
कथं रोदसि	- कैसे रो रहे हो ?	**कारणं मह्यं**	- कारण मुझसे
ते का बलीयसी	- तुमको कौनसी बलवान	**सत्वरं वद**	- शीघ्र बतलाओ ॥२६॥
चिन्ता	- चिन्ता है ?		

ब्राह्मण उवाच-

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ।
मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ २७ ॥

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्व पापेन संचितं मदीयाः पूर्वजाः तोयं कवोष्णं उप भुञ्जते ॥ २७ ॥

ऋषे दुःखं	- ऋषि ! (मैं अपना) दुःख	**कवोष्णं**	- (निःश्वाससे) कुछ गरम[1]
किं ब्रवीमि	- क्या बतलाऊँ	**तोयं-**	- जल पीते हैं ॥ २७ ॥
मदीयाः पूर्वजाः	- मेरे पितर लोग	**उपभुञ्जते**	

मदत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ।
प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८ ॥

मत् दत्तं न एव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः प्रजा दुःखेन शून्यः अहं प्राणान् त्यक्तुं इह आगतः ॥ २८ ॥

---

१. मेरे सन्तान न होनेसे आगे जलाञ्जलि नहीं मिलेगी, यह सोचकर निःश्वास लेते हैं ।

देवा द्विजातयः	- देवता और ब्राह्मण	प्रजा दुःखेन	- सन्तान (हीनता) के दुःखसे
मत् दत्तं	- मेरा दिया (पूजा-दान)	अहं शून्यः	- मैं शून्य होगया हूँ,
प्रीत्या न एव	- प्रेमपूर्वक नहीं ही	इह प्राणान्- त्यक्तुं	- यहां प्राण-त्याग करने
गृह्णन्ति	- ग्रहण करते	आगतः	- आया हूँ ॥ २८ ॥

धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ।
धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥

धिक् जीवितं प्रजाहीनं धिक् गृहं च प्रजां विना धिक् धनं च अनपत्यस्यं धिक् कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥

प्रजाहीनं	- पुत्र रहित	अनपत्यस्य	- सन्तानहीनके
जीवितं धिक्	- जीवनको धिक्कार,	धनं च धिक्	- धनको भी धिक्कार
प्रजां विना	- पुत्रके बिना	सन्ततिं विना	- सन्तानके बिना
गृहं च धिक्	- घरको भी धिक्कार,	कुलं धिक्	- कुलको धिक्कार ॥२९॥

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ।
यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् यः मया रोपितः वृक्षः सः अपि वन्ध्यत्वं आश्रयेत् ॥ ३० ॥

या मया	- जो मेरे द्वारा	यः मया	- जो मेरे द्वारा
धेनुः पाल्यते	- गाय पाली जाती है	वृक्षः रोपितः	- वृक्ष लगाया जाता है,
सा सर्वथा	- वह सर्वथा	सः अपि- वन्ध्यत्वं	- वह भी वन्ध्यापनको
वन्ध्या भवेत्	- बांझ होजाती है.	आश्रयेत्	- अपना लेता है ॥३०॥

यत्फलं मद्गृहायातं तच्च शीघ्रं विनश्यति ।
निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥

यत् फलं मत् गृह आयातं तत् च शीघ्रं विनश्यति निर्भाग्यस्य अनपत्यस्य किं अतः जीवितेन मे ॥ ३१ ॥

मत् गृह	- मेरे घर	अतः निर्भाग्यस्य	- अतः अभागे
यत् फलं- आयातं	- जो फल आजाता है,	अनपत्यस्य	- सन्तानहीन
तत् च शीघ्रं	- वह भी शीघ्र	मे जीवितेन किं	- मेरे जीवनसे क्या लाभ ॥ ३१ ॥
विनश्यति	- नष्ट होजाता है,		

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वं दुःखपीडितः ।
तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥

इति उक्त्वा स रुरोद उच्चैः तत् पार्श्वं दुःख पीडितः तदा तस्य यतेः चित्ते करुणा अभूत् गरीयसी ॥ ३२ ॥

इति उक्त्वा स	- ऐसा कहकर वह	तदा तस्य यतेः	- तब उस सन्यासीके
तत् पार्श्वं	- उन (सन्यासी) की बगलमें	चित्ते गरीयसी	- चित्तमें महान्
उच्चैः रुरोद	- उच्च स्वरसे रोने लगा,	करुणा अभूत्	- दया उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥

तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥

तत् भाल अक्षर मालां च वाचयामास योगवान् सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चात् विप्रं ऊचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥

---

१. यह उवाच गीता प्रेसमें नहीं है ।

योगवान्	- योगसम्पन्न (उन यति) ने	**सर्वं ज्ञात्वा**	- सब कुछ जानकर
तत् भाल	- उसके ललाटकी	**यतिः पश्चात्**	- उस सन्यासीने फिर
अक्षर मालां च	- अक्षर माला (भाग्यलेख) को भी	**सविस्तरं**	- विस्तार पूर्वक
वाचयामास	- पढ़ा (इस प्रकार)	**विप्रं ऊचे**	- ब्राह्मणसे कहा ॥ ३३ ॥

यतिरुवाच-

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४ ॥

मुञ्च अज्ञानं प्रजा रूपं बलिष्ठा कर्मणः गतिः विवेकं तु सम आसाद्य त्यज संसार वासनाम् ॥ ३४ ॥

प्रजा रूपं	- सन्तान (इच्छा) स्वरूप	**विवेकं तु**	- विवेकको तो
अज्ञानं मुञ्च	- अज्ञानको छोड़ दो,	**सम आसाद्य**	- भली प्रकार अपनाकर
कर्मणः गतिः	- कर्मोंकी गति	**संसार**	- संसारकी
बलिष्ठा	- बलवान है,	**वासनां त्यज**	- वासना त्याग दो ॥३४॥

शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ।
सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥

शृणु विप्र मया ते अद्य प्रारब्धं तु विलोकितं सप्तजन्म अवधि तव पुत्रः न एव न एव च ॥ ३५ ॥

विप्र शृणु	- ब्राह्मण सुनो !	**सप्त जन्म अवधि**	- सात जन्मों तक
अद्य मया	- इस समय मैंने	**तव पुत्रः**	- तुम्हारे पुत्र
ते प्रारब्धं तु	- तुम्हारे प्रारब्धको भी	**न एव च न एव**	- नहीं ही है,
विलोकितं	- देख लिया है,		नहीं ही है ॥३५॥

संततेः सगरो दुःखमवापांगः पुरा तथा ।
रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥

संततेः सगरः दुःखं अवाप अंगः पुरा तथा रे मुञ्च अद्य कुटुम्ब आशां सन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥

संततेः सगरः - पुत्रसे राजा सगरने	**रे अद्य-** - अरे, आज कुटुम्बी होनेकी
तथा अंगः पुरा - तथा राजा अंगने पहिले	**कुटुम्ब**
	आशां - आशा
दुःखं अवाप - दुःख पाया है,	**मुञ्च** - त्याग दे,
	सन्यासे - सन्यासी होनेमें
	सर्वथा सुखं - सर्वथा सुख है ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच-

विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ।
नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्छितः ॥ ३७ ॥

विवेकेन भवेत् किं मे पुत्रं देहि बलात् अपि नो चेत् त्यजामि अहं प्राणान् त्वत् अग्रे शोक मूर्छितः ॥ ३७ ॥

विवेकेन - विवेकसे	**नो चेत् त्वत्** - नहीं तो आपके
मे किं भवेत् - मुझे क्या (लाभ) होगा,	**अग्रे** आगे ही
बलात् अपि - बलपूर्वक भी	**शोक मूर्छितः** - शोकसे मूर्छित होकर
पुत्रं देहि - पुत्र दीजिए	**प्राणान् त्यजामि** -प्राण छोड़ दूँगा ॥३७॥

पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ।
गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥

पुत्र आदि सुख हीनः अयं सन्यासः शुष्क एव हि गृहस्थः सरसः लोके पुत्र पौत्र समन्वितः ॥ ३८ ॥

हि पुत्र आदि	- क्योंकि पुत्र आदिके	**पुत्र पौत्र-**	- पुत्र-पौत्रोंसे युक्त
सुख हीनः	- सुखसे रहित	**समन्वितः**	
अयं सन्यासः	- यह सन्यास	**लोके गृहस्थः**	- संसारमें गृहस्थ धर्म
शुष्क एव	- शुष्क ही है,	**सरसः**	- सरस है ॥ ३८ ॥

सूत उवाच-१

इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ।
चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखविमार्जनात् ॥ ३९ ॥

इति विप्र आग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत् स तपोधनः ।

इति विप्र-	- इस प्रकार ब्राह्मणका	**तपोधनः**	- तपोधनने
आग्रहं	आग्रह	**प्राब्रवीत्**	- कहा ।
दृष्ट्वा स	- देखकर उन		

यातिरुवाच-२

चित्रकेतुः गतः कष्टं विधि लेख विमार्जनात् ॥ ३९ ॥

विधि लेख	- विधाताका लिखा	**चित्रकेतुः**	- राजा चित्रकेतु
विमार्जनात्	- विशेष रूपसे मिटानेसे	**कष्टं गतः**	- संकटमें पड़ा था ॥३९॥

न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ।
अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥

न यास्यसि सुखं पुत्रात् यथा दैवहत उद्यमः अतः हठेन युक्तः असि हि अर्थिनं किं वदामि अहम् ॥ ४० ॥

१-२. यह उवाच गीता प्रेसमें नहीं है ।

यथा दैवहत - जैसे भाग्यके मारेका
उद्यमः - उद्योग होता है,
पुत्रात् सुखं - पुत्रके द्वारा सुख
न यास्यसि - (तुम) नहीं पाओगे,
अतः हठेन - फिर भी हठ
युक्तः असि - युक्त हो
अर्थिनं - अपना प्रयोजन ही चाहने वालेसे
अहं किं वदामि - मैं क्या कहूँ ॥४०॥

सूत उवाच-१

तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ।
इदं भक्षय पत्नया त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥

तस्य आग्रहं सम आलोक्य फलं एकं स दत्तवान् ।

तस्य सम-आग्रहं - उसका दृढ़ आग्रह
आलोक्य - देखकर
स एकं फलं - उन्होंने एक फल
दत्तवान् - दिया ।

यतिरुवाच-२

इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रः भविष्यति ॥ ४१ ॥

त्वं इदं - तुम इसको
पत्न्या भक्षय - पत्नीको खिला दो,
ततः पुत्रः - इससे पुत्र
भविष्यति - होगा ॥ ४१ ॥

सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ।
वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२ ॥

सत्यं शौचं दया दानं एक भक्तं तु भोजनं वर्ष अवधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रः अति निर्मलः ॥ ४२ ॥

१-२. यह उवाच गीता प्रेसमें नहीं है ।

सत्यं शौचं - सच बोलना, पवित्र रहना,	**वर्ष अवधि** - एक वर्ष तक
दया दानं - दया और दान करना,	**स्त्रिया कार्यं** - स्त्रीको करना चाहिए,
भोजनं तु - भोजन तो	**तेन पुत्रः** - इससे पुत्र
एक भक्तं - एक ही बार करना,	**अति निर्मलः** - अत्यन्त निर्मल होगा ॥ ४२ ॥

सूत उवाच-

एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ।
पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥

एवं उक्त्वा ययौ योगी विप्रः तु गृहं आगतः पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातः तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥

एवं उक्त्वा - इस प्रकार कहकर	**पत्न्याः पाणौ** - पत्नीके हाथमें
योगी ययौ - (वे) योगी चले गये,	**फलं दत्त्वा स्वयं** - फल देकर स्वयं
विप्रः तु - ब्राह्मणने तो	**तु कुत्रचित्-** - तो कहीं चला गया
गृहं आगतः - घर आकर	**यातः** ॥ ४३ ॥

तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ।
अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥

तरुणी कुटिला तस्य सखि अग्रे च रुरोद ह अहो चिन्ता मम उत्पन्ना फलं च अहं न भक्षये ॥ ४४ ॥

तस्य तरुणी- - उसकी पत्नी	**अहो मम** - 'अहो, मुझे
कुटिला कुटिल थी	**चिन्ता उत्पन्ना** - चिन्ता उत्पन्न होगयी,
च सखि अग्रे - वह सखीके सामने	**अहं फलं च** - मैं फल भी
रुरोद ह - रोने ही लगी	**न भक्षये** - नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥

ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

फलभक्षेण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ।
स्वल्पभक्षं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ।। ४५ ।।

फल भक्षेण गर्भः स्यात् गर्भेण उदर वृद्धिता स्वल्प भक्षं ततः अशक्तिः गृहकार्यं कथं भवेत् ।। ४५ ।।

फल भक्षेण	- फल खानेसे	**ततः स्वल्पभक्षं**	- उससे कम खाया जानेसे
गर्भः स्यात्	- गर्भ हो जायगा,	**अशक्तिः**	- दुर्बलता आजायगी,
गर्भेण	- गर्भसे	**गृहकार्यं**	- तब घरका काम
उदरवृद्धिता	- पेट बढ़ेगा,	**कथं भवेत्**	- कैसे होगा ।। ४५ ।।

दैवाद्घाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ।
शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ।। ४६ ।।

दैवात् घाटी व्रजेत् ग्रामे पलायेत् गर्भिणी कथं शुकवत् निवसेत् गर्भः तं कुक्षे कथं उत्सृजेत् ।। ४६ ।।

दैवात् ग्रामे	- संयोगवश गांवमें	**गर्भः कुक्षे**	- गर्भ कोखमें
घाटी व्रजेत्	- डाकू आ जायं तो	**शुकवत्**	- शुकदेवकी भांति
गर्भिणी कथं	- गर्भवती कैसे	**निवसेत्**	- (दीर्घकालतक) निवास करने लगे तो
पलायेत्	- भागे,	**तं कथं-उत्सृजेत्**	- उसे कैसे बाहर निकाले ।। ४६ ।।

तिर्यक्चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ।
प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ।। ४७ ।।

तिर्यक् चेत् आगतः गर्भः तदा मे मरणं भवेत् प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ।। ४७ ।।

चेत् गर्भः	- यदि गर्भ	**प्रसूतौ**	- प्रसव होनेमें
तिर्यक् आगतः	- तिरछा होगया	**दारुणं दुःखं**	- भयानक कष्ट होता है
तदामे मरणं-	- तब तो मेरी मृत्युही	**सुकुमारी**	- (मैं) सुकुमारी हूँ,
भवेत्	हो जायगी,	**कथं सहे**	- कैसे सहूंगी ॥ ४७ ॥

मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा ।
सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥

मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत् तदा सत्य शौच आदि नियमः दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥

मयि मन्दायां	- मैं दुर्बल पड़ जाऊँगी	**सत्य शौच-**	- सच बोलना, पवित्रता
तदा ननान्दा	- तब ननद	**आदि**	आदि
सर्वस्वं	- (मेरा) सब कुछ	**स नियमः**	- वे नियम भी
संहरेत्	- समेट ले जायगी,	**दुराराध्यः**	- करनेमें बहुत कठिन
		दृश्यते	- दीखते हैं ॥ ४८ ॥

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ।
वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाः च वर्तते वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी च इति मे मतिः ॥ ४९ ॥

प्रसूतायाः च	- प्रसूताको ही	**वन्ध्या वा विधवा**	- बन्ध्या अथवा विधवा
लालने पालने	- (शिशुके) लालन-पालनका	**नारी सुखिनी**	- स्त्री सुखी है,
दुःखं वर्तते	- दुःख होता है,	**इति मे मतिः**	- ऐसा मैं समझती हूँ' ॥ ४९ ॥

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ।
पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५० ॥

एवं कुतर्क योगेन तत् फलं न एव भक्षितं पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं च इति तया ईरितम् ॥ ५० ॥

एवं कुर्तक-योगेन	- इस प्रकार कुतर्कके संयोगसे	**पत्या पृष्टं**	- पतिने पूछा-
		फलं भुक्तं	- 'फल खा लिया ?'
तत् फलं	- उस फलको (उसने)	**भुक्तं च**	- 'खा ही लिया'
न एव भक्षितं	- नहीं ही खाया,	**इति तया-ईरितं**	- ऐसा उसने कह दिया ॥ ५० ॥

एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता ।
तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥

एकदा भगिनी तस्याः तत् गृहं स्वेच्छया आगता तत् अग्रे कथितं सर्वं चिन्ता इयं महती हि मे ॥ ५१ ॥

एकदा तस्याः	- एक बार उसकी	**तस्य अग्रे**	- उसके आगे
भगिनी	- बहिन	**सर्वं कथितं**	- सब बतलाकर (बोली)
स्वेच्छया	- अपनी इच्छासे	**हि इयं मे**	- 'क्योंकि यह मुझे
तत् गृहं-आगता	- उसके घर आगयी,	**महती चिन्ता**	- बड़ी भारी चिन्ता है ॥ ५१ ॥

दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ।
साब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥

दुर्बला तेन दुःखेन हि अनुजे करवाणि किं सा ब्रवीत् मम गर्भः अस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥

अनुजे	- छोटी बहिन !	**सा ब्रवीत्**	- वह बोली
तेन दुःखेन हि	- उस दुःखसे ही	**मम गर्भः अस्ति**	- 'मेरे गर्भ है,
दुर्बला	- (मैं) दुबली होगयी हूँ	**प्रसूतितः**	- प्रसव होनेपर
किं करवाणि	- क्या (उपाय) करूँ ?'	**तं दास्यामि**	- उसे दे दूंगी ॥५२॥

तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ।
वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥

तावत् कालं सगर्भा इव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखं वित्तं त्वं मत् पतेः यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥

तावत् कालं	- उतने समयतक	**मत् पतेः**	- मेरे पतिको
सगर्भा इव	- गर्भवतीके समान	**त्वं वित्तं यच्छ**	- तुम धन दे दो,
गुप्ता गृहे	- छिपकर घरमें	**स ते बालकं**	- वह तुम्हें बालक
सुखं तिष्ठ	- सुखपूर्वक रहो,	**दास्यति**	- दे देगा ॥ ५३ ॥

षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ।
तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥

षाण्मासिकः मृतः बाल इति लोकः वदिष्यति तं बालं पोषयिष्यामि नित्यं आगत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥

षाण्मासिकः	- छः महीनेका होकर	**नित्यं ते गृहे**	- प्रतिदिन तुम्हारे घर
बाल मृतः	- (इसका) बालक मर गया	**आगत्य**	- आकर
लोकः इति	- लोग ऐसा	**तं बालं**	- उस बालकका (मैं)
वदिष्यति	- कहेंगे,	**पोषयिष्यामि**	- पोषण करूँगी ॥ ५४ ॥

फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु साम्प्रतम् ।
तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥

फलं अर्पय धेन्वै त्वं परीक्षा अर्थं तु साम्प्रतं तत् तत् आचरितं सर्वं तथा एव स्त्री स्वभावतः ॥ ५५ ॥

साम्प्रतं त्वं तु	- इस समय तुम तो	**स्त्री स्वभावतः**	- स्त्री स्वभावके कारण
परीक्षा अर्थं	- परीक्षाके लिए	**तत् तत् सर्वं**	- वह वह सब
धेन्वै फलं-	- गौ को (वह)	**तथा एव-**	- (उसने) वैसा ही किया
अर्पय	फल दे दो ।'	**आचरितं**	॥ ५५ ॥

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ।
आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ॥ ५६ ॥

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा आनीय जनकः बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ॥ ५६ ॥

अथ कालेन	- फिर समय पर	**बालं आनीय**	- बालकको लाकर
सा नारी बालकं	- उस स्त्रीने बालकको	**रहस्ये**	- एकान्तमें
प्रसूता	- जन्म दिया,	**धुन्धुलीं ददौ**	- धुन्धुली को दे दिया
तदा जनकः	- तब उसके पिताने		॥ ५६ ॥

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ।
लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७ ॥

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतं सुखं अर्भकः लोकस्य सुखं उत्पन्नं आत्मदेव प्रजा उदयात् ॥ ५७ ॥

तया च	- उस (धुन्धुली) ने भी	**आत्मदेव**	- आत्मदेवके
भर्त्रे कथितं	- पतिसे कह दिया	**प्रजा उदयात्**	- पुत्र उत्पन्न होनेसे
अर्भकः-	- बालक सुखपूर्वक	**लोकस्य**	- लोगोंको
सुखं प्रसूतं	उत्पन्न होगया,	**सुखं उत्पन्नं**	- आनन्द हुआ ॥ ५७ ॥

ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ।
गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मंगलं बहु ॥ ५८ ॥

ददौ दानं द्विजातिभ्यः जातकर्म विधाय च गीत वादित्र घोषः अभूत् तत् द्वारे मंगलं बहु ॥ ५८ ॥

जातकर्म	- जातकर्म	**तत् द्वारे**	- उनके द्वारपर
विधाय च	- करके ही	**बहु मंगलं**	- बहुत मंगलमय
द्वि जातिभ्यः	- ब्राह्मणोंको	**गीत वादित्र**	- गाने-बजानेकी
दानं ददौ	- दान दिया,	**घोषः अभूत्**	- ध्वनि हुई ॥ ५८ ॥

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ।
अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥

भर्तुः अग्रे अब्रवीत् वाक्यं स्तन्यं न अस्ति कुचे मम अन्य स्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥

भर्तुः अग्रे - (धुन्धुलीने) पतिके सामने
वाक्यं अब्रवीत् - यह बात कही
मम कुचे - 'मेरी छातीमें
स्तन्यं न-अस्ति - दूध नहीं है,
निर्दुग्धा - दूधहीन (मैं)
अन्य स्तन्येन - दूसरे (गाय आदि) के दूधसे
बालकं कथं - बालक कैसे
पुष्णामि - पोषण करूँगी ॥ ५९ ॥

मत्स्वसुश्च प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ।
तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥

मत् स्वसुः च प्रसूताया मृतः बालः तु वर्तते तां आकार्य गृहे रक्ष सा ते अर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥

मत् स्वसुः च - मेरी बहिनको तो
प्रसूताया - प्रसव होनेपर
बालः मृतः-वर्तते - बालक मर गया है,
तां आकार्य - उसे बुलाकर
गृहे रक्ष - घरमें रखिये,
सा ते अर्भं - वह आपके बालक का
पोषयिष्यति - पोषण करेगी ॥ ६० ॥

पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ।
पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥

पतिना तत् कृतं सर्वं पुत्र रक्षण हेतवे पुत्रस्य धुन्धुकारी इति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥

पुत्र रक्षण हेतवे पतिना - पुत्रकी रक्षाके लिए पतिने
तत् सर्वं कृतं - वह सब किया,
पुत्रस्य - पुत्रका
धुन्धुकारी - धुन्धुकारी
इति नाम - यह नाम
मात्रा प्रतिष्ठितं - माताने रखा ॥ ६१ ॥

त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ।
सर्वांगसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥

त्रिमासे निर्गते च अथ सा धेनुः सुषुवे अर्भकं सर्वांग सुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनक प्रभम् ॥ ६२ ॥

अथ त्रिमासे	- फिर तीन महीना	**दिव्यं निर्मलं**	- दिव्य, निर्मल,
निर्गते च	- निकल जानेपर तो	**कनक प्रभं**	- स्वर्णके समान कान्तिवाले
सा धेनुः	- उस गायने	**अर्भकं सुषुवे**	- बालकको जन्म दिया
सर्वांग सुन्दरं	- सर्वांग सुन्दर		॥ ६२ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ।
मत्वाऽऽश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नः विप्रः तु संस्कारान् स्वयं आदधे मत्त्वा आश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षा अर्थं सम आगताः ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा विप्रः तु	- (उसे) देखकर ब्राह्मणतो	**आश्चर्यं मत्त्वा**	- इसे आश्चर्य मानकर
प्रसन्नः	- प्रसन्न होगया,	**सर्वे जनाः**	- सब लोग
संस्कारान्	- (उसके जातकर्मादि) संस्कार	**दिदृक्षा अर्थं**	- देखनेके लिए
		समागताः	- सब ओरसे आये
स्वयं आदधे	- स्वयं करने लगा,		॥ ६३ ॥

भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ।
धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥

भाग्य उदयः अधुना जातः आत्मदेवस्य पश्यत धेन्वा बालः प्रसूतः तु देवरूपी इति कौतुकम् ॥ ६४ ॥

पश्यत - (कहने लगे) 'देखो,
आत्म देवस्य - आत्मदेवका
अधुना - इस समय
भाग्यउदयः- - भाग्योदय हुआ है,
जातः
इति कौतुकं - यह आश्चर्य है कि
धेन्वा प्रसूतः - गायसे उत्पन्न हुआ
बालः तु - बालक तो
देवरूपी - देवताओंके समान रूपवान है' ॥ ६४ ॥

न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ।
गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५ ॥

न ज्ञातं तत् रहस्यं तु केन अपि विधि योगतः गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम च अकरोत् ॥ ६५ ॥

विधि योगतः - संयोगवश
तत् रहस्यं तु - उसका रहस्य तो
केन अपि न- - किसीने भी नहीं जाना,
ज्ञातं
तं सुतं- - उस पुत्रको गायके समान
गोकर्णं दृष्ट्वा कानों वाला देखकर
गोकर्णं नाम च - गोकर्ण नाम ही
अकरोत् - रख दिया ॥ ६५ ॥

कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ।
गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धकारी महाखलः ॥ ६६ ॥

कियत् कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयाः उभौ गोकर्णः पण्डितः ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥

कियत् कालेन - कुछ समयमें
तौ उभौ तनयाः - वे दोनों (पुत्र)
तरुणौ जातौ - तरुण हुए (उनमें)
गोकर्णः - गोकर्ण
ज्ञानी पण्डितः - ज्ञानी विद्वान हुए,
धुन्धुकारी - और धुन्धुकारी
महाखलः - भारी दुष्ट हुआ ॥६६॥

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधवर्धितः ।
दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनम् ॥ ६७ ॥

स्नान शौच क्रिया हीनः दुर्भक्षी क्रोध वर्धितः दुष्परिग्रह कर्ता च शव हस्तेन भोजनम् ॥ ६७ ॥

स्नान शौच	- स्नान तथा पवित्रताकी	**च दुष्परिग्रह**	- तथा बुरी वस्तुयें संग्रह
क्रियाहीनः	- क्रियाओंसे रहित,	**कर्ता**	करने वाला,
दुर्भक्षी	- बुरे पदार्थ खाने वाला,	**शव हस्तेन**	- मुर्देके हाथसे (छुलाया)
क्रोध वर्धितः	- बहुत बढ़े क्रोध वाला,	**भोजनं**	- भोजन (भी) कर लेने वाला था ॥ ६७ ॥

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ।
लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६८ ॥

चौरः सर्वजन द्वेषी परवेश्म प्रदीपकः लालनाय अर्भकान् धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६९ ॥

चौरः	- चोर था,	**अर्भकान्**	- शिशुओंको
सर्वजन द्वेषी	- सभी लोगोंसे द्वेष रखने वाला,	**लालनायधृत्वा**	- दुलार करनेके लिए उठाकर
परवेश्म	- दूसरेके घरको	**सद्यः कूपे**	- तुरन्त कुएंमें
प्रदीपकः	- जला देने वाला था,	**न्यपातयत्**	- गिरा देता था ॥ ६८ ॥

हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ।
चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तः श्वसंगतः ॥ ६९ ॥

हिंसकः शस्त्रधारी च दीन अन्धानां प्रपीडकः चाण्डाल अभिरतः नित्यं पाशहस्तः श्वसंगतः ॥ ६९ ॥

हिंसकः	- हत्यारा,	**नित्यं श्वसंगतः**	- सदा कुत्तोंके साथ
च शस्त्रधारी	- तथा शस्त्र रखनेवाला,	**पाशहस्तः**	- हाथमें फन्दा लिए
दीन अन्धानां	- दीन-दुखियों तथा अन्धोंको	**चाण्डाल-**	- चाण्डालोंसे प्रीति
प्रपीडकः	- उत्पीड़ित करने वाला	**अभिरतः**	रखता था ॥ ६९ ॥

तेन वेश्याकुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ।
एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥

तेन वेश्या कुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयं आहरत् ॥ ७० ॥

तेन वेश्या-	- उसने वेश्याओंकी	**एकदा पितरौ-**	- एक बार माता-पिताको
कुसंगेन	बुरी आसक्तिमें पड़कर	**ताड्य**	पीटकर
पित्र्यं वित्तं तु	- पिताका धन तो	**स्वयं पात्राणि**	- स्वयं (घरके) बर्तन
नाशितं	- नष्ट कर दिया,	**आहरत्**	- छीन लिए ॥ ७० ॥

तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ।
वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥

तत् पिता कृपणः प्रोच्चैः धनहीनः रुरोद ह वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रः दुःखदायकः ॥ ७१ ॥

तत् पिता	- उसका पिता	**वन्ध्यत्वं तु**	- '(इसकी माँका) बन्ध्या
धनहीनः	- निर्धन होकर		रहना तो
कृपणः प्रोच्चैः	- दुःखी होकर उच्चस्वरसे	**समीचीनः**	- उपयुक्त था,
रुरोद ह	- विलाप ही करने लगा	**कुपुत्रः-**	- कुपुत्र दुःख देने वाला
		दुःखदायकः	हुआ ॥ ७१ ॥

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि कः मे दुःखं व्यपोहयेत् प्राणान् त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥

क्व तिष्ठामि	- कहां रहूँ,	**दुःखेन-**	- इस दुःखसे
क्व गच्छामि	- कहां चला जाऊँ,	**प्राणान् त्यजामि**	प्राण-त्याग दूंगा,
मे दुःखं	- मेरे दुःखको	**हा मम कष्टं**	- हाय, मुझपर (भारी) कष्ट
कः व्यपोहयेत्	- कौन दूर करेगा,	**संस्थितं**	- आगया' ॥ ७२ ॥

तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ।
बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥

तदानीं तु सम आगत्य गोकर्णः ज्ञान संयुतः बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥

तदानीं तु	- उस समय तो	**वैराग्यं परिदर्शयन्**	- वैराग्यका दिग्दर्शन कराते हुए
ज्ञान संयुतः	- ज्ञानवान	**जनकं बोधयामास**	- पिताको समझाने लगे ॥ ७३ ॥
गोकर्णः	- गोकर्ण		
समआगत्य	- समीप आकर		

गोकर्ण उवाच-१

असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥

असारः खलु संसारः दुःखरूपी विमोहकः सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवान् ज्वलते अनिशम् ॥ ७४ ॥

खलु संसारः	- अरे, संसार	**सुतः कस्य**	- पुत्र किसके ?
असारः	- सारहीन है,	**धनं कस्य**	- धन किसका ?
दुःखरूपी	- दुःख स्वरूप और	**स्नेहवान्**	- (यह तो) स्नेह करने वाला
विमोहकः	- मोहमें डालने वाला है,	**अनिशं-ज्वलते**	- रात-दिन जलता रहता है ॥ ७४ ॥

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

न चेन्द्रस्य सुखं किंचित्र सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ७५ ॥

न च इन्द्रस्य सुखं किञ्चित् न सुखं चक्रवर्तिनः सुखं अस्ति विरक्तस्य मुनेः एकान्त जीविनः ॥ ७५ ॥

इन्द्रस्य च	- इन्द्रको भी	**सुखं**	- सुख है,
किञ्चित्-	- थोड़ा भी सुख नहीं है,	**विरक्तस्य**	- विरक्त
सुखं न		**एकान्त जीविनः**	- एकान्तमें जीवन-
न चक्रवर्तिनः	- न चक्रवर्ती सम्राट्को		निर्वाह करने वाले
		मुनेः सुखं अस्ति	- मुनिको ही सुख है[1]
			॥ ७५ ॥

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ।
निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥

मुञ्च अज्ञानं प्रजारूपं मोहतः नरके गतिः निपतिष्यति देहः अयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥

प्रजारूपं	- पुत्र रूप	**निपतिष्यति**	- गिरेगा ही (अतः)
अज्ञानं मुञ्च	- अज्ञान त्यागिये,	**सर्वं त्यक्त्वा**	- सब कुछ त्यागकर
मोहतः नरके-	- मोह करनेसे नरक	**वनं व्रज**	- वनमें चले जाइये
गतिः	जाना होगा,		॥ ७६ ॥
अयं देहः	- यह (आपका) शरीर		
	(तो अब)		

सूत उवाच-१

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताब्रवीत् ।
किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

तत् वाक्यं तु सम आकर्ण्य गन्तुकामः पिता अब्रवीत् किं कर्तव्यं वने तात तत् त्वं वद स विस्तरम् ।। ७७ ।।

तत् वाक्यं तु	- उनकी बातको तो	**तात**	- पुत्र !
सम आकर्ण्य	- भली प्रकार सुनकर	**वने किं कर्तव्यं**	- वनमें क्या करना चाहिए
गन्तुकामः	- जानेकी इच्छा करके	**तत् त्वं**	- वह तुम
पिता अब्रवीत्	- पिताने कहा-	**स विस्तरं वद**	- विस्तारके साथ बतलाओ ।। ७७ ।।

सूत उवाच-१

अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पङ्गुरहं शठः ।
कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ।। ७८ ।।

अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पंगुः अहं शठः कर्मणा पतितः नूनं मां उद्धर दयानिधे ।। ७८ ।।

दयानिधे	- दयानिधान !	**पंगुः शठः**	- पंगु और शठ
अन्धकूपे	- (मोहके) अन्धे कुंएमें	**नूनं कर्मणा**	- निश्चय कर्मसे ही
स्नेहपाशे	- स्नेहके फन्देसे	**पतितः**	- गिरा हूँ,
बद्धः अहं	- बँधा हुआ मैं	**मां उद्धर**	- मेरा उद्धार करो ।।७८।।

गोकर्ण उवाच-

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ।। ७९ ।।

देहे अस्थि मांस रुधिरे अभिमतिं त्यज त्वं जाया सुत आदिषु सदा ममतां विमुञ्च पश्य अनिशं जगत् इदं क्षण भंग निष्ठं वैराग्य राग रसिकः भव भक्ति निष्ठः ।। ७९ ।।

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

अस्थि मांस - हड्डी, मांस,
रुधिरे देहे - रक्तके शरीरको
त्वं अभिमतिं- - आप अपना स्वरूप
त्यज माननना छोड़िये,
जाया सुत- - स्त्री-पुत्र आदिको
आदिषु
ममतां सदा- - अपना माननना सदाको
विमुञ्च त्याग दीजिए,
इदं जगत् - इस संसारको
क्षण भंग- - एक क्षणमें नष्ट
निष्ठं होने वाला
अनिशं पश्य - अहर्निश देखिये
वैराग्य- - वैराग्यमें प्रीतिके
राग रसिकः रसिक एवं
भक्ति निष्ठः- - भक्तिमें निष्ठा रखने वाले
भव हो जाइये ॥ ७९ ॥

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोक धर्मान् सेवस्व साधु पुरुषान् जहि काम तृष्णां अन्यस्य दोष गुण चिन्तनं आशु मुक्त्वा सेवा कथा रसं अहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥

सततं - निरन्तर
धर्मं भजस्व - (भक्तिरूप) धर्मका सेवन कीजिए,
लोक धर्मान् - लौकिक धर्मों (कर्तव्यों) को
त्यज - त्याग दीजिये,
साधु पुरुषान् - सत्पुरुषोंका
सेवस्व - सेवन (सत्संग) कीजिए,
काम तृष्णां- - कामकी तृष्णाको नष्ट
जहि कर दीजिए
अन्यस्य दोष - दूसरेके दोषों-गुणोंका
गुण
चिन्तनं- - चिन्तन करना शीघ्र
आशु मुक्त्वा त्यागकर
सेवा कथारसं - भगवत्-सेवा तथा (भगवत्) कथाके रसको
त्वं नितरां- - आप भली प्रकार पान
पिब करें ॥ ८१ ॥

सूत उवाच-१

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं
विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥

एवं सुत उक्ति वशगः अपि गृहं विहाय यातः वनं स्थिरमतिः गत षष्टि वर्षः युक्तः हरेः अनुदिनं परिचर्यया असौ श्रीकृष्णं आप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥

एवं सुत उक्ति	- इस प्रकार पुत्रके वचनसे	**हरेः युक्तः**	- श्रीहरिमें लगकर
वशगः अपि	- प्रभावित होकर भी	**परिचर्यया**	- उनकी सेवा-पूजा तथा
गतषष्टि वर्षः	- साठ वर्षकी आयु बीतजानेपर	**अनुदिनं नियतं**	- प्रतिदिन नियमित रूपसे
गृहं विहाय	- घर छोड़कर	**दशमस्य पाठात्**	- दशमस्कन्धका पाठ करनेसे
स्थिर मतिः	- स्थिर बुद्धिसे	**असौ श्रीकृष्णं-आप**	- इसने श्रीकृष्णको प्राप्त कर लिया ॥ ८१ ॥
वनं यातः	- वनमें जाकर		

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये
विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच-

पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ।
क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

पितरि उपरते तेन जननी ताडिता भृशं क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

पितरि उपरते	- पिताके विरक्त होकर चले जानेपर	**ब्रूहि वित्तं**	- 'बतला धन
		क्व तिष्ठते	- कहां है,
तेन	- उस (धुन्धुकारी) ने	**न चेत्**	- यदि नहीं (बतलाती) तो
जननी भृशं	- माताको बहुत	**लत्तया**	- जलती लकड़ीसे
ताडिता	- पीटा (और बोला)	**हनिष्ये**	- मारूँगा' ॥ १ ॥

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ।
कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥

इति तत् वाक्य संत्रासात् जनन्या पुत्र दुःखतः कूपे पातः कृतः रात्र्यां तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥

इति तत् वाक्य	- इस प्रकार उसकी बातके	**रात्र्यां कूपे**	- रात्रिमें कुएं में
		पातः कृतः	- कूद पड़ी
सन्त्रासात्	- भयसे	**तेन सा**	- इससे वह
पुत्र दुःखतः	- पुत्रसे दुःखी होकर	**निधनं गता**	- मर गयी ॥ २ ॥
जनन्या	- माता		

गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ।
न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः ॥ ३ ॥

गोकर्णः तीर्थयात्रा अर्थं निर्गतः योग संस्थितः न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी न अपि बान्धवः ।। ३ ।।

योग संस्थितः	- योगमें पूर्ण स्थित	**तस्य न सुखं**	- उनके लिए न सुख था,
गोकर्णः	- गोकर्ण	**न दुःखं**	- न दुःख,
तीर्थयात्रा अर्थं	- तीर्थयात्रा करनेके लिए	**न वैरी**	- न (कोई) शत्रु था,
निर्गतः	- निकल गये,	**न बान्धवः-**	- न सम्बन्धी ही था
		अपि	।। ३ ।।

धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ।
अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ।। ४ ।।

धुन्धुकारी गृहे तिष्ठत् पञ्च पण्यवधूवृतः अति उग्र कर्म कर्ता च तत् पोषण विमूढधीः ।। ४ ।।

पञ्च पण्यवधू	- पांच वाजारू वेश्याओंसे	**अति उग्रकर्म**	- अत्यन्त उग्रकर्म
वृतः धुन्धुकारी	- घिरा धुन्धुकारी	**कर्ता च**	- करते हुए ही
तत् पोषण	- उनके पोषणमें	**गृहे तिष्ठत्**	- घरमें रहने लगा ।।४ ।
विमूढधीः	- अत्यन्त मूर्ख बुद्धि होकर		

एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ।
तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ।। ५ ।।

एकदा कुलटाः ताः तु भूषणानि अभिलिप्सवः तत् अर्थं निर्गतः गेहात् काम अन्धः मृत्युं अस्मरन् ।। ५ ।।

एकदा तु	- एक बार तो	**तत् अर्थं**	- उसके लिए
ताः कुलटाः	- उन व्यभिचारिणियोंने	**काम अन्धः**	- (वह) कामसे अन्धा हुआ
भूषणानि	- आभूषणोंकी	**मृत्युं अस्मरन्**	- मृत्युको भूलकर
अभिलिप्सवः	- तीव्र अभिलाषा प्रगटकी,	**गेहात् निर्गतः**	- घरसे निकल गया ।।५।।

यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ।
ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ।। ६ ।।

यतः ततः च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनः गतः ताभ्यः अयच्छत् सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ।। ६ ।।

यतः ततः च - इधर उधरसे
वित्तं संहृत्य - धन चुराकर
पुनः वेश्मं गतः - फिर घर आगया,
ताभ्यः सुवस्त्राणि -उन (स्त्रियों) को उत्तम वस्त्र
च कियन्ति -तथा कितने ही
भूषणानि अयच्छत् -आभूषण दिये ।।६।।

बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ।
चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ।। ७ ।।

बहु वित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यः व्यचारयन् चौर्यं करोति असौ नित्यं अतः राजा ग्रहीष्यति ।। ७ ।।

बहु वित्त चयं - बहुत धनराशि
दृष्ट्वा नार्यः - देखकर (उन) स्त्रियोंने
रात्रौ व्यचारयन् - रात्रिमें (परस्पर) विचार किया
असौ नित्यं - 'यह प्रतिदिन
चौर्यं करोति - चोरी करता है,
अतः राजा - अतः (एक दिन) राजा
ग्रहीष्यति - पकड़ेगा ।। ७ ।।

वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ।
अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ।। ८ ।।

वित्तं हृत्वा पुनः च एनं मारयिष्यति निश्चितं अतः अर्थ गुप्तये गूढ़ं अस्माभिः किं न हन्यते ।। ८ ।।

वित्तं हृत्वा - धन छीनकर
पुनः एनं च - फिर इसको भी
निश्चितं- - निश्चित ही है
मारयिष्यति कि मार देगा,
अतः अर्थ- - अतः धनकी रक्षाके लिए
गुप्तये
अस्माभिः - हम लोगों द्वारा
गूढ़ं किं- - गुप्तरूपसे क्यों न मार
न हन्यते दिया जाय ।। ८ ।।

निहत्यैनं गृहीत्वार्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ।
इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं सम्बद्ध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥

निहत्य एनं गृहीत्वा अर्थं यास्यामः यत्र कुत्रचित् इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं सम्बद्ध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥

एनं निहत्य - इसको मारकर
अर्थं गृहीत्वा - धन लेकर
यत्र कुत्रचित् - चाहे जहां कहीं
यास्यामः - (हम) चली जायेंगी'
ता इति - उन्होंने इस प्रकार
निश्चयं कृत्वा - निश्चय करके
सुप्तं रश्मिभिः - (उस) सोतेको रस्सियोंसे
सम्बद्ध्य - जकड़कर बाँधकर ॥९॥

पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ।
त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाभवन् ॥ १० ॥

पाशं कण्ठे निधाय अस्य तत् मृत्युं उपचक्रमुः त्वरितं न ममार असौ चिन्ता युक्ताः तदा अभवन् ॥ १० ॥

अस्य कण्ठे - इसके गलेमें
पाशं निधाय - फन्दा डालकर
तत् मृत्युं - उसको मारनेका
उपचक्रमुः - उपक्रम करने लगीं (किन्तु)
असौ त्वरितं - यह शीघ्र
न ममार - नहीं मरा
तदा चिन्ता युक्ताः - तब चिन्तायुक्त (चिन्तित)
अभवन् - होगयीं ॥ १० ॥

तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ।
अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥

तप्त अंगार समूहान् च तत् मुखे हि विचिक्षिपुः अग्निज्वाला अति दुःखेन व्याकुलः निधनं गतः ॥ ११ ॥

तप्त अंगार - जलते अंगारके
समूहान् च - समूह ही
तत् मुखे हि - उसके मुखपर ही
विचिक्षिपुः - सब कहीं डाल दिया
अग्निज्वाला - आगकी लपटोंकी
अति दुःखेन - अत्यन्त पीड़ासे
व्याकुलः - व्याकुल होकर
निधनं गतः - मर गया ॥ ११ ॥

तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ।
न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥

तं देहं मुमुचुः गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः न ज्ञातं तत् रहस्यं तु केन अपि इदं तथा एव च ॥ १२ ॥

तं देहं - उस (मृत) शरीरको
गर्ते मुमुचुः - गड्डेमें डाल दिया
स्त्रियः प्रायः - स्त्रियां प्रायः
साहसिकाः - दुस्साहसी होती हैं,
तथा एव च - (जैसे उसका जन्म-रहस्य) उसी प्रकारही
तत् रहस्यं तु - उसका (मरण) रहस्य भी
इदं केन अपि - यह किसी ने भी
न ज्ञातं - नहीं जाना ॥ १२ ॥

लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ।
आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥

लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियः हि नः आगमिष्यति वर्षे अस्मिन् वित्त लोभ विकर्षितः ॥ १३ ॥

लोकै पृष्टा - लोगोंके पूछनेपर
वदन्ति स्म - कहती थीं-
वित्तलोभ - 'धनके लोभसे
विकर्षितः - अत्यन्त आकर्षित
नः प्रियः - हमारे प्रियतम
हि दूरं यातः - क्योंकि दूर चले गये हैं
अस्मिन् वर्षे - इसी वर्ष
आगमिष्यति - आजायंगे' ॥ १३ ॥

स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद्बुधः ।
विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥

स्त्रीणां न एव तु विश्वासः दुष्टानां कारयेत् बुधः विश्वासे यः स्थितः मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥

बुधः दुष्टानां	- बुद्धिमान पुरुष दृष्टा	**यः मूढः**	- जो मूर्ख
स्त्रीणां तु	- स्त्रियोंका तो	**विश्वासे स्थितः**	- (उनके) विश्वासपर रहता है
विश्वासः न एव	- विश्वास नहीं ही		
कारयेत्	- करे,	**स दुःखैः- परिभूयते**	- वह दुःखों द्वारा दबा लिया जाता है ॥१४॥

सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥

सुधामयं वचः यासां कामिनां रसवर्धनं हृदयं क्षुर धारा आभं प्रियः कः नाम योषिताम् ॥ १५ ॥

कामिनां	- कामुक पुरुषोंका	**हृदयं**	- (परन्तु) हृदय
रसवर्धनं	- रस बढ़ाने वाली	**क्षुरधारा आभं**	- छुरेकी धारके समान (तीक्ष्ण होता) है
यासां वचः	- जिनकी वाणी		
सुधामयं	- अमृतमयी होती है	**योषितां**	- (दुष्टा) स्त्रियोंका
		कः नाम प्रियः	- भला कौन प्यारा है ॥ १५ ॥

संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ।
धुन्धुकारी बभूवाथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥

संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहु भर्तृकाः धुन्धुकारी बभूव अथ महान् प्रेतः स्वकर्मतः ॥ १६ ॥

बहु भर्तृकाः	- बहुत पतियों वाली	**अथ धुन्धुकारी**	- फिर धुन्धुकारी
ताः कुलटा	- वे कुलटायें	**स्वकर्मतः**	- अपने कर्मोंसे
वित्तं सहृत्य-	- धन समेटकर	**महान् प्रेतः**	- घोर प्रेत
याताः	चली गयीं,	**बभूव**	- हुआ ॥ १५ ॥

वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ।
शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥

वात्यारूप धरः नित्यं धावन् दश दिशः अन्तरं शीत आतप परिक्लिष्टः निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥

दश दिशः- - दसो दिशाओंके बीचमें
अन्तरं
वात्यारूप धरः - बबण्डरका रूप रखकर
नित्यं धावन् - सदा दौड़ता रहता था,
निराहारः - उपवासा,
पिपासितः - प्यासा,
परिक्लिष्टः - चारों ओर क्लेश पाता था ॥ १७ ॥

न लेभे शरणं क्वापि हा दैवेति मुहुर्वदन् ।
कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥

न लेभे शरणं क्व अपि हा दैव इति मुहुः वदन् कियत् कालेन गोकर्णः मृतं लोकात् अबुध्यत ॥ १८ ॥

हा दैव इति - 'हा दैव !' इस प्रकार
मुहुः वदन् - बार-बार कहता हुआ
क्व अपि शरणं - कहीं भी ठहरनेका स्थान
न लेभे - नहीं पा सका,
कियत् कालेन - कुछ समयमें
गोकर्णः लोकात् - गोकर्णने लोगों द्वारा
मृतं अबुध्यत - (उसे) मर गया जान लिया ॥ १८ ॥

अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ।
यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धमवर्तयत् ॥ १९ ॥

अनाथं तं विदित्वा एव गया श्राद्धं अचीकरत् यस्मिन् तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धं अवर्तयत् ॥ १९ ॥

तं अनाथं एव	- उसको अनाथ ही	**यस्मिन् तीर्थे तु**	- जिस तीर्थमें भी
विदित्वा	- जानकर	**संयाति**	- पहुँचते थे
गया श्राद्धं	- गयामें (उसके लिए) श्राद्ध	**तत्र श्राद्धं**	- वहां श्राद्ध
		अवर्तयत्	- करते थे ॥ १९ ॥
अचीकरत्	- किया,		

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ।
रात्रौ गृहांगणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं सम उपेयिवान् रात्रौ गृह अंगणे स्वप्तुं आगतः अलक्षितः परैः ॥ २० ॥

स गोकर्णः	- वे गोकर्ण	**रात्रौ परैः-**	- रातमें दूसरों द्वारा
एवं भ्रमन्	- इस प्रकार घूमते हुए	**अलक्षितः**	न देखे जाकर
स्वपुरं	- अपने नगरके	**गृह अंगणे-**	- (अपने) घरके आंगनमें
सम उपेयिवान्	- समीप आगये	**स्वप्तुं**	सोने
		आगतः	- आगये ॥ २० ॥

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ।
निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवं निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥

स धुन्धुकारी	- उस धुन्धुकारीने	**निशीथे**	- आधी रातको
तत्र स्व बान्धवं	- वहां अपने भाईको	**महा रौद्रतरं**	- अत्यन्त भयानकतम
सुप्तं विज्ञाय	- सोता जानकर	**वपुः दर्शयामास**	- शरीर दिखलाया ॥२१॥

सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ।
सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥

सकृत् मेषः सकृत् हस्ती सकृत् च महिषः अभवत् सकृत् इन्द्रः सकृत् च अग्निः पुनः च पुरुषः अभवत् ॥ २२ ॥

सकृत् मेषः	- कभी भेड़ा,	**सकृत इन्द्रः**	- कभी इन्द्र,
सकृत् हस्ती	- कभी हाथी,	**सकृत् अग्निः**	- कभी अग्नि,
च सकृत महिषः	- और कभी भैंसा	**च पुनः पुरुषः**	- तथा फिर पुरुष
अभवत्	- होगया,	**अभवत्**	- होगया ॥ २२ ॥

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ।
अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥

वैपरीत्यं इदं दृष्ट्वा गोकर्णः धैर्य संयुतः अयं दुर्गतिकः कः अपि निश्चित्य अथ तं अब्रवीत् ॥ २३ ॥

इदं वैपरीत्य	- यह विपरीतता	**निश्चित्य**	-निश्चय करके कि
दृष्ट्वा धैर्य-	- देखकर धैर्यपूर्वक	**अयं कः अपि**	-यह कोई भी
संयुतः		**दुर्गतिकः**	-दुर्गति प्राप्त जीव है
गोकर्णः	- गोकर्णने	**अथ तं अब्रवीत्**	-फिर उससे बोले ॥२३॥

गोकर्ण उवाच-

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ।
किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥

कः त्वं उग्रतरः रात्रौ कुतः यातः दशां इमां किं वा प्रेतः पिशाचः वा राक्षसः असि इति शंस नः ॥ २४ ॥

रात्रौ उग्रतरः	- रात्रिमें अत्यन्त भयानक	**किं प्रेतः-**	- क्या प्रेत अथवा पिशाच
त्वं कः	- तुम कौन हो ?	**वा पिशाचः**	
इमां दशां-	- इस अवस्थाको	**वा राक्षसः असि**	- या राक्षस हो,
कुतः यातः	कैसे पहुँचे ?	**इति नः शंस**	- यह हमें बलताओ ॥ २४ ॥

सूत उवाच-

एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ।
अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥

एवं पृष्टः तदा तेन रुरोद उच्चैः पुनः पुनः अशक्तः वचन उच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥

एवं तेन पृष्टः - इस प्रकार उनके द्वारा पूछनेपर
तदा उच्चैः - उस समय (वह) उच्चस्वरसे
पुनः पुनः रुरोद - बार-बार रोने लगा,
वचन उच्चारे - शब्दोच्चारणमें
अशक्तः - असमर्थ होनेके कारण
संज्ञामात्रं ह - संकेतमात्र ही
चकार - किया ॥ २५ ॥

ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदैरयत् ।
तत्सेकहतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥

ततः अञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णः तं उदैरयत् तत् से कहत पापः असौ प्रवक्तुं उपचक्रमे ॥ २६ ॥

ततः अञ्जलौ - तब अञ्जलिमें
जलं कृत्वा - जल लेकर
गोकर्णः तं - गोकर्णने उसे
उदैरयत् - (मन्त्र पढ़कर) सींचा,
तत् से -उनके सींचनेसे
कहत पापः असौ -पाप नष्ट होनेसे इसने
प्रवक्तुं उपचक्रमे -बोलना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥

प्रेत उवाच-

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥

अहं भ्राता त्वदीयः अस्मि धुन्धुकारी इति नामतः स्वकीयेन एव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥

धुन्धुकारी - धुन्धुकारी	स्वकीयेन एव दोषेण- अपने ही दोषसे
इति नामतः - इस नामवाला	मया ब्रह्मत्वं नाशितं - मैंने (अपना)
अहं त्वदीयः - मैं आपका	ब्राह्मणत्व नष्ट
भ्राता अस्मि - भाई हूँ,	कर दिया ॥२७॥

कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्तिनः ।
लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥

कर्मणो न अस्ति संख्या मे महा अज्ञाने विवर्तिनः लोकानां हिंसकः सः अहं स्त्रीभिः दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥

महा अज्ञाने - घोर अज्ञानमें	सः अहं- - वह मैं लोगोंका
विवर्तिनः - चक्कर काटने वाले	लोकानां हिंसकः हत्यारा
मे कर्मणो - मेरे दुष्कर्मोंकी	स्त्रीभिः दुःखेन - स्त्रियों द्वारा बहुत
संख्या न अस्ति - संख्या नहीं है	दुःख देकर
	मारितः - मारा गया ॥ २८ ॥

अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ।
वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९ ॥

अतः प्रेतत्वं आपन्नः दुर्दशां च वहामि अहं वात आहारेण जीवामि दैव आधीन फल उदयात् ॥ २९ ॥

दैव आधीन - दैववश	च दुर्दशां - तथा दुर्दशा
फल उदयात् - (अपने कर्मोंका)	अहं वहामि - मैं ढो रहा हूँ
फलोदय होनेसे	(दुर्दशामें पड़ा हूँ)
अतः प्रेतत्वं- - अब प्रेतत्वको	वात आहारेण - केवल वायु आहारसे
आपन्नः प्राप्त हुआ हूँ,	(श्वांस लेकर)
	जीवामि - जीवित हूँ ॥ २९ ॥

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ।
गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३० ॥

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातः मां आशु मोचय ।

अहो कृपासिन्धो	- हे कृपासिन्धु !	**मां आशुमोचय**	- मुझे शीघ्र (प्रेतयोनिसे)
बन्धो भ्रातः	- सम्बन्धी, भाई !		मुक्त करो ।

सूत उवाच-१

गोकर्णः वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यं अथ अब्रवीत् ॥ ३० ॥

वचनं श्रुत्वा	- (उसकी) बात सुनकर	**तस्मै वाक्यं**	- उससे यह बात
अथ गोकर्णः	- फिर गोकर्ण ने	**अब्रवीत्**	- कहा ॥ ३० ॥

गोकर्ण उवाच-

त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः ।
तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥

त्वत् अर्थं तु गया पिण्डं मया दत्तः विधानतः तत् कथं न एव मुक्तः असि मम आश्चर्यं इदं महत् ॥ ३१ ॥

त्वत् अर्थं तु	- तुम्हारे लिए तो	**तत् कथं न एव**	- उससे कैसे नहीं ही
मया विधानतः	- मैंने विधिपूर्वक		
गया पिण्डं दत्तः	- गयामें पिण्डदान किया,	**मुक्तः असि**	- मुक्त होगये
		मम इदं महत्	- मुझे यह महान
		आश्चर्यं	- आश्चर्य है ॥३१॥

गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ।
किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

गया श्राद्धात् न मुक्तिः चेत् उपायः न अपरः तु इह किं विधेयं मया प्रेत तत् त्वं वद स विस्तरम् ॥ ३२ ॥

गया श्राद्धात्	- गयामें श्राद्ध करनेसे	**मया किं विधेयं**	- मुझे क्या करना चाहिए
चेत् मुक्तिः न	- यदि मुक्त नहीं हुए हो तो	**प्रेत तत् त्वं**	- प्रेत ! उसे तुम
इह तु अपरः	- इस लोकमें तो दूसरा	**सविस्तरं वद**	- विस्तारपूर्वक बतलाओ ॥ ३२ ॥
उपायः न	- उपाय नहीं है		

प्रेत उवाच-

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ।
उपायमपरं कंचित्त्वं विचारय साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

गया श्राद्ध शतेन अपि मुक्तिः मे न भविष्यति उपायं अपरं कंचित् त्वं विचारय साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

शतेन गया-श्राद्ध अपि	- सौ गया श्राद्धसे भी	**साम्प्रतं त्वं**	- इस समय तुम
मे मुक्तिः	- मेरी मुक्ति	**कंचित् अपरं**	- कोई दूसरा
न भविष्यति	- नहीं होगी१	**उपायं विचारय**	- उपाय सोचो ॥ ३३ ॥

सूत उवाच-२

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ।
शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥

---

१. इससे गयाकी महिमा कम नहीं हुई और न प्रेतकी बात ही असत्य है । गोकर्ण तो आत्मदे के क्षेत्रज पुत्र हैं; किन्तु धुन्धुकारी न उनका क्षेत्रज पुत्र था, न औरस, अतः गोकर्णके किये श्राद्धका फल उसे मिलना ही नहीं है ।

२. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

इति तत् वाक्यं आकर्ण्य गोकर्णः विस्मयं गतः ।

इति तत् वाक्यं - इस प्रकार उसकी बात
आकर्ण्य - सुनकर
गोकर्णः - गोकर्ण
विस्मयं गतः - चकित होकर (बोले)

गोकर्ण उवाच-१

शत श्राद्धैः न मुक्तिः चेत् असाध्यं मोचनं तव ।। ३४ ।।

चेत् शत श्राद्धैः - यदि सौ श्राद्धोंसे भी
मुक्तिः न - (तुम्हारी) मुक्ति नहीं होगी तो
तव मोचनं - तुम्हें मुक्त करना
असाध्यं - असाध्य है ।। ३४ ।।

इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ।
त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ।। ३५ ।।

इदानीं तु निजं स्थानं आतिष्ठ प्रेत निर्भयः त्वत् मुक्ति साधकं किञ्चित् आचरिष्ये विचार्य च ।। ३५ ।।

इदानीं तु प्रेत - इस समय तो प्रेत !
निर्भयः निजं-स्थानं - निर्भय होकर अपने स्थानपर
आतिष्ठ - बने रहो,
त्वत् मुक्ति साधकं - तुम्हें मुक्त करने वाला
विचार्य च - विचार करके ही
किञ्चित् आचरिष्ये - कुछ करूँगा ।।३५।।

सूत उवाच-२

धुन्धुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ।
गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ।। ३६ ।।

धुन्धुकारी निजस्थानं तेन आदिष्टः ततः गतः गोकर्णः चिन्तयामास तां रात्रिं न तत् अध्यगात् ।। ३६ ।।

१-२. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

तेन आदिष्टः	- उनके द्वारा आदेश पाकर	**गोकर्णः**	- गोकर्ण
धुन्धुकारी	- धुन्धुकारी	**चिन्तयामास**	- सोचने लगे (किन्तु)
ततः निज	- तब अपने	**तां रात्रिं तत्**	- उस रातमें वह (उपाय)
स्थानं गतः	- स्थानपर गया,	**न अध्यगात्**	- नहीं प्राप्त हुआ ।।३६।।

प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ।
तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ।। ३७ ।।

प्रातः तं आगतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः तत् सर्वं कथितं तेन यत् जातं च यथा निशि ।। ३७ ।।

प्रातः तं आगतं	- सवेरे उनको आया	**तेन तत् सर्वं**	- उन्होंने वह सब
दृष्ट्वा लोकाः	- देखकर लोग	**यत् यथा-**	- जो जैसे रातमें हुआ था
प्रीत्या समागताः	- प्रसन्न होकर (उनके) समीप आये,	**निशिजातं**	
		कथितं	- कहा ।। ३७ ।।

विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ।
तन्मुक्तिं नैव तेऽपश्यन् पश्यन्तः शास्त्रसंचयान् ।। ३८ ।।

विद्वान् सः योगनिष्ठाः च ज्ञानिनः ब्रह्मवादिनः तत् मुक्तिं न एव ते अपश्यन् पश्यन्तः शास्त्र संचयान् ।। ३८ ।।

विद्वान् सः योगनिष्ठाः	- विद्वान्, योगनिष्ठ	**ते शास्त्र संचयान्**	- वे शास्त्र समूह
		पश्यन्तः तत् मुक्तिं	- देखते हुए उस (प्रेत) की मुक्ति (का उपाय)
च ज्ञानिनः ब्रह्मवादिनः	- तथा ज्ञानी, वेदवादी	**न एव अपश्यन्**	- नहीं ही देख सके ।। ३८ ।।

ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ।
गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ।। ३९ ।।

ततः सर्वैः सूर्य वाक्यं तत् मुक्तौ स्थापितं परं गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्य वेगस्य वै तदा ॥ ३९ ॥

ततः सर्वैः - तब सबने	**परं स्थापितं** - श्रेष्ठ निश्चय किया,
तत् मुक्तौ - उस (प्रेत) की मुक्तिके लिए	**तदा गोकर्णः** - तब गोकर्णने
सूर्य वाक्यं - सूर्य नारायणकी आज्ञा लेना	**वै सूर्य वेगस्य** - निश्चय सूर्यकी गतिका
	स्तम्भनं चक्रे - स्तम्भन किया (रोका) ॥ ३९ ॥

तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ।
तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥ ४० ॥

तुभ्यं नमः जगत् साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्ति हेतुकं तत् श्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटं इति अभ्य भाषत ॥ ४० ॥

जगत् साक्षिन् - (बोले) 'जगतके साक्षी	**तत् श्रुत्वा** - यह सुनकर
तुभ्यं नमः - आपको नमस्कार !	**दूरतः सूर्यः** - दूरसे ही सूर्यने
मुक्ति हेतुकं - (प्रेतकी) मुक्तिका उपाय	**इति स्फुटं** - यह स्पष्ट
मे ब्रूहि - मुझे बतलाइये !'	**अभ्य भाषत** - उनसे कहा ॥ ४० ॥

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु ।
इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवतात् मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु इति सूर्य वचः सर्वैः धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवतात् - 'श्रीमद्भागवतसे	**इति धर्मरूपं** - इस प्रकार धर्म स्वरूप
मुक्तिः - (उसकी) मुक्ति होगी,	**सूर्य वचः** - सूर्यकी वाणी
सप्ताहं वाचनं- - सप्ताह-वाचन करो !'	**सर्वैः तु विश्रुतं-** सबने ही भली प्रकार
कुरु	सुनी ॥ ४१ ॥

सर्वेऽब्रुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ।
गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ ४२ ॥

सर्वे अब्रुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं तु इदं गोकर्णः निश्चयं कृत्वा वाचन अर्थं प्रवर्तितः ॥ ४२ ॥

सर्वे अब्रुवन्	- सभी लोग बोले-	**गोकर्णः**	- गोकर्ण
इदं तु सुकरं	- 'यह तो करना सरल है,	**निश्चयं कृत्वा**	- निश्चय करने
		वाचन अर्थं	- (सप्ताह) वाचनके लिए
प्रयत्नेन कर्तव्यं	- प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए ।'	**प्रवर्तितः**	- प्रवृत्त हुए ॥ ४२ ॥

तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ।
पङ्ग्वन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥ ४३ ॥

तत्र संश्रवण अर्थाय देशग्रामात् जनाः ययुः पंगु अन्ध वृद्ध मन्दाः च ते अपि पाप क्षयाय वै ॥ ४३ ॥

तत्र संश्रवण-	- वहाँ श्रवण	**पंगु अन्धवृद्ध**	- पंगु, अन्धे, वृद्ध,
अर्थाय	करनेके लिए	**मन्दाः ते अपि**	- दुर्बल थे वे भी
देशग्रामात्	- प्रदेशोंके ग्रामोंसे	**वै पाप क्षयाय**	- निश्चय पाप-नाश करने
जनाः च	- लोग तथा	**ययुः**	- आये ॥ ४३ ॥

समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ।
यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ ४४ ॥

समाजः तु महान् जातः देव विस्मय कारकः यदा एव आसनं आस्थाय गोकर्णः अकथयत् कथाम् ॥ ४४ ॥

देव विस्मय- - देवताओंको आश्चर्यमें
कारकः डालने वाला
महान् समाजः - महान् समाज
तु जातः - तो एकत्र होगया,
एव यदा - निश्चय जब
आसनं आस्थाय - (व्यास) आसनपर बैठकर
गोकर्णः कथां - गोकर्ण कथा
अकथयत् - करने लगे ॥ ४४ ॥

स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ।
सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ ४५ ॥

स प्रेतः अपि तदा आयातः स्थानं पश्यत् इतः ततः सप्तग्रन्थि युतं तत्र पश्यत् कीचकं उत्थितम् ॥ ४५ ॥

तदा स- - उस समय वह प्रेत भी
प्रेतः अपि
आयातः - आकर
इतः ततः - उधर उधर
स्थानं पश्यत् - (अपने बैठनेका) स्थान देखने लगा
तत्र सप्तग्रन्थियुतं - वहाँ सात गाँठ युक्त
उत्थितं कीचकं - खड़ा बांस
पश्यत् - (उसने) देखकर ॥ ४५ ॥

तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ।
वातरूपी स्थिति कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ ४६ ॥

तत् मूल छिद्रं आविश्य श्रवण अर्थं स्थितः हि असौ वात रूपी स्थितिं कर्तुं अशक्तः वंशं आविशत् ॥ ४६ ॥

हि वात रूपी - क्योंकि वायुरूप था,
स्थितिं कर्तुं - (अपनेको) स्थिर करनेमें
अशक्तः - असमर्थ होकर
वंशं आविशत् - (उस) बांसमें प्रवेश कर गया,
तत् मूल छिद्रं - उसकी जड़के छिद्रमें
आविश्य - प्रवेश करके
श्रवण अर्थं - श्रवण करनेके लिए
असौ स्थितः - यह बैठ गया ॥४६॥

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ।
प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ ४७ ॥

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः प्रथमः स्कन्धतः स्पष्टं आख्यानं धेनुजः अकरोत् ॥ ४७ ॥

सः धेनुजः	- वह गोकर्णजी	**प्रथमःस्कन्धतः**	- प्रथम स्कन्धसे
वैष्णवं ब्राह्मणं	- वैष्णव ब्राह्मणको	**स्पष्टं आख्यानं**	- स्पष्ट प्रवचन
मुख्यं श्रोतारं	- मुख्य श्रोता	**अकरोत्**	- करने लगे ॥ ४७ ॥
परिकल्प्य	- बनाकर		

दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ।
वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ ४८ ॥

दिन अन्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह वंश एक ग्रन्थि भेदः अभूत् स शब्दः पश्यतां सताम् ॥ ४८ ॥

दिन अन्ते	- सायंकाल	**सतां पश्यतां**	- सभासदोंके देखते हुए
गाथा रक्षिता	- कथाको विश्राम दिया गया	**स शब्दः**	- शब्दके साथ
		वंश एक ग्रन्थि	- (उस) बांसकी एक गांठ
तदा चित्रं-	- उस समय निश्चय	**भेदः अभूत्**	- फट गयी ॥ ४८ ॥
बभूव ह	आश्चर्य हुआ		

द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ।
तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ॥ ४९ ॥

द्वितीय अह्नि तथा सायं द्वितीय ग्रन्थि भेदनं तृतीये अह्नि तथा सायं तृतीय ग्रन्थि भेदनम् ॥ ४९ ॥

तथा द्वितीये अह्नि - इसी प्रकार दूसरे दिन
सायं द्वितीय ग्रन्थि - सायंकाल दूसरी गांठ
भेदनं - फटी और
तथा तृतीय अह्नि - इसी प्रकार तीसरे दिन
सायं तृतीय ग्रन्थि - सायंकाल तीसरी गांठ
भेदनं - फटी ॥ ४९ ॥

एवं सप्तदिनैश्चैव सप्तग्रन्थिविभेदनम् ।
कृत्वा स द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ ५० ॥

एवं सप्त दिनैः च एव सप्त ग्रन्थि विभेदनं कृत्वा स द्वादश स्कन्ध श्रवणात् प्रेततां जहौ ॥ ५० ॥

एवं सप्त दिनैः - इसी प्रकार सातों दिनों
च एव- - में ही सातों गाठोंको
सप्त ग्रन्थि
विभेदनं कृत्वा - फाड़कर
द्वादश स्कन्ध - बारहों स्कन्धोंका
श्रवणात् स - श्रवण करनेसे उसने
प्रेततां जहौ - प्रेतत्व नष्ट कर दिया
॥ ५० ॥

दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ।
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ५१ ॥

दिव्य रूप धरः जातः तुलसीदाम मण्डितः पीतवासा घनश्यामः मुकुटी कुण्डल अन्वितः ॥ ५१ ॥

दिव्यरूप धरः - दिव्यरूप धारी
तुलसीदाम मण्डितः - तुलसीकी मालाओंसे विभूषित
पीतवासा - पीताम्बर धारी
घनश्यामः - मेघके समान श्यामवर्ण
मुकुटी - मुकुटधारी
कुण्डल- - कुण्डलयुक्त होगया
अन्वितः जातः ॥ ५१ ॥

ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ।
त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ ५२ ॥

ननाम भ्रातरं सद्यः गोकर्ण इति च अब्रवीत् त्वया अहं मोचितः बन्धो कृपया प्रेत कश्मलात् ॥ ५२ ॥

सद्यः भ्रातरं	- तुरन्त भाई	**बन्धो त्वया**	- 'भाईः तुम्हारी
गोकर्णं ननाम	- गोकर्णको नमस्कार करके	**कृपया अहं**	- कृपासे मैं
		प्रेत कश्मलात्	- प्रेतत्वके कष्टसे
इति च अब्रवीत्	- इस प्रकार बोला भी	**मोचितः**	- 'मुक्त कर दिया गया ॥ ५२ ॥

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ ५३ ॥

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीड़ा विनाशिनी सप्ताहः अपि तथा धन्यः कृष्णलोक फलप्रदः ॥ ५३ ॥

प्रेत पीड़ा	- प्रेत-पीड़ा	**तथा कृष्णलोक**	- इसी प्रकार श्रीकृष्णका धामरूप
विनाशिनी	- सर्वथा नष्ट करनेवाली	**फल प्रदः**	- फल देने वाला
भागवती वार्ता	- भागवतकी कथा	**सप्ताहः-**	- सप्ताह भी धन्य है
धन्या	- धन्य है,	**अपि धन्यः**	॥ ५३ ॥

कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ ५४ ॥

कम्पन्ते सर्व पापानि सप्ताह श्रवणं स्थिते अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा च इयं करिष्यति ॥ ५४ ॥

सप्ताह श्रवणे	- सप्ताह-श्रवण करने	**इयं कथा च**	- यह कथा तो
स्थिते	- बैठनेपर	**सद्यः अस्माकं**	- तुरन्त हम (प्रेत) लोगोंका
सर्व पापानि	- सब पाप		
कम्पन्ते	- थर्रा उठते हैं,	**प्रलयं-करिष्यति**	- प्रलय (विनाश) कर देगी ॥ ५४ ॥

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ।
श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ ५५ ॥

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाक् मनः कर्मभिः कृतं श्रवणं विदहेत् पापं पावकः समिधः यथा ॥ ५५ ॥

वाक् मनः	- वाणी, मन,	**श्रवणं-**	- (भागवत) श्रवण (वैसे)
कर्मभिः कृतं	- कर्मसे किया हुआ	**विदहेत्**	पूरा भस्म कर देता है
आर्द्रं	- गीला (तत्काल किया)	**यथा पावकः**	- जैसे अग्नि
शुष्कं	- सूखा (पुराना किया)	**समिधः**	- समिधाओं (सूखी लकड़ियों)
लघु स्थूलं पापं	- छोटे-बड़े पापोंको		को ॥ ५५ ॥

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि ।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ५६ ॥

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिः देव संसदि अकथा श्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ५६ ॥

देव संसदि	- देवताओंकी सभामें	**अस्मिन् भारतेवर्षे**	- इस भारत वर्षमें
सूरिभिः	- विद्वानों द्वारा	**जन्म वै निष्फलं**	- जन्म लेना निश्चय
अकथा श्राविणां	- कथा-श्रवण न		निष्फल
	करनेवालोंका	**कीर्तितं**	- कहा जाता है ॥५६॥

किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ।
अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ ५७ ॥

किं मोहतः रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्र कथां विना ॥ ५७ ॥

शुक शास्त्र	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**बलीयसा**	- बलवान
कथां विना	- कथाके विना	**अध्रुवेण**	- विनाशवान
मोहतः रक्षितेन	- मोहसे रक्षा किये गये,	**शरीरेण किं**	- शरीरसे क्या लाभ
सुपुष्टेन	- खूब हृष्ट-पुष्ट		॥ ५७ ॥

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ ५८ ॥

अस्थि स्तम्भं स्नायुबद्धं मांस शोणित लेपितं चर्म अवनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्र पुरीषयोः ॥ ५८ ॥

अस्थिस्तम्भं - हड्डियोंके खम्भों वाला,
स्नायुबद्धं - नसोंसे बँधा,
मांस शोणित-लेपितं - मांस-रक्तसे लीपा हुआ,
चर्म अवनद्धं - चमड़ा मढ़ा
मूत्र पुरीषयोः - मूत्र-मल का
दुर्गन्धं पात्रं - (यह) दुर्गन्धित पात्र ॥ ५८ ॥

जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ ५९ ॥

जरा शोक विपाक आर्तं रोग मन्दिरं आतुरं दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षण भंगुरम् ॥ ५९ ॥

जरा शोक - बुढ़ापा एवं शोकसे
विपाकं आर्तं - परिणाममें दुःखदायी,
रोग मन्दिरं - रोगोंका मन्दिर (निवास)
आतुरं दुष्टं - व्याकुल, दुष्ट,
दुष्पूरं - जिसे भर देना कठिन है,
दुर्धरं - जिसे धारण किये रहना कठिन है,
सदोषं क्षण भंगुर - दोषयुक्त तथा क्षण भरमें नष्ट होजाने वाला ॥ ५९ ॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ।
अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ ६० ॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा अन्तं शरीरं इति वर्णितं अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतः अयं साधयेत् न हि ॥ ६० ॥

अन्तं	- अन्तमें	**अध्रुवेण**	- (इस) विनाशवानसे
कृमि विट्	- कीड़े-विष्ठा या	**ध्रुवं कर्म**	- अविनाशी कर्म
भस्म संज्ञा	- भस्म नाम पाने वालेको	**अयं कुतः**	- यह (मनुष्य) क्यों
शरीरं इति	- शरीर है, ऐसा	**न हि साधयेत्**	- नहीं सिद्ध कर लेता
वर्णितं	- वर्णन किया गया है,		॥ ६० ॥

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ।
तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ ६१ ॥

यत् प्रातः संस्कृतं च अन्नं सायं तत् च विनश्यति तदीय रस सम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ ६१ ॥

यत् अन्नं	- जो अन्न	**विनश्यति**	- बिगड़ जायगा
प्रातः च संस्कृतं	- सवेरे ही संस्कारित किया (पकाया) है	**तदीय रस**	- उसीके रससे
		सम्पुष्टे काये	- पुष्ट हुए शरीरमें
तत् च सायं	- वही शामको	**का नाम-नित्यता**	- भला नित्यता (स्थिरत्व) कैसा ॥ ६१ ॥

सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ।
अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ ६२ ॥

सप्ताह श्रवणात् लोके प्राप्यते निकटे हरिः अतः दोष निवृत्ति अर्थं एतत् एव हि साधनम् ॥ ६२ ॥

सप्ताह श्रवणात्	- सप्ताह श्रवण करनेसे	**अतः दोष**	- अतः (मनके) दोषोंको
हि हरिः	- क्योंकि श्रीहरि	**जय अर्थं**	- जीतनेके लिए
निकटे प्राप्यते	- समीप मिल जाते हैं,	**एतत् एव-साधनं**	- यही साधन है ॥६२॥

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ।
जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु जायन्ते मरणाय एव कथा श्रवण वर्जिताः ॥ ६३ ॥

कथा श्रवण	- कथा-श्रवणसे	**जन्तुषु-**	- प्राणियोंमें मच्छरोंके समान
वर्जिताः	- रहित लोग	**मशका इव**	
तोयेषु बुद्-	- जलमें बुलबुलेके समान,	**मरणाय एव**	- मरनेके लिए ही
बुदा इव		**जायन्ते**	- उत्पन्न होते हैं ॥६३॥

जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रन्थिविभेदनम् ।
चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥

जडस्य शुष्क वंशस्य यत्र ग्रन्थि विभेदनं चित्रं किमु तदा चित्त ग्रन्थि, भेदः कथा श्रवात् ॥ ६४ ॥

कथा श्रवात्	- कथा-श्रवणसे	**तदा चित्त ग्रन्थि**	- तब चित्तकी (कामादि) ग्रन्थियोंका
यत्र जडस्य	- जहां जड़	**भेदः किमु चित्रं**	- फट जाना क्या आश्चर्यकी बात है ॥ ६४ ॥
शुष्क वंशस्य	- सूखे बांसकी		
ग्रन्थि विभेदनं	- गांठें फट गयीं		

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताश्रवणे कृते ॥ ६५ ॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि सप्ताह श्रवणे कृते ॥ ६५ ॥

सप्ताह-श्रवणे कृते	- सप्ताह-श्रवण करनेपर	**सर्व संशयाः**	- सब सन्देह
हृदय ग्रन्थिः	- हृदयकी गाँठे	**छिद्यन्ते**	- कट जाते हैं,
भिद्यते	- फट जाती हैं,	**अस्य-कर्माणि च**	- इस (श्रवणकर्ता) के कर्म भी
		क्षीयन्ते	- क्षीण होजाते हैं ॥६५॥

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ।
कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ।। ६६ ।।

संसार कर्दम आलेप प्रक्षालन पटीयसि कथा तीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिः एव बुधैः स्मृता ।। ६६ ।।

संसार कर्दम	- संसाररूपी कीचड़के	**कथा तीर्थे**	- कथारूपी तीर्थमें
आलेप	- लेपको	**चित्ते स्थिते**	- चित्तके लगनेसे
प्रक्षालन-	- धो देनेमें निपुणा	**बुधैः स्मृता**	- बुद्धिमानोंने कहा है कि
पटीयसि		**मुक्तिः एव**	- मुक्ति होती ही है ।।६६।।

एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानमागमत्तदा ।
वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ।। ६७ ।।

एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानं आगमत् तदा वैकुण्ठ वासिभिः युक्तं प्रस्फुरत् दीप्ति मण्डलम् ।। ६७ ।।

तस्मिन्	- उस सभामें (उसके)	**प्रस्फुरत् दीप्ति**	- प्रभा मण्डलसे
एवं ब्रुवति वै	- इस प्रकार कहते हुए ही	**मण्डलं**	चमकता हुआ
		वैकुण्ठ वासिभिः	- वैकुण्ठवासियोंसे
तदा	- उस समय	**युक्तं विमानं**	- युक्त विमान
		आगमत्	- आगया ।। ६७ ।।

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ।
विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ।। ६८ ।।

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुली सुतः विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णः वाक्यं अब्रवीत् ।। ६८ ।।

सर्वेषां पश्यतां	- सबके देखते हुए	**वैष्णवान्**	- विष्णु भक्तोंको
धुन्धुली सुतः	- धुन्धुकारी	**वीक्ष्य गोकर्णः**	- देखकर गोकर्ण
विमानं भेजे	- विमानमें बैठ गया,	**वाक्यं अब्रवीत्**	- यह बात बोले
विमाने	- विमानमें		।। ६८ ।।

गोकर्ण उवाच-

अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ।
आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥

अत्र एव बहवः सन्ति श्रोतारः मम निर्मलाः आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत् कुतः ॥ ६९ ॥

अत्र एव बहवः	- यहीं बहुतसे	**तेषां युगपत्**	- उनके लिए एक साथ
मम निर्मलाः	- मेरे निष्पाप	**विमानानि**	- बहुतसे विमान
श्रोतारः सन्ति	- श्रोता हैं,		(आप लोग)
		कुतः न-	- क्यों नहीं ले आये
		आनीतानि	॥ ६९ ॥

श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ।
फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥

श्रवणं सम भागेन सर्वेषां इह दृश्यते फलभेदः कुतः जातः प्रब्रुवन्तु हरि प्रियाः ॥ ७० ॥

इह समभागेन	- यहां समानरूपसे	**कुतः जातः**	- कहांसे होगया
सर्वेषां श्रवणं	- सबका श्रवण करना	**हरि प्रियाः**	- श्रीहरिके प्यारे भक्तो !
दृश्यते	- देखा जाता है,	**प्रब्रुवन्तु**	- यह (हमें) बतलाओ
फलभेदः	- (उसके) फलमें भेद		॥ ७० ॥

हरिदासा ऊचुः-

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽत्र संस्थितः ।
श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ।
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ ७१ ॥

श्रवणस्य विभेदेन फल भेदः अत्र संस्थितः श्रवणं तु कृतं सर्वैः न तथा मननं कृतं फलभेदः ततः जातः भजनात् अपि मानद ॥ ७१ ॥

मानद	- (हमें) सम्मान देने वाले !	**कृतं तथा**	- किया किन्तु उसी प्रकार
श्रवणस्य-विभेदेन	- श्रवणमें भेद होनेसे	**मननं न कृतं**	- मनन नहीं किया,
		भजनात् अपि	- भजनके (भेदसे) भी
फल भेदः	- फलमें भेद	**ततः फल भेदः**	- फिर फलमें भेद
अत्र संस्थितः	- यहां होगया है,	**जातः**	- होगया है ॥ ७१ ॥
सर्वैः श्रवणं तु	- सबने श्रवण तो		

सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ।
मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ ७२ ॥

सप्तरात्रं उपोष्य एव प्रेतेन श्रवणं कृतं मनन आदि तथा तेन स्थिर चित्ते कृतं भृशम् ॥ ७२ ॥

प्रेतेन सप्तरात्रं	- प्रेत ने सात (दिन) रात	**मनन आदि**	- मनन आदि
उपोष्य एव	- उपवास करके ही	**स्थिर चित्ते**	- स्थिर चित्तसे
श्रवणं कृतं	- श्रवण किया है,	**भृशं कृतं**	- बार-बार किया है ॥ ७२ ॥
तथा तेन	- इसी प्रकार उसने		

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ ७३ ॥

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतं सन्दिग्धः हि हतः मन्त्रः व्यग्र चित्तो हतः जपः ॥ ७३ ॥

अदृढं ज्ञानं हतं	- जो ज्ञान दृढ़ नहीं है वह नष्ट हो जाता है	**हि सन्दिग्धः मन्त्रः हतः**	- क्योंकि सन्देह होनेपर मन्त्र-शक्ति नष्ट होजाती है
च प्रमादेन	- तथा असावधानीसे	**व्यग्रचित्तो**	- व्यग्र चित्तसे किया
श्रुतं हतं	- श्रवण नष्ट होता है,	**जपः हतः**	- जपका फल नष्ट होजाता है ॥ ७३ ॥

अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ।
हतमश्रोत्रिये दानमनाचारं हतं कुलम् ॥ ७४ ॥

अवैष्णवः हतः देशः हतं श्राद्धं अपात्रकं हतं अश्रोत्रिये दानं अनाचारं हतं कुलम् ॥ ७४ ॥

अवैष्णवः	- विष्णुभक्त रहित	**श्राद्धं हतं**	- श्राद्धका (भोजन कराना) निष्फल है
देशः हतः	- प्रदेश नष्टप्राय है,	**अनाचारं**	- अनाचारसे
अपात्रकं	- जो पात्र नहीं है उसको	**कुलं हतं**	- कुल नष्ट होजाता है ॥ ७४ ॥

विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना ।
मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ ७५ ॥

विश्वासः गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्व भावना मनः दोष जयः च एव कथायां निश्चला मतिः ॥ ७५ ॥

विश्वासः गुरु-वाक्येषु	- गुरुके वचनोंमें विश्वास,	**मनः दोष-जयः एव**	- मनके दोषोंको जीत ही लेना
स्वस्मिन्	- अपनेमें	**च कथायां**	- तथा कथामें
दीनत्व भावना	- दीनताकी बुद्धि,	**निश्चला मतिः**	- स्थिर बुद्धि ॥ ७५ ॥

एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ।
पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

एवं आदि कृतं चेत् स्यात् तदा वै श्रवणे फलं पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

चेत् एवं- - यदि इस प्रकारके
आदि नियमोंका
कृतं स्यात् - पालन किया गया हो
तदा वै - तब निश्चय
श्रवणे फलं - श्रवणका फल होता है ।
पुनः श्रवान्ते - (इस प्रकार) फिर श्रवण करनेके पश्चात्
ध्रुवं सर्वेषां - निश्चय सबको
वैकुण्ठे वसति - वैकुण्ठ-निवास प्राप्त होगा ॥ ७६ ॥

कुमारा ऊचुः-१

गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ।
एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥ ७७ ॥

गोकर्ण तव गोविन्दः गोलोकं दास्यति स्वयम् ।

गोकर्ण तव - गोकर्ण जी ! आपको
स्वयं गोविन्दः - स्वयं गोविन्द
गोलोकं: दास्यति-गोलोक प्रदान करेंगे ।

कुमारा ऊचुः-

एवं उक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरि कीर्तनाः ॥ ७७ ॥

एवं उक्त्वा - इस प्रकार कहकर
सर्वे हरि- - वे सब हरिका सुयश
कीर्तनाः गाने वाले
वैकुण्ठं ययुः - वैकुण्ठ चले गये ॥ ७७ ॥

श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ।
सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ ७८ ॥

श्रावणे मासि गोकर्णः कथां ऊचे तदा पुनः सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं: तैः कृतं पुनः ॥ ७८ ॥

---

१. यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तदा पुनः	- तब फिरसे	**कथां ऊचे**	- कथा कही,
गोकर्णः-	- गोकर्णने श्रावणमासमें	**तैः पुनः**	- तथा उन लोगोंने फिर
श्रावणे मासि		**श्रवणं कृतं**	- श्रवण किया ॥ ७८ ॥
भूयः-	- दुबारा सप्ताह		
सप्तरात्रवतीं	विधि वाली		

कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ ७९ ॥

कथा समाप्तौ यत् जातं श्रूयतां तत् च नारद ॥ ७९ ॥

नारद	- नारदजी !	**यत् जातं**	- जो हुआ
कथा समाप्तौ	- कथा समाप्त होनेपर	**तत् च श्रूयतां**	- उसे भी सुनो ॥ ७९ ॥

विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ।
जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन् बहवस्तदा ॥ ८० ॥

विमानैः सह भक्तैः च हरिः आविर्बभूव ह जयशब्दा नमः शब्दाः तत्र आसन् बहवः तदा ॥ ८० ॥

विमानैः सह	- विमानोंके साथ,	**जय शब्दा**	- जयकार ध्वनि
च भक्तैः हरिः	- तथा भक्तों सहित श्रीहरि	**नमः शब्दाः**	- नमस्कार ध्वनि
		बहवः आसन्	- बार-बार होने लगी ॥ ८० ॥
आविर्बभूव ह	- प्रकट ही होगये		
तदा तत्र	- तब वहाँ बहुत अधिक		

पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ।
गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥

पाञ्चजन्य ध्वनिं चक्रे हर्षात् तत्र स्वयं हरिः गोकर्णं तु सम आलिङ्ग्य अकरोत् स्व सदृशं हरिः ॥ ८१ ॥

स्वयं हरिः - स्वयं श्रीहरिने प्रसन्न
हर्षात् होकर
तत्र - वहां स्वयं
पाञ्चजन्य - पाञ्चजन्य शंखका
ध्वनिंचक्रे - घोष किया
तु गोकर्णं - तथा गोकर्णका
सम आलिङ्ग्य -गाढ़ आलिंगन करके
हरिः स्वसदृशं - श्रीहरिने (उन्हें) अपने समान
अकरोत् - बना लिया ॥ ८१ ॥

श्रोतृनन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥

श्रोतृन् अन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेय वाससः किरीटिनः कुण्डलिनः तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥

तथा हरिः- - तथा श्रीहरिने क्षण
क्षणात् भरमें ही
अन्यान् श्रोतृन् - दूसरे श्रोताओंको
घनश्यामान् - मेघश्याम वर्ण
पीत कौशेय- - पीले रेशमी वस्त्रधारी
वाससः
किरीटिनः - मुकुट पहिने
कुण्डलिनः चक्रे - कुण्डल पहिने बना दिया ॥ ८२ ॥

तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः ।
विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥

तत् ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्व चाण्डाल जातयः विमाने स्थापिताः ते अपि गोकर्ण कृपया तदा ॥ ८३ ॥

तत् ग्रामे - उस गांवमें
आश्व चाण्डाल - कुत्तेसे लेकर चाण्डाल
जातयः ये - आदि जातियोंके जो
जीवास्थिता - जीव थे
ते अपि तदा - वे भी उस समय
गोकर्ण कृपया - गोकर्णकी कृपासे
विमाने स्थापिताः - विमानोंमें चढ़ा लिये गये ॥ ८३ ॥

प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ।
गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ।
कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८४ ॥

गोकर्णेन स गोपालः गोलोकं गोपवल्लभं कथा श्रवणतः प्रीतः निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८४ ॥

गोपवल्लभः	- गोपोंके प्रियतम	**गोकर्णेन**	- गोकर्णके साथ
भक्तवत्सलः	- भक्तवत्सल	**गोलोकं निर्ययौ**	- गोलोक (जाने) के
स गोपालः	- वे गोपाल		लिए निकल पड़े
कथा श्रवणतः	- कथा-श्रवणसे प्रसन्न		॥ ८४ ॥
प्रीतः	होकर		

अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ ८५ ॥

अयोध्या वासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः तथा कृष्णेन ते नीताः गोलोकं योगि दुर्लभम् ॥ ८५ ॥

यथा पूर्वं	- जैसे पहिले (त्रे तान्तमें)	**तथा ते-**	- इसी प्रकार वे लोग
अयोध्या वासिनः	- अयोध्यावासी	**कृष्णेन**	श्रीकृष्ण द्वारा
रामेण संगताः	- श्रीरामके साथ	**योगि दुर्लभं**	- योगियोंको भी दुर्लभ
	(साकेत) गए थे	**गोलोकं नीताः**	- गोलोक ले जाये गये
			॥ ८५ ॥

यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ।
तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८६ ॥

यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा तं लोकं हि गताः ते तु श्रीमद्भागवत श्रवात् ॥ ८६ ॥

यत्र कदा	- जहां कभी	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवतके
सूर्यस्य सोमस्य	- सूर्यकी, चन्द्रमाकी,	**श्रवात् हि**	- श्रवणसे ही
सिद्धानां-	- एवं सिद्धोंकी पहुँच	**ते तु तं-**	- वे तो उस (गो) लोक
गतिः न	नहीं है,	**लोकं गताः**	पहुँच गये ॥ ८६ ॥

ब्रूमोऽत्र ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ।
कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः पीतश्च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥

ब्रूमः अत्र ते किं फलवृन्दं उज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथा सु संचितं कर्णेन गोकर्ण कथा अक्षरः यैः पीतः च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥

अत्र ते	- यहां तुमसे	**गोकर्ण-**	- गोकर्णकी कथाका एक
सप्ताह यज्ञेन	- सप्ताह यज्ञरूप	**कथा अक्षरः**	अक्षर भी
कथासु संचितं	- कथासे एकत्र होने वाले	**यैः कर्णेन-**	- जिन्होंने (अपने)
उज्ज्वलं फलवृन्दं	- उज्ज्वल फल राशिका	**पीतः**	कानोंसे पिया
किं ब्रूमः	- क्या वर्णन करे,	**ते भूयः**	- वे फिर
		गर्भगता न	- गर्भमें नहीं आये ॥८७॥

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥ ८८ ॥

वात अम्बु पर्ण अशन देह शोषणैः तपोभिः उग्रैः चिरकाल संचितैः योगैः च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताह गाथा श्रवणेन यान्ति याम् ॥८८॥

वात अम्बु पर्ण	- वायु, जल या पत्ते	**च योगैः तां**	- तथा योगसे उस
अशन देह-	- खाकर शरीर	**गतिं वै**	गतिको निश्चय
शोषणैः	सुखानेवाली	**न संयान्ति**	- ठीक नहीं जा पाते
चिरकाल-	- दीर्घकाल तक	**सप्ताह गाथा**	- सप्ताह कथा
संचितैः	एकत्रकी गयी	**श्रवणेन**	- श्रवण करनेसे जिस (गति)
उग्रैः तपोभिः	- उग्र तपस्यासे	**यां यान्ति**	को जाते हैं ॥ ८८ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ।
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥

इतिहासं इमं पुण्यं शाण्डिल्यः अपि मुनीश्वरः पठते चित्रकूटस्थः ब्रह्मानन्द परिप्लुतः ॥ ८९ ॥

चित्रकूटस्थः	- चित्रकूटमें स्थित	**ब्रह्मानन्द-**	- ब्रह्मानन्दमें निमग्न होकर
मुनीश्वरः	- मुनीश्वर	**परिप्लुतः**	
शाण्डिल्यः अपि	- शाण्डिल्य भी	**इमं पुण्यं**	- इस पवित्र
		इतिहासं पठते	- इतिहासका पाठ करते हैं ॥ ८९ ॥

आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ।
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥

आख्यानं एतत् परमं पवित्रं श्रुतं सकृत् वै विदहेद् अघ औघं श्राद्धे प्रयुक्तं पितृ तृप्तिं आवहेत् नित्यं सुपाठात् अपुनर्भवं च ॥ ९० ॥

एतत् परम पवित्रं	- इस परम पवित्र	**श्राद्धे प्रयुक्तं**	- श्राद्धमें (इसका) प्रयोग करनेपर
आख्यानं	- आख्यानका	**पितृ तृप्तिं**	- पितरोंको तृप्ति
सकृत् श्रुतं	- एक बारका श्रवण	**आवहेत्**	- देता है,
अघ औघं	- पापकी बाढ़को	**च नित्यं-**	- तथा नित्य भली प्रकार
वै विदहेत्	- निश्चय भस्म कर देता है ।	**सुपाठात्**	(मन लगाकर) पाठ करनेसे
		अपुनर्भवं	- मोक्ष देता है ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

कुमारा ऊचुः-

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताह श्रवणे विधिं सहायैः वसुभिः च एव प्रायः साध्यः विधिः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ ते	- अब तुमसे	**सहायैः च-**	- सहायकों तथ धनसे
सप्ताह श्रवणे	- सप्ताह श्रवणकी	**वसुभिः**	
विधिं-	- विधि पूर्णरूपसे	**एव विधिः**	- ही (यह) विधि
सम्प्रवक्ष्यामः	कहते हैं,	**साध्यः स्मृतः-**	करना शक्य कही गयी है ॥ १ ॥

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥

दैवज्ञं तु सम आहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥

दैवज्ञं तु	- ज्योतिषीको तो	**विवाहे यादृशं**	- एक विवाह में जिस प्रकार (जितना)
सम आहूय	- सम्मानपूर्वक बुलाकर	**वित्तं तादृशं**	- धन (लगता हो) उस प्रकार (उतना)
यत्नतः	- प्रयत्नपूर्वक	**परिकल्पयेत्**	- प्रबन्ध कर ले ॥ २ ॥
मुहूर्तं पृच्छ्य	- मुहूर्त पूछकर		

नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥

नभस्य आश्विन अर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिः नभाः एते मासाः कथा आरम्भे श्रोतृणां मोक्ष सूचकाः ॥ ३ ॥

कथा आरम्भे - कथा प्रारम्भ करनेके लिए
नभस्य आश्विन - भाद्रपद, आश्विन,
अर्जौ मार्गशीर्षः - कार्तिक, मार्गशीर्ष,
शुचिः च नभाः - आषाढ़ और श्रावण
एते मासाः - इतने महीने
श्रोतृणां मोक्ष सूचकाः - श्रोताओंके लिए मोक्ष-सूचक हैं ॥ ३ ॥

मासानां विप्र हेयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ।
सहायाश्चेतरे तत्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥

मासानां विप्र हेयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा सहायाः च इतरे तत्र कर्तव्याः स उद्यमाः च ये ॥ ४ ॥

विप्र - नारद जी !
मासानां हेयानि - (इन) महीनोंमें भी निन्दित समय (भद्रा, व्यतीपातादि)
तानि सर्वथा - उनको सर्वथा
त्याज्यानि - त्याग देना चाहिए,
तत्र ये स उद्यमाः - वहां जो उद्योगी
इतरे च - दूसरे भी हों (उनको)
सहायाः च कर्तव्याः - सहायकर्ता बना लेना चाहिए ॥४॥

देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ।
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥

देशे देशे तथा स इयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः भविष्यति कथा च अत्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥

तथा प्रयत्नतः - फिर प्रयत्नपूर्वक
देशे देशे - स्थान स्थानपर
स इयं- - वह यह समाचार
वार्ता प्रेष्या भेजना चाहिए
अत्र कथा - 'यहां कथा
भविष्यति - होगी,
कुटुम्बिभिः - सकुटुम्ब (आप सबको)
अत्र- - यहां आना ही चाहिए
आगन्तव्यं च ॥ ५ ॥

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥

दूरे हरि कथाः केचित् दूरे च अच्युत कीर्तनाः स्त्रियः शूद्र आदयः ये च तेषां बोधः यतः भवेत् ॥ ६ ॥

केचित्	- कोई कोई	**च हरि**	- तथा भगवत्कीर्तन करने
ये स्त्रियः-	- जो स्त्री शूद्र आदि	**कीर्तनाः दूरे**	वालोंसे दूर पड़ गये हैं
शूद्र आदयः		**तेषां च बोधः**	- उनको भी पता
हरि कथाः दूरे	- हरिकथासे दूर पड़ गये हैं,	**यतः भवेत्**	- जिससे हो जाय (ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए) ॥ ६ ॥

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ।
तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तन उत्सुकाः तेषु एव पत्रं प्रेष्यं च तत् लेखनं इति ईरितम् ॥ ७ ॥

देशे देशे	- स्थान स्थानपर	**तेषु एव पत्रं**	- उनको इस प्रकारका पत्र
ये कीर्तन-	- जो कीर्तन करनेको	**प्रेष्यं च**	- भेजना ही चाहिए
उत्सुकाः	उत्सुक	**तत् लेखनं**	- उसे लिखनेकी विधि
विरक्ता वैष्णवाः	- विरक्त वैष्णव हैं	**इति ईरितं**	- इस प्रकार बतलायी गयी है ॥ ७ ॥

सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ।
अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥

सतां समाजः भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः अपूर्व रसरूपा एव कथा च अत्र भविष्यति ॥ ८ ॥

अत्र सुदुर्लभः	- 'यहां अत्यन्त दुर्लभ	**च अपूर्व**	- तथा अपूर्व
सतां समाजः	- सत्पुरुषोंका समागम	**रसरूपा एव**	- रसरूपा ही
सप्तरात्रं भविता	- सात-दिन तक होगा	**कथा भविष्यति**	- कथा होगी ॥ ८ ॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥

श्री भागवत पीयूष पानाय रस लम्पटाः भवन्तः च तथा शीघ्रं आयात प्रेम तत्पराः ॥ ९ ॥

श्रीभागवत - श्रीमद्भागवत	**प्रेम तत्पराः तथा** - प्रेम परायण
पीयूष पानाय - अमृत पीनेके लिए	**भवन्तः च** - और आप भी
रस लम्पटाः - रस लोलुप	**शीघ्रं आयात** - शीघ्र आइये ॥९॥

नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ।
सर्वथाऽऽगमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥

न अवकाशः कदाचित् चेत् दिनमात्रं तथा अपि तु सर्वथा आगमनं कार्यं क्षणः अत्र एव सुदुर्लभः ॥ १० ॥

कदाचित् - कदाचित्	**दिन मात्रं** - एक दिनके लिए ही
अवकाशः- - अवकाश न हो	**आगमनं कार्यं** - पधारना ही चाहिए
न चेत्	**अत्र एव क्षणः** - यहां का तो एक
तथा अपि तु - ऐसा होनेपर भी तो	क्षण भी
	सुदुर्लभः - अत्यन्त दुर्लभ है'
	॥ १० ॥

एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ।
आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥

एवं आकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च आगन्तुकानां सर्वेषां वासः स्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥

एवं तेषां - इस प्रकार उनको	**सर्वेषां-** - सभी आने वालोंके लिए
विनयेन च - विनयपूर्वक ही	**आगन्तुकानां**
आकारणं - बुलाना चाहिए,	**वासः स्थानानि** - निवासके स्थानोंकी
	कल्पयेत् - व्यवस्था करें ॥ ११ ॥

तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ।
विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ।। १२ ।।

तीर्थे वा अपि वने वा अपि गृहे वा श्रवणं मतं विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत् कथा स्थलम् ।। १२ ।।

तीर्थे वा अपि - तीर्थमें ही,	**यत्र विशाला-** - जहां विस्तृत भूमि हो
वा वने अपि - अथवा वनमें ही,	**वसुधा**
वा गृहे- - अथवा घरमें श्रवण	**तत् कथा स्थलं** - उसे कथा-स्थान
श्रवणं मतं करना उचित है,	**कर्तव्यं** - बनाना चाहिए ।।१२।।

शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।। १३ ।।

शोधनं मार्जनं भूमेः लेपनं धातु मण्डनं गृह उपस्करं उद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।। १३ ।।

गृह उपस्करं - घरेलू सामग्री	**मार्जनं** - छिड़काव करे,
उद्धृत्य - उठाकर	**लेपनं** - लीपे और
गृहकोणे - घरके कोनेमें	**धातु मण्डनं** - (खड़िया, गेरू आदि)
निवेशयेत् - रख दे,	धातुओंसे (मण्डल बनाकर)
भूमेः शोधनं - भूमिको स्वच्छ करे,	सजाये ।। १३ ।।

अर्वाक्पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः ।। १४ ।।

अर्वाक् पञ्च अहतः यत्नात् आस्तीर्णानि प्रमेलयेत् कर्तव्यः मण्डपः प्रोच्चैः कदली खण्ड मण्डितः ।। १४ ।।

पञ्च अहतः - पांच दिन
अर्वाक् - पहिले ही
यत्नात् - प्रत्यनपूर्वक
आस्तीर्णानि - बिछानेके वस्त्र (दरी आदि)
प्रमेलयेत् - जुटाले,
कदलीखण्ड-मण्डितः - केलेके खम्भोंसे सुशोभित
प्रोच्चैः मण्डपः - खूब ऊंचा मण्डप
कर्तव्यः - बनना चाहिए ॥ १४ ॥

फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसम्पद्विराजितः ॥ १५ ॥

फल पुष्प दलैः विष्वक् वितानेन विराजितः चतुः दिक्षु ध्वजा आरोपः बहु सम्पत् विराजितः ॥ १५ ॥

फल पुष्प दलैः - (उस मण्डपको) फल, पुष्प, पल्लव,
वितानेन - चँदोवेसे
विष्वक्-विराजितः - चारों ओरसे सजावे,
चतुः दिक्षु - चारों दिशाओंमें
ध्वजारोपः - ध्वजा लगावे,
बहु सम्पत्-विराजितः - बहुत सम्पत्ति से सज्जित करे ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वं सप्त एव लोकाः च कल्पनीयाः सविस्तरं तेषु विप्रा विरक्ताः च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वं सप्त एव - (कुछ) ऊंचाईपर सात ही
लोकाः च - लोकोंका ही
सविस्तरं-कल्पनीयाः - विस्तारपूर्वक निर्माण करना चाहिए
तेषु प्रबोध्य च - उनमें बुला करके ही
विप्रा च-विरक्ताः - ब्राह्मणों ओर विरक्तोंको
स्थापनीयाः - बैठाना चाहिए ॥१६॥

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥

पूर्वं तेषाम् आसनानि कर्तव्यानि यथा उत्तरं वक्तुः च अपि तदा दिव्यं आसनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥

पूर्वं तेषाम्	- पहिले उनके लिए	**कर्तव्यानि**	- करनी चाहिए,
यथा उत्तरं	- उनकी श्रेष्ठताके अनुसार	**तदा वक्तुः-**	- फिर वक्ताके लिए भी
आसनानि	- आसनोंकी (व्यवस्था)	**च अपि**	
		दिव्यं आसनं	- दिव्य (सुन्दर) सिंहासनकी
		परिकल्पयेत्	- व्यवस्था करे ॥ १७ ॥

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ।
प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥

उदङ्मुखः भवेत् वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखः तदा प्राङ्मुखः चेत् भवेत् वक्ता श्रोता च उदङ्मुखः तदा ॥ १८ ॥

वक्ता उदङ्मुखः	- वक्ता उत्तरमुख	**चेत् वक्ता**	- यदि वक्ता
भवेत्	- (बैठा) हो	**प्राङ्मुखः**	- पूर्वमुख
तदा वै श्रोता	- तब निश्चय श्रोता	**भवेत् तदा**	- हो तब
प्राङ्मुखः	- पूर्वमुख बैठे,	**श्रोता उदङ्मुखः**	- श्रोता उत्तरमुख बैठे ॥ १८ ॥

अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ।
श्रोतृणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ ॥

अथवा पूर्व दिक् ज्ञेया पूज्य पूजक मध्यतः श्रोतृणां आगमे प्रोक्ता देशकाल आदि कोविदैः ॥ १९ ॥

अथवा पूज्य - अथवा पूज्य और
पूजक मध्यतः - पूजकके मध्य (दोनोंको)
पूर्व दिक् ज्ञेया- पूर्वमुख (बैठना उचित) जानना चाहिए,
देशकाल आदि - देशकाल आदिके
कोविदैः - जानकारों ने
श्रोतृणां आगमे - श्रोताके लिए यही विधि
प्रोक्ता कही है ॥ १९ ॥

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥ २० ॥

विरक्तः वैष्णवः विप्रः वेदशास्त्र विशुद्धिकृत् दृष्टान्त कुशलः धीरः वक्ता कार्यः अति निस्पृहः ॥ २० ॥

वेद शास्त्र - वेद-शास्त्रोंके
विशुद्धिकृत् - शुद्ध होनेका समर्थक,
दृष्टान्त कुशलः - दृष्टान्त देनेमें कुशल,
विरक्तः वैष्णवः - विरक्त, वैष्णव,
विप्रः - ब्राह्मण,
अति निस्पृहः - अत्यन्त निस्पृह
वक्ता कार्यः - वक्ता बनाना चाहिए
॥ २० ॥

अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ।
शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥

अनेक धर्म विभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्ड वादिनः शुकशास्त्र कथा उच्चारे त्याज्याः ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥

अनेक धर्म - अनेक धर्मों (के सिद्धान्तों) में
विभ्रान्ताः - भटकने वाले
स्त्रैणाः - स्त्री लम्पट
पाखण्डवादिनः - पाखण्डकी बातें करने वाले
यदि पण्डिताः - यदि विद्वान भी हो तो
शुकशास्त्र - शुकदेवजीके शास्त्र (भागवत) की
कथा उच्चारे - कथा कहनेके लिए
ते त्याज्याः - वे त्याग देने योग्य हैं
॥ २१ ॥

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥

वक्तुः पार्श्वे सहाय अर्थम् अन्यः स्थाप्यः तथा विधः पण्डितः संशयच्छेत्ता लोक बोधन तत्परः ॥ २२ ॥

वक्तुः पार्श्वे - वक्ताके समीप	**लोकबोधन** - लोगोंको समझानेमें
तथा विधिः - उसी प्रकारका	**तत्परः पण्डितः**- तत्पर विद्वान
संशयच्छेत्ता - संशय काट देने वाला	**सहाय अर्थं** - (वक्ताकी) सहायताके लिए
	स्थाप्यः - बैठाना चाहिए ॥२२॥

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ।
अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनात् अर्वाक् व्रत आप्तये अरुणोदये असौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं सम आचरेत् ॥ २३ ॥

दिनात् अर्वाक् - एक दिन (कथा प्रारम्भसे) पहिले	**प्रकर्तव्यं** - करा लेना चाहिए,
व्रत आप्तये - व्रत ग्रहणके लिए	**असौ अरुणोदये** - यह अरुणोदयके समय
वक्त्रा क्षौरं - वक्ताको क्षौर	**शौचं निर्वर्त्य** - शौचसे निवृत्त होकर
	स्नानं सम- - भली प्रकार स्नान करे
	आचरेत् ॥ २३ ॥

नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं स्वं प्रयत्नतः ।
कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

नित्यं संक्षेपतः कृत्वा सन्ध्या आद्यं स्वं प्रयत्नतः कथा विघ्न विघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

नित्यं प्रयत्नतः - प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक	**कथा विघ्न** - कथाके विघ्नोंके
स्वं सन्ध्या आद्यं - अपना सन्ध्या आदि कर्म	**विघाताय** - विनाशके लिए
संक्षेपतः कृत्वा - संक्षिप्त रूपसे करके	**गणनाथं** - गणेशजी की
	प्रपूजयेत् - विधिपूर्वक पूजा करे ॥ २४ ॥

पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥

पितॄन् संतर्प्य शुद्धि अर्थं प्रायश्चित्तं समआचरेत् मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यः हरिः तथा ॥ २५ ॥

पितॄन् संतर्प्य - पितरोंका तर्पण करके
शुद्धि अर्थं - (पूर्व पापोंकी) शुद्धिके लिए
प्रायश्चित्तं - प्रायश्चितका
सम आचरेत् - सम्यक् आचरण करे,
मण्डलं च - मण्डल भी
प्रकर्तव्यं - बनाना चाहिए
तथा तत्र - उस समय उसमें
हरिः स्थाप्यः - श्रीहरिकी स्थापना करनी चाहिए ॥ २५ ॥

कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ।
प्रदक्षिणनमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥

कृष्णं उद्दिश्य मन्त्रेण चरेत् पूजा विधिं क्रमात् प्रदक्षिण नमस्कारान् पूजा अन्ते स्तुतिं आचरेत् ॥ २६ ॥

कृष्णं उद्दिश्य - श्रीकृष्णको लक्ष्य बनाकर
मन्त्रेण - मन्त्रपूर्वक
क्रमात् विधिं - क्रमशः विधिपूर्वक
पूजा चरेत् - पूजा करे,
पूजा अन्ते - पूजाके अन्तमें
प्रदक्षिण - प्रदक्षिणा
नमस्कारान् - प्रणाम करके
स्तुतिं आचरेत् - यह स्तुति करे ॥२६॥

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ।
कर्ममोहगृहीतांगं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥

संसार सागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे कर्ममोह गृहीत अंगं मां उद्धर भव अर्णवात् ॥ २७ ॥

करुणानिधे - 'करुणासिन्धु !
संसार सागरे - संसार रूपी समुद्रमें
मग्नं डूबे
कर्म मोह - कर्मके मोहसे
गृहीत अंगं - जकड़े शरीर वाले
भव अर्णवात् - संसार सागरसे
मां मां उद्धर - (प्रभु) मेरा, मेरा उद्धार कीजिए ॥ २७ ॥

श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ।
कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ।। २८ ।।

श्रीमद्भागवतस्य अपि ततः पूजा प्रयत्नतः कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूप दीप समन्विता ।। २८ ।।

ततः प्रीत्या - फिर प्रेमपूर्वक
प्रयत्नतः - प्रयत्नके साथ
श्रीमद्भागवतस्य - श्रीमद्भागवतकी
अपि धूप दीप - भी धूप-दीप
समन्विता - सहित
पूजा विधिना - पूजा विधिपूर्वक
कर्तव्या - करनी चाहिए ।। २८ ।।

ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ।। २९ ।।

ततः तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं सम आचरेत् स्तुतिः प्रसन्न चित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ।। २९ ।।

ततः तु - फिर तो
श्रीफलं धृत्वा - (ग्रन्थके आगे) नारियल रखकर
नमस्कारं - नमस्कार
सम आचरेत् - सम्यक् रूपसे (साष्टांग) करे ।
तदा प्रसन्नचित्तेन - फिर प्रसन्नचित्तसे
केवलं - केवल
स्तुतिः कर्तव्या - स्तुति करनी चाहिए ।। २९ ।।

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ।। ३० ।।

श्रीमद्भागवत आख्यः अयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि स्वीकृतः असि मया नाथ मुक्ति अर्थं भव सागरे ।। ३० ।।

अथ	- स्वामी !	प्रत्यक्षः-	- प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण रूपमें ही
श्रीमद्भागवत	- श्रीमद्भागवत	कृष्ण एव	
आख्यः अयं	- नामक इस ग्रन्थको	भव सागरे	- संसार सागरसे
हि मया	- क्योंकि मैंने	मुक्ति अर्थं	- मुक्तिके लिए
		स्वीकृतः असि	- स्वीकार किया है
			॥ ३० ॥

मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥ ३१ ॥

मनोरथः मदीयः अयं सफलः सर्वथा त्वया निर्विघ्नेन एव कर्तव्यः दासः अहं तव केशव ॥ ३१ ॥

केशव	- केशव !	त्वया-	- बिना किसी विघ्नके
अहं तव दासः	- मैं आपका दास हूं,	निर्विघ्नेन एव	ही,
अयं मदीयः	- यह मेरा	सफलः कर्तव्यः	- सफल करना चाहिए
मनोरथः	- मनोरथ		॥ ३१ ॥

एवं दीनवचः प्रोच्य वक्तारं चाथ पूजयेत् ।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥

एवं दीनवचः प्रोच्य वक्तारं च अथ पूजयेत् सम्भूष्य वस्त्र भूषाभिः पूजा अन्ते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥

एवं दीन वचः	- इस प्रकार दीनवाणी	वस्त्र भूषाभिः	- वस्त्र-आभूषणसे
प्रोच्य	- स्पष्ट स्वरमें कहकर	सम्भूष्य	- भली प्रकार भूषित करके
अथ वक्तारं	- फिर वक्ताको भी	पूजयेत्	- (उसकी) पूजा करे,
		पूजा अन्ते	- पूजाके अन्तमें
		तं च	- उसकी भी
		संस्तवेत्	- (इस प्रकार) स्तुति करे
			॥ ३२ ॥

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्र विशारद एतत् कथा प्रकाशेन मत् अज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥

शुकरूप - 'श्रीशुकदेवजीके स्वरूप
प्रबोधज्ञ - समझानेमें कुशल
सर्वशास्त्र - सब शास्त्रोंके
विशारद - पारंगत !
एतत् कथा - इस कथाके
प्रकाशेन - प्रकाश द्वारा
मत् अज्ञानं - मेरे अज्ञानका
विनाशय - सम्पूर्ण नाश कीजिए'
॥ ३३ ॥

तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ।
सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥

तत् अग्रे नियमः पश्चात् कर्तव्यः श्रेयसे मुदा सप्तरात्रं यथा शक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥

पश्चात् - (इसके) पश्चात्
तत् अग्रे - उन (वक्ता) के सामने
यथा शक्त्या - (अपनी) शक्तिके अनुसार
मुदा नियमः - प्रसन्नतापूर्वक नियम (पारमन) की
श्रेयसे कर्तव्यः - कल्याणके लिए (घोषणा) करनी चाहिए
हि स एव - क्योंकि उन्हीं को
सप्तरात्रं - सात दिनों तक
धारणीयः - धारण (पालन) करना चाहिए ॥ ३४ ॥

वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥

वरणं पञ्च विप्राणां कथा भंग निवृत्तये कर्तव्यं तैः हरेः जाप्यं द्वादशाक्षर विद्यया ॥ ३५ ॥

कथा भंग	- कथामें विघ्नोंकी	**तैः हरेः**	- उन (ब्राह्मणों) को श्रीहरिके
निवृत्तये	- निवृत्तिके लिए	**द्वादशाक्षर-**	- द्वादशाक्षर मन्त्रका
पञ्च विप्राणां	- पांच ब्राह्मणोंका	**विद्यया**	
वरणं कर्तव्यं	- वरण करना चाहिए ।	**जाप्यं**	- जप करना चाहिए ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान् वैष्णवान् च अन्यान् तथा कीर्तनकारिणः नत्वा सम्पूज्य दत्त आज्ञः स्वयं आसनं आविशेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्	- ब्राह्मणोंको,	**नत्वा सम्पूज्य**	- नमस्कार करके, सत्कृत करके
वैष्णवान्	- वैष्णवोंको,	**दत्त आज्ञः**	- उनके आज्ञा देनेपर
च अन्यान्	- एवं दूसरे लोगोंको	**स्वयं आसनं**	- अपने आसनपर
तथा कीर्तन-	- तथा कीर्तन करने	**आविशेत्**	- बैठे ॥ ३६ ॥
कारिणः	वालोंको		

लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

लोक वित्त धन आगार पुत्र चिन्तां व्युदस्य च कथा चित्तः शुद्ध मतिः स लभेत् फलं उत्तमम् ॥ ३७ ॥

लोक वित्त	- संसार, सम्पत्ति,	**कथा चित्तः**	- कथामें चित्त लगाये
धन आगार	- धन, भवन	**शुद्ध मतिः**	- शुद्ध बुद्धि है,
च पुत्र चिन्तां	- तथा पुत्रोंकी चिन्ता	**स उत्तमं फलं**	- वह उत्तम फल
व्युदस्य	- त्यागकर	**लभेत्**	- पाता है ॥ ३७ ॥

आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तकम् ।
वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥

आसूर्योदयं आरभ्य सार्ध त्रिप्रहर अन्तकं वाचनीया कथा सम्यक् धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥

सुधीमता	- अच्छी बुद्धि वाले (वक्ता) को	**धीरकण्ठं**	- मध्यम स्वरसे
		सम्यक्	- भली प्रकार
आसूर्योदयं आरभ्य	- सूर्योदयसे लेकर	**कथा वाचनीया**	- कथा-वाचन करना चाहिए ॥ ३८ ॥
सार्ध त्रिप्रहर	- साढ़े तीन प्रहर		
अन्तकं	- तक		

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ।
तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥

कथा विरामः कर्तव्यः मध्य अह्ने घटिका द्वयं तत् कथां अनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैः तदा ॥ ३९ ॥

मध्यअह्ने	- दोपहरमें	**वै तदा**	- निश्चय उस समय
द्वयं घटिका	- दो घड़ी	**वैष्णवैः**	- वैष्णवोंको
कथा विरामः	- कथाका विश्राम	**तत् कथां अनु**	- उस (दिनकी) कथाके अनुसार
कर्तव्यः	- करना चाहिए,	**कीर्तनं कार्यं**	- कीर्तन करना चाहिए ॥ ३९ ॥

मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ।
हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥

मल मूत्र जय अर्थं हि लघु आहारः सुख आवहः हविष्य अन्नेन कर्तव्यः हि एक वारं कथा अर्थिना ॥ ४० ॥

मल मूत्र - मल-मूत्र (का वेग)
जय अर्थं हि - जीतनेके लिए क्योंकि
लघु आहारः - हल्का आहार
सुख आवहः - सुखदायक होता है,
कथा अर्थिना - कथा सुनाने वालेको
एकवारं हि - एक ही समय
हविष्य अन्नेन - हविष्य (हवन योग्य) अन्नका
कर्तव्यः - (भोजन) करना चाहिए ॥ ४० ॥

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ।
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥ ४१ ॥

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिः चेत् शृणुयात् तदा घृतपानं पयः पानं कृत्वा वै शृणुयात् सुखम् ॥ ४१ ॥

चेत् शक्तिः - यदि शक्ति हो
वै तदा - निश्चय तब
सप्तरात्रं - सात दिन तक
उपोष्य शृणुयात् - उपवास करके श्रवण करे,
घृतपानं - घी पीकर
पयः पानं - दूध पीकर
सुखं वै - सुखपूर्वक ही
शृणुयात् - श्रवण करे ॥ ४१ ॥

फलाहारेण वा भाव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ।
सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥

फल आहारेण वा भाव्यं एक भुक्तेन वा पुनः सुख साध्यं भवेत् यत् तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥

वा फल-आहारेण - अथवा फल खाकर,
वा पुनः - अथवा फिर
एक भुक्तेन - एक वार अन्न खाकर
भाव्यं - रहे,
यत् तु - जो भी
सुख साध्यं-भवेत् - सुखसे चलने योग्य हो
श्रवणाय - (कथा) श्रवणके लिए
तत् कर्तव्यं - वही करना चाहिए ॥ ४२ ॥

भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ।
नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ।। ४३ ।।

भोजनं तु वरं मन्ये कथा श्रवण कारकं न उपवासः वरः प्रोक्तः कथा विघ्न करः यदि ।। ४३ ।।

कथा श्रवण	- कथा श्रवण	**यदि कथा**	- यदि कथा (श्रवण) में
कारकं भोजनं तु	- कराने वाले भोजनको तो	**विघ्न करः**	- विघ्न डालने वाला हो तो
		उपवासः	- उपवास
वरं मन्ये	- (मैं) श्रेष्ठ मानता हूं,	**वरः न प्रोक्तः**	- श्रेष्ठ नहीं कहा गया है ।। ४३ ।।

सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु नारद ।
विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ।। ४४ ।।

सप्ताह व्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद विष्णुदीक्षा विहीनानां न अधिकारः कथाश्रवे ।। ४४ ।।

नारद	- नारद जी !	**विष्णु दीक्षा**	- विष्णु भक्तिकी दीक्षासे
सप्ताह व्रतिनां	- सप्ताह (श्रवण) का व्रत लेने वाले	**विहीनानां**	- रहित लोगोंको
		कथा श्रवे	- कथा-श्रवणका
पुंसां नियमान्	- पुरुषोंके (पालनीय) नियमोंको	**अधिकारः न**	- अधिकार नहीं है ।। ४४ ।।
शृणु	- सुनो,		

ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।। ४५ ।।

ब्रह्मचर्यं अधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनं कथा समाप्तौ भुक्तिं च कुर्यात् नित्यं कथाव्रती ।। ४५ ।।

कथाव्रती - कथा-श्रवणका व्रत लेने वाला
ब्रह्मचर्यं - ब्रह्मचर्य पालन करे,
अधः सुप्तिः - नीचे (पृथ्वीपर) सोये,
च पत्रावल्यां - तथा पत्तलमें
भोजनं - भोजन करे,
च कथा समाप्तौ - और कथा समाप्त होनेपर
नित्यं भुक्तिं - प्रतिदिन भोजन
कुर्यात् - करे ॥ ४५ ॥

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ।
भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठ अन्नं तथा एव च भावदुष्टं पर्युषितं जह्यात् नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥

द्विदलं मधु - दाल, शहद,
च तैलं - तथा तेल,
तथा एव - इसी प्रकार
गरिष्ठ अन्नं - गरिष्ठ भोजन,
भावदुष्टं - भावसे दूषित,
पर्युषितं - बासी भोजन
कथाव्रती - कथा-श्रवणका व्रत करने वाला
नित्यं जह्यात् - सदा छोड़ दे ॥ ४६ ॥

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ।
दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभं एव च दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेत् च कथाव्रती ॥ ४७ ॥

कथा व्रती - कथा-श्रवणका व्रती
कामं क्रोधं - काम, क्रोध,
मदं मानं - मद, अभिमान,
मत्सरं च - डाह तथा
लोभं दम्भं एव च - लोभ और घमण्डको भी,
मोहं तथा द्वेषं - मोह तथा द्वेषको
दूरयेत् - दूर ही करता रहे ॥ ४७ ॥

वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ।
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥

वेद वैष्णव विप्राणां गुरु गो व्रतिनां तथा स्त्री राज महतां निन्दां वर्जयेत् यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥

यः कथाव्रती - जो कथा-श्रवणव्रती है वह	**स्त्री राज** - स्त्रियों, राजा
वेद वैष्णव - वेद, वैष्णव,	**तथा महतां** - तथा महापुरुषोंकी
विप्राणां - ब्राह्मणोंकी,	**निन्दां वर्जयेत्** - निन्दा (करना-सुनना) वर्जित रखे ॥ ४८ ॥
गुरु गो व्रतिनां - गुरु, गौ, व्रत करने वालों,	

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तदा ।
द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥

रजस्वला अन्त्यज म्लेच्छ पतित व्रात्यकैः तदा द्विजद्विड् वेद बाह्यैः च न वदेत् यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥

यः कथाव्रती - जो कथा श्रवणका व्रती है वह	**व्रात्यकैः** - व्रात्यों१
रजस्वला - रजस्वला स्त्री,	**द्विजद्विड्** - ब्राह्मण-द्वेषियों
अन्त्यज म्लेच्छ - अन्त्यज, विधर्मी,	**च वेद बाह्यैः** - तथा वेदको न मानने वालोंसे
पतित - पतित	**तदा न वदेत्** - उस (व्रतके दिनों) में बात न करे ॥ ४९ ॥

सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ।
उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५० ॥

सत्यं शौचं दया मौनं आर्जवं विनयं तथा उदार मानसं तद्वत् एवं कुर्यात् कथाव्रती ॥ ५० ॥

---

१. द्विजातिका पुरुष लगातार तीन दिन गायत्री जप न करे तो उसे व्रात्य माना जाता है । वह बिना प्रायश्चित्त शूद्र तुल्य होता है ।

कथाव्रती - कथा श्रवणका व्रती
सत्यं शौचं - सत्य भाषण, पवित्रता,
दया मौनं - दया, मौन,
आर्जवं - सरलता,
विनयं - विनम्रता
तथा तद्वत् - तथा इसी प्रकार
उदार मानसं - उदार चित्तता,
एवं कुर्यात् - इस प्रकार (आचरण) करे ॥ ५० ॥

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१ ॥

दरिद्रः च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् अनपत्यः मोक्षकामः शृणुयात् च कथां इमाम् ॥ ५१ ॥

दरिद्रः च- - दरिद्र और क्षय
क्षयी रोगी रोगका रोगी,
निर्भाग्यः - भाग्यहीन,
पापकर्मवान् - (किसी) पापका कर्ता,
अनपत्यः - पुत्रहीन
च मोक्षकामः - तथा मुमुक्षु
इमां कथां - इस कथाको
शृणुयात् - श्रवण करे ॥ ५१ ॥

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृत अर्भका स्रवत् गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

या नारी - जो स्त्री
अपुष्पा - (असमय ही) रजस्वला नहीं होती,
च काकवन्ध्या - या एक सन्तान होकर फिर सन्तान होना रुक गया हो,
च वन्ध्या - या वन्ध्या है,
या मृत अर्भका - जिसके बच्चे होकर मर जाते हैं,
च स्रवत् गर्भा - या जिसका गर्भपात होजाता है
तया प्रयत्नतः - उसे प्रयत्नपूर्वक
श्राव्या - सुनाना चाहिए ॥५२॥

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षयतरं भवेत् ।
अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ।। ५३ ।।

एतेषु विधिना श्रावे तत् अक्षयतरं भवेत् अति उत्तमा कथा दिव्या कोटि यज्ञ फल प्रदा ।। ५३ ।।

अति उत्तमा - यह अत्यन्त उत्तम
दिव्या कथा - दिव्य कथा
कोटि यज्ञ - करोड़ों यज्ञोंका
फल प्रदा - फल देने वाली है (वह)
एतेषु - इन सबको
विधिना श्रावे - विधिपूर्वक सुननेसे
तत् अक्षयतरं - वह सर्वथा अक्षय
भवेत् - होजाती है ।। ५३ ।।

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ।
जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ।। ५४ ।।

एवं कृत्वा व्रत विधिं उद्यापनं अथ आचरेत् जन्माष्टमी व्रतं इव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ।। ५४ ।।

एवं व्रत विधिं - इस प्रकार व्रतकी विधि
कृत्वा अथ - सम्पन्न करके फिर
उद्यापनं आचरेत् - उद्यापन करे,
फल काङ्क्षिभिः - फल चाहने वालेको
जन्माष्टमीं - जन्माष्टमी
व्रतं इव - व्रतकी भांति
कर्तव्यं - (उद्यापन) करना चाहिए ।। ५४ ।।

अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ।। ५५ ।।

अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायः न उद्यापन आग्रहः श्रवणेन एव पूताः ते निष्कामा वैष्णवा यतः ।। ५५ ।।

अकिञ्चनेषु - अकिञ्चन
भक्तेषु - भक्तोंके लिए
प्रायः उद्यापन - प्रायः उद्यापनका
आग्रहः न - आग्रह नहीं है,
ते श्रवणेन एव - वे श्रवण करने मात्रसे
पूताः - पवित्र होगये,
यतः वैष्णवा - क्योंकि भगवद्भक्त
निष्कामा - निष्काम होते हैं ।।५५।।

एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ५६ ॥

एवं नगाह यज्ञे अस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिः तदा पुस्तकस्य च वक्तुः च पूजा कार्या अति भक्तितः ॥ ५६ ॥

एवं अस्मिन् - इस प्रकार इस	**पुस्तकस्य** - ग्रन्थकी
नगाह यज्ञे - सप्ताह यज्ञके	**च वक्तुः च** - तथा वक्ताकी भी
समाप्ते - सम्पूर्ण होनेपर	**अति भक्तितः** - अत्यन्त भक्तिपूर्वक
तदा श्रोतृभिः - उस समय श्रोताओं द्वारा	**पूजा कार्या** - पूजा करनी चाहिए ॥ ५६ ॥

प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ।
मृदंगताललललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥

प्रसाद तुलसी माला श्रोतृभ्यः च अथ दीयतां मृदंग ताल ललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥

अथ- - फिर श्रोताओंको भी	**ततः मृदंग** - फिर मृदंग
श्रोतृभ्यः च	**ताल ललितं** - ताली वजाकर ललित
प्रसाद तुलसी - प्रसाद, तुलसी,	**कीर्तनं कर्तव्यं** - कीर्तन करना चाहिए ॥ ५७ ॥
माला दीयतां - माला प्रदान करो,	

जयशब्दं नमः शब्दं शंखशब्दं च कारयेत् ।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥

जय शब्दं नमः शब्दं शंख शब्दं च कारयेत् विप्रेभ्यः याचकेभ्यः च वित्तं अन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥

जय शब्दं - जयकारकी ध्वनि,
नमः शब्दं - नमस्कारकी ध्वनि
च शंख शब्दं - तथा शंख ध्वनि
कारयेत् - करवायें,
विप्रेभ्यः - ब्राह्मणोंको
च याचकेभ्यः - तथा भिक्षुकोंको
वित्तं अन्नं च - धन, अन्न (भोजन) भी
दीयतां - प्रदान करो ॥ ५८ ॥

विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ।
गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ५९ ॥

विरक्तः चेत् भवेत् श्रोता गीता वाच्या परे अहनि गृहस्थः चेत् तदा होमः कर्तव्यः कर्म शान्तये ॥ ५९ ॥

चेत् श्रोता - यदि श्रोता
विरक्तः भवेत् - विरक्त हो तो
परे अहनि - दूसरे दिन
गीता वाच्या - गीताका पाठ करना चाहिए,
चेत् गृहस्थः - यदि गृहस्थ हो
तदा कर्म शान्तये - (तब) कर्मकी शान्तिके लिए
होमः कर्तव्यः - हवन करना चाहिए ॥ ५९ ॥

प्रतिश्लोकं तु जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ।
पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥

प्रति श्लोकं तु जुहुयात् विधिना दशमस्य च पायसं मधु सर्पिः च तिल अन्नादिक संयुतम् ॥ ६० ॥

दशमस्य च - दशम स्कन्धके ही
प्रति श्लोकं तु - प्रत्येक श्लोकके साथ तो
विधिना - विधिपूर्वक
मधु सर्पिः - मधु, घृत,
च तिलअन्न - तथा तिल, अन्न (चावल, जौ)
आदिक संयुतं - आदि सहित
पायसं - खीरका
जुहुयात् - हवन करे ॥ ६० ॥

अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ।
तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥

अथवा हवनं कुर्यात् गायत्र्या सुसमाहितः तत् मय त्वात् पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥

अथवा - अथवा
सुसमाहितः - अत्यन्त एकाग्रचित्तसे
तत्त्वतः च - तत्त्वसे तो
परमस्य-पुराणस्य - इस महापुराणके
तत् मय त्वात्- तत् (गायत्री) मय होनेके कारण
गायत्र्या - गायत्री मन्त्र द्वारा
हवनं कुर्यात् - हवन करे ॥ ६१ ॥

होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ।
नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकतानयोः ॥ ६२ ॥

होम अशक्तौ बुधः हौम्यं दद्यात् तत् फल सिद्धये नाना छिद्र निरोध अर्थं न्यूनता अधिकता अनयोः ॥ ६२ ॥

होम अशक्तौ - हवन करनेमें असमर्थ होनेपर
तत् फल-सिद्धये - उस (हवन) के फलकी सिद्धि प्राप्तिके लिये
हौम्यं - हवन-सामग्री
दद्यात् - दान करदे,
नाना छिद्र - अनेक प्रकारकी त्रुटियोंको
निरोध अर्थं - बन्द (दूर) करनेके लिए तथा
अनयोः - इस (श्रवणादि) में
न्यूनता - कमी अथवा
अधिकता - अधिकता ॥ ६२ ॥

दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ।
तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३ ॥

दोषयोः प्रशम अर्थं च पठेत् नाम सहस्रकं तेन स्यात् सफलं सर्वं न अस्ति अस्मात् अधिकं यतः ॥ ६३ ॥

दोषयोः - दोषोंकी
प्रशम अर्थं - शान्तिके लिए
नाम सहस्रकं च - (विष्णु) सहस्र नामका भी
पठेत् - पाठ करे,
तेन सर्वं - उससे सब (कर्म)
सफलं स्यात् - सफल होजाते हैं,
यतः अस्मात् - क्योंकि इस (सहस्रनाम पाठ) से
अधिकं न-अस्ति - अधिक कुछ नहीं है ॥ ६३ ॥

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ।
दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चात् भोजयेत् मधु पायसैः दद्यात् सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्व हेतवे ॥ ६४ ॥

व्रत पूर्णत्व - व्रतकी पूर्णता
हेतवे - के लिए
द्वादश ब्राह्मणान् - बारह ब्राह्मणोंको
पश्चात् - अन्तमें
मधु पायसैः - शहद पड़ी खीरसे
भोजयेत् - भोजन करावे,
सुवर्णं च - उन्हें स्वर्ण तथा
धेनुं दद्यात् - गाय दान करे ॥ ६४ ॥

शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥

शक्तौ पलत्रय मितं स्वर्ण सिंहं विधाय च तत्र अस्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललित अक्षरम् ॥ ६५ ॥

शक्तौ - सामर्थ्य हो तो
पलत्रय मितं - तीन तोले परिमाणका
स्वर्ण सिंहं - स्वर्णका सिंह
विधाय च - बनवा करके ही
तत्र ललित-अक्षरं - उसपर सुन्दर अक्षरोंमें
लिखितं - लिखी हुई
अस्य पुस्तकं - यह (श्रीमद् भागवत) पुस्तक
स्थाप्यं - रखना चाहिए ॥ ६५ ॥

सम्पूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥

सम्पूज्य वाहन आद्यैः तत् उपचारैः स दक्षिणं वस्त्र भूषण गन्ध आद्यैः पूजिताय यत आत्मने ॥ ६६ ॥

तत् उपचारैः - पूजन सामग्रीसे
वाहन आद्यैः - वाहन आदिकी
सम्पूज्य - पूजा करके
स दक्षिणं - दक्षिणाके साथ
वस्त्र भूषण - वस्त्र, आभूषण,
गन्ध आद्यैः - चन्दनादिसे
पूजिताय - पूजित
यत आत्मने - संयतचित्त ॥ ६६ ॥

आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ।
एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥

आचार्याय सुधीः दत्त्वा मुक्तः स्यात् भव बन्धनैः एवं कृते विधाने च सर्वपाप निवारणे ॥ ६७ ॥

आचार्याय - आचार्यको
दत्त्वा सुधीः - देकर उत्तम बुद्धि (पुरुष)
भव बन्धनैः - संसारके बन्धनोंसे
मुक्तः स्यात् - मुक्त होजाता है,
च एवं विधाने - तथा इस प्रकारका विधान
कृते सर्वपाप - करनेपर सब पापोंका
निवारणे - निवारण होजाता है
॥ ६७ ॥

फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ।
धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ६८ ॥

फलदं स्यात् पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभं धर्म अर्थ काम मोक्षाणां साधनं स्यात् न संशयः ॥ ६८ ॥

श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**धर्म अर्थ**	- धर्म, अर्थ,
शुभं पुराणं तु	- शुभ पुराण तो	**काम मोक्षाणां**	- काम, मोक्ष
फलदं स्यात्	- फल देने वाला होता है,		(चारों पुरुषार्थों) का
न संशयः	- (इसमें) सन्देह नहीं कि यह	**साधनं**	- साधन है ।। ६८ ।।१

कुमारा ऊचुः-

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ति करे स्थिते ।। ६९ ।।

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुं इच्छसि श्रीमद्भागवतेन एव भुक्ति मुक्ति करे स्थिते ।। ६९ ।।

इति ते	- इस प्रकार तुमसे	**श्रीमद्**	- श्रीमद्
सर्वं कथितं	- सब कह दिया,	**भागवतेन एव**	- भागवतसे ही
भूयः किं	- फिर क्या	**भुक्ति मुक्ति**	- भोग और मोक्ष
श्रोतुं इच्छसि	- सुनना चाहते हो ?	**करे स्थिता**	- हाथमें आजाते हैं ।।६९।।

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ।
सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।। ७० ।।

इति उक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुः भागवतीं कथां सर्व पापहरां पुण्यां भुक्ति मुक्ति प्रदायिनीम् ।। ७० ।।

---

१. **इसके आगे प्रायः अन्य प्रतियोंमें 'कुमारा ऊचुः' है; किन्तु वह अनावश्यक है; क्योंकि अध्यायके प्रारम्भसे 'कुमारा ऊचुः' ही चल रहा है ।**

इति उक्त्वा - ऐसा कहकर
ते महात्मानः - उन महात्माओंने
सर्वपाप हरां - समस्त पाप हारिणी
पुण्यां - पवित्र
भुक्ति मुक्ति - भोग और मोक्ष
प्रदायिनीं - देने वाली
भागवतीं कथां - श्रीमद्भागवतकी कथाका
प्रोचुः - प्रवचन किया ॥ ७० ॥

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ।
यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥

शृण्वतां सर्व भूतानां सप्ताहं नियत आत्मनां यथा विधि ततः देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥

नियत आत्मनां - एकाग्र चित्तसे
यथा विधि - विधिपूर्वक
सर्व भूतानां - (वहां) सभी प्राणियोंके
सप्ताहं शृण्वतां - सप्ताह श्रवण करनेपर
ततः देवं - फिर (अन्तमें) भगवान
पुरुषोत्तमं - पुरुषोत्तमकी
तुष्टुवुः - स्तुति की ॥ ७१ ॥

तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ।
तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२ ॥

तत् अन्ते ज्ञान वैराग्य भक्तीनां पुष्टता परा तारुण्यं परमं च अभूत् सर्व भूत मनोहरम् ॥ ७२ ॥

तत् अन्ते - उस (कथा) के अन्तमें
ज्ञान वैराग्य - ज्ञान, वैराग्य,
भक्तीनां - भक्तिको
परा पुष्टता - परम पुष्टता
च सर्वभूत - तथा सब प्राणियोंके लिए
मनोहरं - मनोहर
परमं तारुण्यं - परम तारुण्य
अभूत् - प्राप्त हुआ ॥ ७२ ॥

नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे ।
पुलकीकृतसर्वांगः परमानन्दसम्भृतः ॥ ७३ ॥

नारदः च कृतर्थः अभूत् सिद्धे स्वीये मनोरथे पुलकीकृत सर्व अंगः परम आनन्द सम्भृतः ॥ ७३ ॥

स्वीये मनोरथे	- अपने मनोरथके	**सर्व अंगः**	- सम्पूर्ण शरीरसे
सिद्धे	- सिद्ध होजानेपर	**पुलकीकृत**	- पुलकायमान
परम आनन्द	- परम आनन्द	**नारदः च**	- नारदजी भी
सम्भृतः	- परिपूर्ण प्राप्त	**कृतर्थः अभूत्**	- कृतार्थ होगये ॥७३॥

एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ।
प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥

एवं कथां सम आकर्ण्य नारदः भगवत् प्रियः प्रेम गद् गदया वाचा तान् उवाच कृत अञ्जलिः ॥ ७४ ॥

एवं कथां	- इस प्रकारकी कथाको	**कृत अञ्जलिः**	- हाथ जोड़कर
सम आकर्ण्य	- भली भांति सुनकर	**प्रेम गद्-**	- प्रेमसे गद्गद् हुई वाणीसे
भगवत् प्रियः	- भगवानके प्यारे	**गदया वाचा**	
नारदः	- नारद जी	**तान् उवाच**	- उन (सनत्कुमारादि) से बोले ॥ ७४ ॥

नारद उवाच-

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ।
अद्य मे भगवाँल्लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५ ॥

धन्यः अस्मि अनुगृहीतः अस्मि भवद्भिः करुणापरैः अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपाप हरः हरिः ॥ ७५ ॥

करुणा परैः	- दयाशील	**सर्व पाप हरः**	- सर्वपाप हारी
भवद्भिः	- आप लोगों द्वारा	**भगवान् हरिः**	- भगवान् श्रीहरिः
अनुगृहीतः अस्मि	- अनुगृहीत हुआ हूं,	**अद्य मे**	- आज मैंने
धन्यः अस्मि	- (अतः) मैं धन्य हूं'	**लब्धः**	- प्राप्त किया ॥ ७५ ॥

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ।
वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥

श्रवणं सर्व धर्मेभ्यः वरं मन्ये तपोधनाः वैकुण्ठस्थः यतः कृष्णः श्रवणात् अस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥

तपोधनाः - तपोधनो !
सर्व धर्मेभ्यः - सब धर्मोंसे
श्रवणं वरं मन्ये - श्रवणको मैं श्रेष्ठ मानता हूं
यतः अस्य - क्योंकि इस (भागवत) के
श्रवणात् - श्रवण करनेसे
वैकुण्ठस्थः - वैकुण्ठमें रहने वाले
कृष्णः लभ्यते - श्रीकृष्ण प्राप्त होजाते हैं ॥ ७६ ॥

सूत उवाच-

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ।
परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णव उत्तमे परिभ्रमन् सम आयातः शुकः योगेश्वरः तदा ॥ ७७ ॥

वैष्णव उत्तमे - भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ
नारदे - नारदजीके
एवं ब्रुवति वै - इस प्रकार कहते समय ही
तदा परिभ्रमन् - उस समय घूमते हुए
योगेश्वरः शुकः - योगेश्वर शुकदेवजी
सम आयातः - समीप आगये ॥७७॥

तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ।
कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥

तत्र आययौ षोडश वार्षिकः तदा व्यास आत्मजः ज्ञान महा अब्धि चन्द्रमाः कथा अवसाने निजलाभ पूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥

कथा अवसाने - कथाकी समाप्तिपर
तदा तत्र - उस समय वहाँ
निजलाभ पूर्णः - आत्मलाभसे परिपूर्ण
षोडश वार्षिकः - सोलह वर्षकी अवस्था वाले
ज्ञान महा-अब्धि - ज्ञानरूपी महासमुद्रसे
चन्द्रमाः - उत्पन्न चन्द्रमाके समान
व्यास आत्मजः - श्रीव्यास-नन्दन शुकदेवजी
प्रेम्णा-शनैः शनैः - प्रेमपूर्वक धीरे धीरे
भागवतं पठन् - भागवतका पाठ करते हुए
आययौ - आगये ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥ ७९ ॥

दृष्ट्वा सदस्याः परम उरु तेजसं सद्यः सम उत्थाय ददुः महा आसनं प्रीत्या सुरर्षिः तं अपूजयत् सुखं स्थितः अवदत् संशृणुत अमलां गिरम् ॥ ७९ ॥

परम उरु तेजसं - उन अत्यधिक परम तेजस्वीको
दृष्ट्वा - देखकर
सदस्याः - सब सभासदोंने
सद्यः सम उत्थाय - तत्काल एक साथ उठकर
महा आसनं - सर्वोच्च आसन
ददुः - दिया,
सुरर्षिः - देवर्षि नारदने
प्रीत्या तं - प्रेमपूर्वक उनकी
अपूजयत् - पूजाकी
सुखं स्थितः - सुखपूर्वक बैठकर (वे)
अवदत् - बोले,
अमलां गिरं - ('मेरी) निर्मल वांणी
संश्रुणुत - (आप सब) श्रवण करो ॥ ७९ ॥

श्रीशुक उवाच-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥

निगम कल्पतरोः गलितं फलं शुक मुखात् अमृतद्रव संयुतं पिबत भागवतं रसं आलयं मुहुः अहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥

अहो भुवि-भावुकाः	- अहो, पृथ्वीके भावुक	**अमृत द्रव-संयुतं**	- अमृतरस युक्त हुए
रसिका	- रसिको !	**भागवतं रसं**	- श्रीमद्भागवतके रसको
निगम कल्पतरोः	- वेदरूपी कल्पवृक्षके	**आलयं**	- मरण पर्यन्त
गलितं फलं	- (स्वयं) टपके फल,	**मुहुः पिबत**	- बार-बार पियो ॥ ८० ॥
शुक मुखात्	- शुकका मुख लगनेसे		

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं
वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो
हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥८१॥

धर्मः प्रोज्झित कैतवः अत्र परमः निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवं अत्र वस्तु शिवदं ताप त्रय उन्मूलनं श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैः ईश्वरः सद्यः हृदि अवरुध्यते अत्र कृतिभिः शुश्रूषिभिः तत् क्षणात् ॥ ८१ ॥

निर्मत्सराणां	- डाह रहित	**वा किं परैः**	- अथवा क्या दूसरी
सतां	- सत्पुरुषोंके लिए	**कृतिभिः**	- किसी रचनासे
अत्र प्रोज्झित-	- इस (भागवत) में	**ईश्वरः सद्यः**	- ईश्वर तत्काल
कैतवः	कपट रहित	**हृदि अवरुध्यते**	- हृदयमें स्थिर होता है?
परमः धर्मः	- परम धर्म है,	**महामुनि कृते**	- महामुनि व्यासजीकी रचना
अत्र तापत्रय	- इसमें तीनों तापोंको	**अत्र-श्रीमद्भागवते**	- इस श्रीमद्भागवतकी
उन्मूलनं	- जड़से उखाड़ देने वाली,	**शुश्रूषिभिः**	- सेवा करनें वालों द्वारा
शिवदं	- कल्याणदायिनी	**तत् क्षणात्**	- उसी क्षण (ईश्वर हृदयमें स्थिर होजाता है ।) ॥ ८१ ॥
वास्तवं वेद्यं वस्तु	- वस्तुतः जानने योग्य तत्त्व है,		

श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां-

धनं यस्मिन् पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ।

यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं-

तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः।।८२।।

श्रीमद्भागवतं पुराण तिलकं यत् वैष्णवानां धनं यस्मिन् पारमहंस्यं एवं अमलं ज्ञानं परं गीयते यत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यं आविष्कृतं तत् शृण्वन् प्रपठन् विचारण परः भक्त्या विमुच्येत् नरः ।। ८२ ।।

पुराण तिलकं	- पुराणोंका तिलक स्वरूप	**यत्र ज्ञान**	- जिसमें ज्ञान,
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**विराग भक्ति**	- वैराग्य, भक्तिके
यत् वैष्णवानां	- जो भगवद्भक्तोंका	**सहितं**	- सहित
धनं	- धन है,	**नैष्कर्म्यं**	- मोक्षको
यस्मिन्	- जिसमें	**आविष्कृतं**	- प्रगट किया गया है,
पारमहंस्यं एवं	- परमहंसोंके ही	**तत् शृण्वन्**	- उस (भागवत) को सुनने
अमलं परं ज्ञानं	- निर्मल श्रेष्ठ ज्ञानका	**प्रपठन्**	- बार बार पाठ करने,
गीयते	- वर्णन है,	**विचारण परः**	- विचार करनेमें लगा
		नरः भक्त्या	- मनुष्य भक्तिके द्वारा
		विमुच्येत्	- मुक्त होजाता है ।।८२।।

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ।

अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ।। ८३ ।।

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे न अस्ति अयं रसः अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ।। ८३ ।।

स्वर्गे सत्ये - स्वर्ग, ब्रह्मलोक,
कैलासे च - कैलास तथा
वैकुण्ठे - वैकुण्ठमें
अयं रसः - यह रस
न अस्ति - नहीं है,
अतः- सद्भाग्या - अतः सौभाग्यशालियों !
पिबन्तु - (इसको) पीओ,
कर्हिचित् मा - कभी नहीं;
मा मुञ्चत - नहीं ही त्यागो ॥८३॥

सूत उवाच-

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ।
प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४ ॥

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिः आविः आसीत् प्रह्लाद बलि उद्धव फाल्गुन आदिभिः वृतः सुरर्षिः तं पूजयत् च तान् ॥ ८४ ॥

बादरायणौ - शुकदेवजीके
एवं ब्रुवाणे सति - इस प्रकार कहते ही
सभायां मध्ये - उस सभाके बीचमें
प्रह्लाद बलि - प्रह्लाद, बलि,
उद्धव फाल्गुन - उद्धव, अर्जुन
आदिभिः वृतः - आदिसे घिरे
हरिः आविः- आसीत् - श्रीहरि प्रगट होगये,
सुरर्षिः तं - देवर्षि नारदने उन (श्रीहरि) की
च तान् - तथा (साथ आये) उन लोगोंकी
पूजयत् - पूजाकी ॥ ८४ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ।
भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नं महत् आसने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनं अग्रतः तदा भवः भवान्या कमलासनः तु तत्र आगमत् कीर्तन दर्शनाय ॥ ८५ ॥

महत् आसने - उच्च सिंहासनपर (बैठे)
तदा हरिं - उस समय श्रीहरिको
प्रसन्नं दृष्ट्वा - प्रसन्न देखकर
ते अग्रतः - वे लोग (उनके) आगे
कीर्तनं चक्रिरे - कीर्तन करने लगे,
भवः भवान्या - शिव-पार्वती
तु कमलासनः - तथा ब्रह्माजी
कीर्तन दर्शनाय - कीर्तन देखने
तत्र आगमत् - वहां आये ॥ ८५ ॥

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदंग जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६ ॥

प्रह्लादः तालधारी तरलगति तया च उद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ता अर्जुनः अभूत् इन्द्रः अवादीत् मृदंग जय जय सुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्र अग्रे भाववक्ता सरस रचनया व्यासपुत्रः बभूव ॥ ८६ ॥

कीर्तने	- उस कीर्तनमें	**इन्द्रः मृदंग**	- इन्द्र मृदंग
तरल गति तया	- चञ्चल गति होनेसे	**अवादीत्**	- बजाने लगे,
प्रह्लादः	- प्रह्लादने करताल	**ते कुमारा**	- वे सनकादि कुमार
तालधारी	लिया,	**जय जय-**	- (बीच-बीचमें) सुगम होनेसे
च उद्धवः	- तथा उद्धवने	**सुकराः**	जय जयकार करने लगे,
कांस्यधारी	- झांझ उठाया,	**यत्र अग्रे**	- जिनमें सबसे आगे
सुरर्षिः	- देवर्षि नारद वीणा	**सरस रचनया**	- सरस रचनाके कारण
वीणाधारी	लिये थे,	**व्यास पुत्रः**	- श्रीव्यास-नन्दन शुकदेवजी
स्वर कुशलतया	- स्वरोंमें निपुण होनेसे	**भाव वक्ता**	- भाव बतलाने वाले
अर्जुनः	- अर्जुन	**बभूव**	- होगये ॥ ८६ ॥
रागकर्ता अभूत्	- राग अलापने वाले होगये,		

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७ ॥

ननर्त मध्ये त्रिकं एव तत्र भक्ति आदिकानां नटवत् सुतेजसां अलौकिकं कीर्तनं एतत् ईक्ष्य हरिः प्रसन्नः अपि वचः अब्रवीत् तत् ॥ ८७ ॥

तत्र सुतेजसां	- वहां परम तेजस्वी	एतत् अलौकिकं	- इस अलौकिक
भक्ति आदिकानां	- भक्ति आदिकी	कीर्तनं ईक्ष्य	- कीर्तनको देखकर
त्रिकं एव	- तिकड़ी ही	प्रसन्नः अपि	- प्रसन्न होते हुए भी
नटवत्	- नटोंके समान	हरिः तत्	- हरिने यह
मध्ये ननर्त	- बीचमें नाचने लगी,	वचः अब्रवीत्	- बात कही ॥ ८७ ॥

मत्तो वरं भाववृताद्वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम् ।
श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥

मत्तः वरं: भाववृतात् वृणीध्वं प्रीतः कथा कीर्तनतः अस्मि साम्प्रतं श्रुत्वा इति तत् वाक्यं अति प्रसन्नाः प्रेम आर्द्र चित्ता हरिं ऊचिरे ते ॥ ८८ ॥

साम्प्रतं	- 'इस समय	इति तत्	- इस प्रकार उन
कथा कीर्तनतः	- इस कथा-कीर्तनसे		(श्री हरि) के
प्रीतः अस्मि	- (मैं) प्रसन्न हूँ,	वाक्यं श्रुत्वा	- वचन सुनकर
भाव वृतात्	- भावसे वश किये गये	अति प्रसन्नाः	- अत्यन्त प्रसन्न
मत्तः	- मुझसे	प्रेम आर्द्र चित्ता	- प्रेमसे द्रवित चित्त
वरः वृणीध्वं	- वरदान मांग लो'	ते हरिं ऊचिरे	- वे श्रीहरिसे बोले
			॥ ८८ ॥

नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमिति प्रयत्नात् ।
मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः ॥ ८९ ॥

नगाह गाथासु च सर्व भक्तैः एभिः त्वया भाव्यं इति प्रयत्नात् मनोरथः अयं परिपूरणीयः तथा इति च उक्त्वा अन्तः अधीयत अच्युतः ॥ ८९ ॥

नगाह गाथासु	- सप्ताह कथामें	परिपूरणीयः	- (आपको) परिपूर्ण
एभिः सर्वभक्तैः	- इन सब भक्तोंके साथ		करनी चाहिए
त्वया भाव्यं	- आपको पधारना चाहिए,	'तथा' इति च	- अच्छा ऐसा ही
इति	- इस प्रकारकी	उक्त्वा अच्युतः	- कहकर श्रीहरि
अयं मनोरथः	- यह अभिलाषा	अन्तः अधीयत	- अन्तर्ध्यान होगये
प्रयत्नात्	- प्रयत्नपूर्वक		॥ ८९ ॥

ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ।
अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥

ततः अनमत् तत् चरणेषु नारदः तथा शुक आदीन् अपि तापसान् च अथ प्रहृष्टाः परिनष्ट मोहाः सर्वे ययुः पीत कथा अमृताः ते ॥ ९० ॥

ततः नारदः	- तब नारदजीने	**अथ प्रहृष्टाः**	- फिर अत्यन्त प्रसन्न हुए,
तत् चरणेषु	- उन (भगवत् पार्षदों) के चरणोंमें	**परिनष्ट मोहाः**	- सम्पूर्ण रूपसे मोह नष्ट हुए,
तथा शुकआदीन	- तथा शुकदेवजी आदि	**ते पीत-**	- वे कथा रूपी अमृतको
तापसान् च	- तपस्वियोंको भी	**कथा अमृताः**	पीने वाले
अनमत्	- प्रणाम किया,	**सर्वे ययुः**	- सब लोग चले गये ॥ ९० ॥

भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ।
अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥

भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीये अपि तदा शुकेन अतः हरिः भागवतस्य सेवनात् चित्तं सम आयाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥

हि तदा	- क्योंकि उस समय	**सा भक्तिः**	- वह भक्ति
शुकेन	- शुकदेवजी द्वारा	**रक्षिता**	- रक्षित कर दी गयी,
स्वकीये	- अपने	**अतः भागवतस्य**	- अतः भागवतका
शास्त्रे अपि	- शास्त्रमें ही	**सेवनात्**	- सेवन करनेसे
सुताभ्यां सह	- पुत्रों (ज्ञान-वैराग्य) के साथ	**हरिः वैष्णवानां**	- श्रीहरि भक्तोंके
		चित्तं सम-	- चित्तमें पूर्णतः आजाते
		आयाति	हैं ॥ ९१ ॥

दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ।
संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥

दारिद्र्य दुःख ज्वर दाहितानां माया पिशाची परि मर्दितानां संसार सिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥

दारिद्र्य दुःख	- दरिद्रताके दुःख रूपी	**संसार सिन्धौ**	- संसार-सागरमें
ज्वर दाहितानां	- ज्वरसे जलाये जाते,	**परिपातितानां**	- सब ओरसे फेंके गये लोगोंके
माया पिशाची	- माया रूपी पिशाचिनी द्वारा	**वै क्षेमाय**	- निश्चित कल्याणके लिए
परि मर्दितानां	- चारों ओरसे रौंदे जाते,	**भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
		प्रगर्जति	- सिंहनाद कर रहा है ॥ ९२ ॥

शौनक उवाच-

शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ।
सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥

शुकेन उक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः सुरर्षये कदा ब्राह्मैः छिन्धि मे संशयं तु इमम् ॥ ९३ ॥

कदा शुकेन	- कब शुकदेवजी ने	**ब्राह्मैः**	- ब्रह्माजी के पुत्रों (सनकादि) ने
राज्ञे	- राजा परीक्षितको	**उक्तं**	- (भागवत) कहा
पुनः कदा	- फिर कब	**मे इमम् संशयं**	- मेरा यह सन्देह
गोकर्णेन	- गोकर्णने तथा	**छिन्धि**	- काट दीजिए ॥ ९३ ॥
कदा सुरर्षये	- कब देवर्षि नारदको		

सूत उवाच-

आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ॥ ९४ ॥

आकृष्ण निर्गमात् त्रिंशत् वर्ष अधि गते कलौ नवमीतः नभस्ये च कथा आरम्भं शुकः अकरोत् ॥ ९४ ॥

आकृष्ण-	- श्रीकृष्णके (इस लोकसे)	**नभस्ये**	- भाद्रपद (शुक्ल)
निर्गमात्	निकल जानेसे लेकर	**नवमीतः**	- नवमीसे
त्रिंशत् वर्ष	- तीस वर्ष	**शुकः**	- शुकदेवजीने
कलौ अधिगते	- कलियुगके अधिकारके (होनेपर)	**कथा आरम्भं**	- कथाका प्रारम्भ
		अकरोत्	- किया ॥ ९४ ॥

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९५ ॥

परीक्षित श्रवण अन्ते च कलौ वर्ष शतद्वये शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजः अकथयत् कथाम् ॥ ९५ ॥

परीक्षित	राजा परीक्षितके	**शुचौ शुद्धे**	- आषाढ़ शुक्ल
श्रवण अन्ते	- श्रवणके पश्चात	**नवम्यां च**	- नवमीसे ही
कलौ वर्ष-	- कलियुगके और दौ सौ	**धेनुजः**	- गोकर्णने
शतद्वये च	वर्ष (बीत जानेपर)	**कथां अकथयत्**	- कथा कहना प्रारम्भ किया ॥ ९५ ॥

तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ।
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥

तस्मात् अपि कलौ प्राप्ते त्रिंशत् वर्ष गते सति ऊचुः ऊर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥

कलौ प्राप्ते	- कलियुग आनेके	**ऊर्जे सितेपक्षे**	- कार्तिक शुक्ल पक्षकी
तस्मात् अपि	- उससे भी	**नवम्यां**	- नवमीसे
त्रिंशत् वर्ष	- तीस वर्ष	**ब्रह्मणः सुताः**	- ब्रह्माजीके पुत्रों (सनकादि) ने
गते सति	- बीत जानेपर	**ऊचुः**	- (कथा) कहा ॥ ९६ ॥

इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥

इति एतत् ते सम आख्यातं यत् पृष्टः अहं त्वया अनघ कलौ भागवती वार्ता भवरोग विनाशिनी ॥ ९७ ॥

अनघ - निष्पाप शौनक जी !	**कलौ** - कलियुगमें
यत् त्वया - जो तुम्हारे द्वारा	**भागवती वार्ता** - भागवतकी कथा
अहं पृष्टः - मुझसे पूछा गया था वह	**भवरोग** - संसार रूपी रोगको
इति एतत् ते - इस प्रकार यह सब	**विनाशिनी** - विनष्ट करने वाली है
सम आख्यातं - भली प्रकार बतला दिया,	॥ ९७ ॥

कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ।
सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हि तीर्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥

कृष्णप्रियं सकल कल्मष नाशनं च मुक्ति एक हेतुं इह भक्ति विलास कारि सन्तः कथानकं इदं पिबत आदरेण लोके हि तीर्थ परिशीलन सेवया किम् ॥ ९८ ॥

सन्तः - सन्तों !	**इदं कथानकं** - इस कथानकका
कृष्णप्रियं - श्रीकृष्णको प्रिय,	**आदरेण पिबत** - आदरपूर्वक पान करो
सकल कल्मष - सम्पूर्ण पापोंको	**हि लोके** - क्योंकि संसारमें
नाशनं - नष्ट करने वाले	**तीर्थ परिशीलन** - तीर्थ ढूंढ़ने या
मुक्ति एक हेतुं - मुक्तिका एकमात्र कारण	**सेवया किं** - उनके सेवनसे क्या
च इह - तथा इस लोकमें	लाभ ॥ ९८ ॥
भक्ति विलास- - भक्ति-विलास देने वाले	
कारि	

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥

स्व पुरुषं अपि वीक्ष्य पाश हस्तं वदति यमः किल तस्य कर्ण मूले परिहर भगवत् कथासु मत्तान् प्रभुः अहं अन्य नृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥

स्व पुरुषं अपि - अपने दूतोंको भी
पाशहस्तं वीक्ष्य - हाथमें फन्दा लिये देखकर
किल यमः - अहो यमराज
तस्य कर्णमूले - उसके कानोंके पास (मुख ले जाकर)
वदति - कहते हैं
भगवत् कथासु - 'भगवानकी कथामें
मत्तान् - (आनन्द) मत्त लोगोंको
परिहर - छोड़ दो,
अहं अन्य नृणां - मैं दूसरे मनुष्योंका
प्रभुः - स्वामी हूँ,
वैष्णवानां न - भगवद्भक्तोंका नहीं ॥ ९९ ॥

असारे संसारे विषयविषसंगाकुलधियः क्षणार्धं
क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १०० ॥

असारे संसारे विषय विष संग आकुल धियः क्षण अर्धं क्षेम अर्थं पिबत शुक गाथा अतुल सुधां किं अर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सित कथे परीक्षित् साक्षी यत् श्रवण गत मुक्ति उक्ति कथने ॥ १०० ॥

असारे संसारे - तथ्यहीन संसारमें
विषय विष - विषयरूपी विषोंकी
संग आकुल - आसक्तिसे व्याकुल
धियः भो - बुद्धि लोगो हे !
क्षेम अर्थं - (अपने) कल्याणके लिए
क्षण अर्धं - आधे क्षणको
शुकगाथा - शुकदेवजीकी कथारूपी
अतुल सुधां - अतुलनीय सुधाको
पिबत - पियो,
व्यर्थं किं अर्थं - व्यर्थ किसलिए
कुत्सितपथे - निन्दित मार्ग
कुपथे व्रजत - कुमार्गसे जारहे हो
उक्ति कथने - (शुकदेवजीके) वर्णनकी युक्तिओंके
श्रवणगत - कानमें पड़नेसे ही
यत् मुक्ति - क्योंकि मुक्ति होजाती हैं (इसमें)
परीक्षित् साक्षी - परीक्षित् साक्षी हैं ॥ १०० ॥

रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ।
कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥

रस प्रवाह संस्थेन श्रीशुकेन ईरिता कथा कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठ प्रभुः भवेत् ॥ १०१ ॥

रस प्रवाह	- प्रेमरसकी धारामें	**येन कण्ठे-**	- जो गलेमें बाँध लेता
संस्थेन	- स्थित होकर	**सम्बध्यते**	(कण्ठस्थ कर लेता) है
श्रीशुकेन	- श्रीशुकदेवजी द्वारा	**स वैकुण्ठ-**	- वह वैकुण्ठका स्वामी
ईरिता कथा	- कही गयी इस कथाको	**प्रभुः**	
		भवेत्	- होजाता है ॥ १०१ ॥

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।
जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित् पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥ १०२ ॥

इति च परम गुह्यं सर्व सिद्धान्त सिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्र पुञ्जं विलोक्य जगति शुककथातः निर्मलं न अस्ति किञ्चित् पिब पर सुख हेतोः द्वादशस्कन्ध सारम् ॥ १०२ ॥

इति	- इस प्रकार	**शुककथातः**	- शुकदेवजी द्वारा वर्णित कथासे
शास्त्र पुञ्जं	- शास्त्र समूहको	**जगति निर्मलं**	- संसारमें पवित्र
विलोक्य	- देखकर	**किञ्चित्-**	- और कुछ नहीं है
परम गुह्यं	- परम रहस्यमय	**न अस्ति**	(अतः)
च सर्व सिद्धान्त	- तथा सभी सिद्धान्तोंके द्वारा	**पर सुख**	- परमानन्दकी
		हेतोः	- प्राप्तिके लिए
सिद्धं	- सिद्ध	**सारं**	- रसरूप
ते सपदि	- तुमको (जो) अभी अभी	**द्वादशस्कन्ध**	- (इस) बारह स्कन्धके ग्रन्थका
निगदितं	- सुनाया है (उस)	**पिब**	- पान करो ॥ १०२ ॥

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ।
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०३ ॥

एतां यः नियततया शृणोति भक्त्या यः च एनां कथयति शुद्ध वैष्णव अग्रे तौ सम्यक् विधि करणात् फलं लभेते याथार्थ्यात् न हि भुवने किमपि असाध्यम् ॥ १०३ ॥

यः एतां	- जो इस (श्रीमद्भागवत) को	**कथयति**	- कहता (सुनाता) है
भक्त्या	- भक्तिपूर्वक	**तौ सम्यक्**	- वे दोनों भली प्रकार
नियततया	- नियमित रूपसे	**विधि करणात्**	- विधि सम्पन्न करनेका
शृणोति	- सुनता है	**याथार्थ्यात्**	- वास्तविक
च यः एनां	- और जो इसको	**फलं लभेते**	- फल प्राप्त करते हैं
शुद्ध	- शुद्ध (चित्त)	**भुवने किमपि**	- (उनके लिए) त्रिभुवनमें कुछ भी
वैष्णव अग्रे	- भगवद्भक्तके सामने	**असाध्यं नहि**	- असाध्य नहीं रहता ॥ १०३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ माहात्म्य सम्पूर्ण ॥

आरती श्रीमद्भागवत महापुराण

आरति अतिपावन पुरान की ।
धर्म, भक्ति, विज्ञान - खान की ॥
महापुरान भागवत निरमल ।
शुक - मुख - विगलित निगम - कलप - फल ॥
परमानन्द - सुधा - रसमय कल ।
लीला - रति - रस रसनिधान की ॥ १ ॥ आरति०

कलि - मलि - मथनि त्रिताप - निवारिनि ।
जन्म - मृत्युमय भव - भय - हारिनि ॥
सेवत सतत सकल सुखकारिनि ।
सुमहौषधि हरि - चरित - गान की ॥ २ ॥ आरति०

विषय - विलास - विमोह - विनासिनि ।
विमल विराग विवेक - विकाशिनि ॥
भगवतत्त्व - रहस्य - प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म - ज्ञान की ॥ ३ ॥ आरति०

परमहंस - मुनि - मन - उल्लासिनि ।
रसिक - हृदय रस - रास - विलासिनि ॥
भुक्ति, मुक्ति, रति प्रेम - सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजान की ॥ ४ ॥ आरति०

●●●